



सत्य की ओर



डा राधाकृष्णन



राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

'RECOVERY OF FAITH' का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक
श्रीरामनाथ 'सुमन'

द्वितीय संस्करण

१९६२

मूल्य छ रुपये

प्रकाशक

एन.पी.एस. एण्ड सन्स

पोस्ट बॉक्स १०६४, दिल्ली

●

कार्यालय व प्रेष

पी० टी० रोड छाहूणवा दिस्ती-३२

●

बित्री-बैंगल

कर्मवीर रोड, दिल्ली-६

मुद्रक

एनू एण्ड कॉन्टैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली

प्रकाशकीय

राष्ट्रपति डा० राजाकृष्णन् हमारे युग के एक महान् विचारक और वास्तविक हैं। भारतीय विचार-परम्परा के मूर्धन्य व्याख्याता और तत्त्व विग्नक के रूप में सत्सर् के बौद्धिक क्षेत्रों में उन्हें बड़े सम्मान का स्थान प्राप्त है। उनकी पांडित्यपूर्ण रचनाओं ने प्राथमिक विचार-व्यपत् को महाराष्ट्र से प्रभावित किया है।

हमारा युग कई अर्थों में मानव-इतिहास में एक अद्वितीय युग है। वैज्ञानिक आविष्कारों और मनोवैज्ञानिक खोजों ने अर्ध मनुष्य के बाहर और भीतर का सब कुछ बदल डाला है। ऐसी माण्यताएं जिन्हें इतिहास की स्वीकृति प्राप्त थी आज हमें निरपेक्ष-सी प्रतीत होती हैं जबकि नये मूल्य हमारी भास्वा और हमारे विश्वास को चुनौती दे रहे हैं। अपूर्व संभावनाओं से भरे इस युग को समझने के लिए एक संतुलित दृष्टि और एक सम्यक युग-बोध की आवश्यकता है। डा० राजाकृष्णन् की रचनाएं इसी युग-बोध की प्राप्ति में हमारी सबसे बड़ी सहायक हैं। इस दृष्टि से उनकी प्रसिद्ध रचना 'सत्य की घोर' विद्येय रूप से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रेरणाप्रद ग्रन्थ में डा० राजाकृष्णन् ने एक नई भास्वा एक नये विश्वास की खोज में प्राथमिक मानव का पथ-निर्देशन किया है।

मनुष्य विग्न और वर्तमान में अब तक जिन माण्यताओं को स्वीकार कर रहा है, उन्हें विवेक और तर्क की कसौटी पर कसते हुए डा० राजाकृष्णन् ने 'सत्य की घोर' में प्राचीन उपनिषदों से लेकर प्राथमिक वास्तविकों तक के विचारों का अपनी प्रवाहमयी और खोजस्वी शक्ति में बड़े तरल ढंग से विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। उन्होंने महत् स्पष्ट किया है कि किस प्रकार प्राचीन और नवीन विग्न-धाराओं के बीच से ही एक ऐसी भास्वा एक ठोके युग-सत्य की उपनिष्पन्न हो सकती है जो हमारी अपूर्णताओं और अपर्याप्तताओं को दूर करने में सहायक होगी।

'सत्य की घोर' डा० राजाकृष्णन् के अन्तर्राष्ट्रीय स्थापित प्राप्त ग्रंथ 'रिश्तबरी धार्मिक प्रश्न का प्रथम प्रामाणिक और प्रवाहपूर्ण अनुवाद है।

अनुक्रम

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश --- ६

दूसरा अध्याय

विश्वास की कठिनाइयाँ १७

१ धर्म और विज्ञान २ तुलनात्मक धर्म ३ मानव
स्मृति एवं प्रौद्योगिकी का विकास ४ तार्किक
प्रत्यक्षावाद ५ धर्म एवं सामाजिक सम्बन्ध ६ धर्म
और विश्व-ऐनय ७ भयङ्गा का विकास

तीसरा अध्याय

विश्वास की द्वावश्यकता ४३

१ धर्म के स्थानापन्न पदाथ २ उपमानवीय स्थिति
में पतन ३ भोगवाद ४ मानवतावाद ५ राष्ट्रवाद
६ साम्यवाद ७ सर्वसत्तावाद ८ संशय एवं विश्वास

चौथा अध्याय

धर्म की शोच में ७३

१ वैज्ञानिक दृष्टि २ मानवीय संकट ३ धर्म सत्या
धुमाव के रूप में

पाँचवाँ अध्याय

प्राध्यात्मिक जीवन और भीक्षित धर्म १०२

१ हिन्दूधर्म २ ताघीवाद ३ यहूदी धर्म ४ यूनानी
धर्म ५ जटपुत्री धर्म ६ बौद्धधर्म ७ ईसाई
धर्म ८ इस्लाम तसम्बुद ९ धार्मिक प्रवृत्तियाँ

छठा अध्याय

धार्मिक सत्य और प्रतीकवाद १३०

१ धार्मिकता का सिद्धान्त २ वह तुम हो।

३ धार्मिक प्रतीकवाद

सातवां अध्याय

ईश्वर-सिद्धि और उसका मार्ग १४२

१ धार्मिक पुनर्जन्म २ बक्तिमार्ग ३ कर्ममार्ग

४ ज्ञानमार्ग ५ सत्य एवं प्रेम ६ पवित्रता एवं

इहलौकिक जीवन ७ ईश्वरीय मानव

आठवां अध्याय

अस्तर्धर्मीय मैत्री १६७

१ हमों में निहित व्यापक ऐक्य २ ईसाई पुनर्मिलन

उपसंहार १८०

सत्य की ओर

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

नामक और जानकार व्यक्तियों का विश्वास है कि धार्मिक विश्व के लिए किसी सामाजिक राजनीतिक तथा धार्मिक पुनर्मंडल से भी प्रतिक गहरी एवं मूलमूल आवश्यकता है धार्मिक पुनर्जागरण की, कोई हुई धारणा को पुनः प्राप्त करने की। अब सम्पदा में पठितोच उत्पन्न हो जाता है तब वह बिखरिष्ठ होने लगती है। इससे उत्पन्न होनेवाली निराशा के नष्प मानवप्रता वर्तमान समाज व्यवस्था की अपूर्णता को स्वीकार करने और नये सिरे से उसकी नींव डालने तथा उसके आधार को बरकने की घोर जम्पुष होती है। इसके कारण धार्मान्धेयन के महान धार्मिकताओं का जन्म होता है। विज्ञान ने नमुष्प के अपने ही हस्तनेप के टारक विरन के सम्भावित विनाश की ओ एक नई विभीषिका उत्पन्न कर दी है। इससे हमें यह जेतावनी याव मा जाती है कि पाप का परिमाण मृत्यु ही है।

यह भावना कि हम अपने इतिहास की एक निर्णायक बड़ी पर धा पहुंचे हैं और हमें ऐसा चुनाव कर लेना है जो उदियों की घटनाओं की पति एवं दिशा को निश्चित रूप प्रदान करेगा हमारे युव के लिए कुछ नवीन नहीं है। इतिहास के घनेक युगों में गलत या बही इस प्रकार का विश्वास पहले भी रहा है और उनमें से प्रत्येक ने ही यह अनुभव किया है कि दूसरे युगों की घनेला उसके लिए ऐसा दावा करने का धार्मिक धोचिरय है। जब रोम का पतन हुआ तो धार्गस्टाइन ने बिसाप करते हुई कहा था "रोम के पतन पर समस्त विश्व रो रहा है।" ईतुलहप के अपने नट से सप्त बरौप ने लिखा "समस्त मानव-जाति ही इस विनाश के भीड़ में धा गई है। येरी जिज्ञातातू से विपक गई है और रोमन ने इस बिम्ता में येरी नाभी को बड कर दिया है कि धार्मिक वह नपर बंदी है जिधने समस्त विश्व को धरना बरी बना वाला था।" इससे पूर्व की सहस्राब्दि में पुसाइ डाइरुस ने ४३१ से ४०४ ईसापूर्व के पेसोपोनीसियन युद्ध में एपीनियन साम्राज्य के पतन पर शोक-संतप्त उद्गार प्रकट किए थे। ४००० वर्ष से भी धार्मिक पुरानी एक प्राचीन मिस्री पाण्डुलिपि में निम्नलिखित वाक्य मिलते हैं

'धोरों का धार्मिकय है 'कोई सेत नहीं जोतता। सोप कहते हैं,

'हम नहीं जानते कि दिन-दिन क्या बटनाएँ बटेंगी।' हर बागह बूल उड़ती है, और किसीके बदन पर स्वच्छ बस्त्र नहीं बिछाई पड़ते। कुम्हार के बक की भाँति देख मोलाकार भूम रहा है। शायियाँ स्वर्णभूषणों से धलकृत बोल पड़ती हैं। किसीकी हसी नहीं मुनाई पड़ती। बड़े-छोटे सब यही कहते हैं भण्डा होता ऐसे समय हम न पैदा हुए होते। 'समूह लोगों को बकड़ी पीछनी पड़ रही है। भण्डे बरों की महिलायों को शायियों का काम करना पड़ रहा है।' शीघ्र इतने लुभावुर हैं कि लूकड़ों के मुँह से गिरे टुकड़ों पर झपट पड़ते हैं। बिन कार्यालयों में धमिलेस रखे वे उन्हें ठोकर पर्यस्त कर दिया गया है तथा कामज-यत्र नष्ट कर दिए गए हैं। कुछ मुँहों ने देस को राजवज्र से संश्लिष्ट कर दिया है। 'प्रबिकारियों को इतर-उपर खदेड़ दिया गया है। कोई भी सार्वजनिक कार्यालय वहाँ नहीं है जहाँ उसे होना चाहिए और जनता की प्रबस्था बिना बरबाहे की मेड़ों के समान हो गई है। कलाकारों ने अपनी कलाओं का सृजन बन्द कर दिया है। बोड़े-से सोग बहूतों का पत्र कर रहे हैं।' कल तक जो नग्न्य का धाज बनवान है और पहले के बनवान उसे लुघामर से प्रशिक्षित किए जानते हैं धुष्टता का बोलबासा है 'कास मगुम्य का प्रस्त हो जाता गरियाँ न मर्भ पारन करतीं और न शिशुओं को जन्म देतीं। तमी प्रस्त में सत्तार को दान्धि मिलेयी।'^१

मानव की स्मृति उसे अपनी जाति की प्रायु से प्रबन्ध कराती रहती है इसीलिए वो हजार वर्ष या चार हजार वर्ष पूर्व की भाँति प्राय भी वह प्रगुमर करता है कि वह जीवन की प्रश्लिष्ट प्रबन्धि में रह रहा है। किन्तु पहले समाये में सम्मताएँ बर एकाधिक महाहीनों में नष्ट हो जाती थीं तब भी दूसरे क्षेत्रों में बनी रहती थीं और प्रतीय का संश्लिष्ट ज्ञान हमारे बाँधवों को जाँठ के प्रबन्धि की रक्षा की शक्ति प्रबाम करता रहता था। मिली युतानी तथा युतानी रोमन सम्मताएँ बिरब के लपु प्रुषणों तक मर्पादित थी इन मूखणों तक ही प्रयस्त मानव-जाति का प्रस्त नहीं था किन्तु प्राचुरिभ-प्रम्यता की प्रश्लिष्टा बिरब प्र्यापिनी हैं। फिर यह बात भी ध्यान रखने की है कि बरदूसरी सम्मताओं का पवन हुआ तब प्राक्रमण का मोल प्रुषण बाहरी था। प्राय संकट प्रम्यर से है। दुनिया म इतने बिपट परिवर्तन हो रहे हैं कि प्रतीयनातिक परिवर्तनों से जनकी तुलना नहीं की जा सकती। वर्तमान-दिव्यति महान सन्भावनाओं से, प्रतीय संकटों एवं प्रनुषणीय प्रुखणों से पूर्ण है। यह प्रस्त भी सिद्ध हो सकती है और एक प्रबान

१. बर्मेन की बुलाक 'बर्मेन कितोरर के इन्डियन (इन्डियनो का लखिल) १९२०, पृष्ठ १३०-१३० से बर्मेन प्रियत बाए लपे प्रुष 'नैबरेन वि माइबंन' (१९२१) इ २४ प्रुषिभ प्रस्त में उरुपुन।

के अन्तिम दर्त की ओर से जानेवाली धारा में बहते हुए विचित्र प्राणी हैं। निरपघा के उत्पन्नान धूम्रवाह का आनिगन करने के समान हैं। हम धारा के विच्छेद कर सकते हैं यहाँ तक कि बसकी गति बचल सकते हैं।

इतिहास की एक प्रमुख परिकल्पना लोको के मन को दूषित कर रही है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि यह विचार, यह प्रकृष्टाचार पूर्वनिश्चित ईवी नियति के नाम पर होता है या पूर्णता की ओर अनिर्णय प्रवृत्ति के नियम के नाम पर या विश्वमेवा (Weltgeist) के नाम पर होता है। सबका वर्गीकृत समाज की भावना द्वारा इन्द्रात्मक रूप से इतिहास को बसकी अन्तिम परिणति की ओर ले जाते हुए होता है या एक ही परिकल्पना के बहुस्वी नान्य मौलिक की सूत्र भारिणी एक निश्चित द्वारा। कास्मिन के मत में अतन्त्र एवं अघृहीत ईवी अन्तिम सत्य है। ईश्वर ही सब कुछ है। मानव कुछ नहीं। यदि ईश्वर की इच्छा न होती कि वह कुछ को बिनाय से बचा ले तो वे कभी उससे उबर न पाते। वही कुछ को जीवन और दूसरों को मृत्यु का म्याय प्रदान करता है। यदि मानवता संभ्रर बन जाती है तो केवल इसलिए कि ईवी म्याय बैसा ही चाहता है। सब नियतिवादी सम्प्रदायों की भांति कास्मिनवाद भी आत्मा को अपनी विचरता का बोझ उठाने को छोड़ देता है। काष्ठ के लिए इतिहास मानव का क्रमिक स्यासमीकरण है और ऐसा किसी ईवी नियति के ही कारण होता है। हिबेल के लिए इतिहास परमसत्ता का क्रमिक प्रतापरण है। जैसे भी हो मानव-जाति सत्य की ओर गति कर रही है और व ताकविले ने अनुभव किया कि सत्य की ओर इस प्रवृत्ति में ईवी समावेश ने ही कुछ वर्तमान है 'यह सार्थकैतिक है यह स्थायी है यह समस्त मानवी इतरधर्मों के परे निकल जाता है।' ११ बीव-विज्ञान-सम्बन्धी विकासवाद के सिद्धान्त और वैज्ञानिक विचारों ने प्रवृत्ति में एक उत्कृष्ट विस्वात को आम दिया, यद्यपि अपने-आप होनेवाली प्रवृत्ति के किसी नियम की स्थापना वैज्ञानिक आधार पर नहीं की जा सकी। स्वेसर ने कहा कि प्रत्येक पदार्थ जिसमे मानवता भी सम्मिलित है अपने-आप अन्तर् से अन्तर् होता जा रहा है। मार्स वादी एक ऐसे पुत्र की ओर आँसू लगाए हुए हैं जब 'अभिष्य के पूर्वत' विकसित साम्यवादी समाज में आनन्द्यकता के धर्म से मुक्ति का सच्चा राग्य विकसित होगा।' १२ यद्यपि मार्स ऐतिहासिक अन्तिमों की इन्द्रात्मक प्रवृत्ति पर जोर देता

१ कास्मिन ने लिखा था : "जब हम ईश्वर के पूर्वजन्म की बात करने दें तो हमारा मतलब यह होना है कि सब वस्तुएं सरा सम्बन्ध अन्त से अन्तकी इच्छा करने हैं, यद्यपि अन्तरे ज्ञान में अन्त अन्त या अनिष्पत्ती है। केवल अन्तर्गत है। यह अन्त समस्त नियम एवं प्राणियों के सम्बन्ध में लागू है।

२ 'इश्वरमेवा इव अमेरिका' ईश्वरी टीव इन्ड अन्तर्गत (१९२३) भाग १ को प्रस्तावना।

३ देखें, वारिन विन्सन के पुत्र 'दि एयरविवा अन्तर्गत प्रोपेस (१९२३), इन्ड १३।

है किन्तु वह बैयनितक प्रयत्न की आवश्यकता की ओर से धार्मिक नहीं मूंद लेता। धार्मिकवादी इस विरिवाह से काम करते हैं कि इतिहास उनकी ओर है। नीत्ये को विश्वास हो गया या कि यूरोप की संस्कृति का विनाश होकर रहेगा समस्त परम्परागत मूल्यों को ग्रहण लगने ही जाता है और हम मार्ग या पथ-दर्शन से हीन होकर जंगल में भ्रमिष्ठ हो रहे हैं। स्पेंगलर कहता है कि नियति के ही आदेश से इतिहास क इस युग में हमारे धार्मिक मूल्य विश्वस्त एवं प्रस्त हो उठ हैं। हमें मुक्ति के मनुष्य का साथ देकर परिपूर्ण इन्द्रबाध या इतिहास को उसके काय में सहायता देना है। हम उदासीन बस्ति स्रस्त-से हो गए हैं और हमने मान लिया है हम अपने किसी भी कार्य द्वारा बतुविक कये मिय्याचार की विजय की गति का अवरोध करने में असमर्थ हैं।

इतिहास की नियतिवादी विचारधारा में मानव-स्वातन्त्र्य की पर्याप्त धारणा नहीं मिलती। उसकी दृष्टि में गहराई और सम्मान का अभाव है। आवश्यकता की छाया उसे मनुष्य को संघर्ष करता है उसका उसे ध्यान नहीं पर मनुष्य की मुक्त धारणा में निष्पत्त रहे बिना हम अपने लिए भी बही हो जाएंगे जो प्रकृति एवं इतिहास हमारे लिए हो गए हैं—एक जगत एक विश्वस्तता के समान। कर्म पर मुक्ति द्वारा ही विजय मिल सकती है। धारणा का मुक्ताचरण ही ऐतिहासिक आवश्यकता पर विजय प्राप्त कर सकता है। "ईश्वर ने मन्दिर क विनाश का निषेध किया है। ईश्वर के ही नाम पर ईश्वर के श्रेष्ठ से मन्दिर की रक्षा करो।" मानव को उस पथ पर चलना है जो उसकी प्रकृति में निहित निम्नतम से उसकी पचुता से, ऊपर उठाकर उसे श्रेष्ठतम तक पहुँचा दे। मानव-प्राणी पदार्थों में एक पदार्थ मात्र नहीं है बस्तुओं में बस्तु-मात्र नहीं है। वह अपने लिए कुछ अर्थ रखता है। वह कोई ऐसी मानसिक प्रकिया नहीं है जो पहले से ही पूर्णतः निश्चित हो। यदि उसे पदार्थसत्तात्मक ही बना दिया जाए और धारमानुभूति से उसे रहित कर दिया जाए, तो वह बस कर्म या आवश्यकता का धिकार होकर रह जाता है। परन्तु पदार्थमूलक घटनाओं से बचना मनुष्य के लिए सम्भव है। वह धारमयत् हो सकता है तथा अपने-आप बन सकता है। मानव-जाति का समस्त इतिहास उसके मुक्त होने का निरवधिष्ठन प्रयत्न-मात्र है। मानवजाति में जो महान ज्योतिया पृथ्वी पर भवती हैं—बुद्ध मुकरात अरमुत्तम ईसा—वे सब मानव प्रकृति की दयी सम्भावनाएँ ही हमारे धार्मिक व्यवहार कर गई हैं और हमें धारमयत् ही मानना चाहिये प्रदान करती हैं।

पृथिवीतन्त्र में प्रगति की कोई निरन्तरता नहीं रही है। कभी एक दिशा में होनेवाला विकास दूसरी दिशा में होनेवाली बुरबस्था का मूलक-मात्र रहा है। भौतिक शास्त्रज्ञ-को-मुपारो में हमने बड़ी प्रगति की है किन्तु साधक-धार्मिकों का मुपारो में हम बैसा नहीं कर पाए। इतिहास की पति में कोई निश्चित नियम

योजना या आकार हमें नहीं प्राप्त होता। मानवता मनुष्य के मुक्त आचरण द्वारा की गई उल्लासों द्वारा ही धार्य बढ़ती है। जब हम वर्तमान स्थिति के प्रति सचेत होते हैं तब उसका अभिप्राय यही होता है कि हम उसमें सोइस्स आचरण कर सकते हैं। स्थिति किसी पूर्वनिश्चित एवं नियति-निर्धारित वस्तु की धोर नहीं ले जाती। बिनाय की धोर प्रयास कुछ अनिर्धार्य नहीं है। हमारा अभिप्य इसपर निर्भर करता है कि हम क्या सोचते धोर सकस्य करते हैं। स्थिति की प्रकृति को समझ लेना उसपर नियन्त्रण प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है। जब हम उस समझ लेते हैं तब उसीसे उसमें सुधार-संस्कार करने का सकस्य उत्पन्न होता है। फिर तो हम उसकी गति चाहे अितनी भीमी या तेज कर सकते हैं। हमारे जीवन में इतनी प्रसंगतिया हैं कि हम निश्चयपूर्वक अभिप्य-कथन नहीं कर सकते।

परिवर्तन जीवन का नियम है। मनुष्य को अपने चतुर्विध फंसी स्थिति के अनुसार अपने को ज्ञानता पड़ता है। जब वह चारों धोर बस ही जल से बिरा होता है तब समुद्र द्वारा जो बुझ प्राप्त हो जाता है उसीपर गजर करनेवाला मसूदा बन जाता है यदि वह पारपबहुल सप्यकटिबंधीय जलवायु में रहता है तो पलसंग्रही बन जाता है। मनुष्य को बाह्य प्रकृति धोर स्वयं अपने साथ समझोता करना ही पड़ता है। यहाँ उसके जीवनित रहने की शर्त है। सभी बम बोधित करते हैं कि मानवता का एकीकरण ही उनका सकस्य है। भौतिक धयवा भौगोलिक दृष्टि से यह संपादित भी हो चुका है किन्तु मानवता के इस ऐक्य की स्वीकृति के लिए हमें अपने मन एवं हृदय को सब भी तैयार करना है। जातियों एवं राष्ट्रों के विभाजन के बीच राष्ट्रों की प्रतिइगिता धोर बयों के संवर्य के बीच एक गई एकता का निर्माण करने के लिए एक नये मोड एक नवीन स्थापना की जरूरत है। इसके लिए साहसिक प्रयत्न धोर हमारे दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है।

इस धारा के बिना कि मानवता सबमुच ही एक सखतर नैतिक स्तर तक जठमे मे समब है या इस स्वप्न के बिना कि स्रथ में वह धोर उसके साथी मानव एक-दुसरे को समझने धोर एक-दुसरे के निरट घाने मे समर्ब होवे मनुष्य जी नहीं सकता न कोई काम कर सकता है। म्यनित्यों एवं राष्ट्रों के बीच केबम विभाजक बीबारें ही नहीं हैं जोड़नेवाली कश्चिया भी हैं। किन्तु मनुष्य-जाति की सबसे बड़ी मंडिस धोर सर्वोच्च नियति है—धोर अधिक मानवीय धोर अधिक धाप्यारिमक बनना तथा सवेरना-सहानुभूतिपुस्त समझदारी के धोर अधिक योग्य होना। मात्र जैसे युयों में जबकि उत्तमन धोर मय का राज्य है यह माया मानव हृदय मे प्रबस ही ही चठती है।

मंनार के महान धर्मसिंहाक जो कुछ उन्हें बिरासत में मिला होता है उससे कुछ भिन्न बात की ही धारा देते हैं। उपनिषदों के अवि पीतम बुड

अरपुत्र सुकटात ईसा मुहम्मद नानक और कबीर इत्यादि अपने जीवन में ही परम्परागत बिचारों को प्रतिबाध रूप से तोड़ने को बाध्य हुए। जैसे उपनिषदों के ऋषियों और बुद्ध ने वैदिक क्रमकाण्ड का विरोध किया जैसे ईसा ने यहूदी परमायता को चुनौती दी जैसे ही हमें भी अपने के सार्वभूत तत्त्वों की रूप धार गठन घसपा बाह्य प्रवृत्तियों में जो मानव की दुर्बलता एवं काम की विकृतियों से उत्पन्न होते हैं रक्षा करनी पड़नी। जो पुनः हमारे युग की साव्यव्यवस्थाओं और मार्गों के अनुसंधान सामाजिक प्रतिस्विकृति की दृष्टि को चुका है, उसे छोड़ ही देना चाहिए। कामिबास अपने 'मानविकाम्निमिष' में कहते हैं 'हर बीज केवल इसलिए प्रकृति नहीं है कि वह पुरानी है। कोई भी साहित्य केवल गया होने के कारण नगण्य नहीं समझा जा सकता। महापुरुष उपयुक्त विवेचन-परीक्षण के परभाव ही एक या दूसरे को ग्रहण करते हैं। केवल मूल ही दूसरों के विरवासों द्वारा पचभ्रष्ट होते हैं।'^१

इतिहास निरन्तरता और प्रगति है। परम्परागत निरन्तरता केवल यांत्रिक सृजन नहीं है वह सृजनारमक रूपान्तरण है। हमें धार्मिक पर्यायता को दूसरे युगों की पद्धति एवं बिचारसरणी से निवासकर अपने युग एवं सतृति की साव्यव्यवस्थाओं और मार्गों के अनुसंधान हासना पड़ना और इस प्रकार उसकी रक्षा करनी पड़ेगी। हमें ऐसे सामान्य सत्य का सृजन करना होगा जो प्रमुता या होमता की कोई भावना भाए बिना जीवित धर्मों को एक कर सकेंगे। काल सम्पूर्ण वस्तुओं को बरस देता है। तब अपनी धान्तरिक साध्यभावना एवं प्रेरणा द्वारा हमें सनापन सत्य तक पहुँचना ही होगा।

बिश्वास एक साधारण साध-साध जसत है। यदि हम सत जाति और परती में बिश्वास रखते हैं तो हमारी दुनिया प्रतिहिता एक उत्पीड़न की पटनाओं से भर जाती और यदि हम अपनी पधुओं जैसा साधरण करेंगे तो हमारा समाज भी एक जंगल जैसा हो जाएगा। यदि हम सार्वदेशिक साध्यात्मिक मूल्यों में बिश्वास रखेंगे तो सबसे पामिष्ठ एवं शीष्टक ना विकास होया। अर्थात् बुद्ध अर्थात् पल देता है। साध हम साधारण प्रसनों के बारे में सोच रहे हैं और सत्य की परम अवरकर एक पुरस्करणीय ज्यों में जानने को जसुक हैं।

नेटे बहता है संसार एक मानवेतिहास का एक और कवल एक ही वास्तविक तया गहन बर्ण विषय है साध सब बर्ण दिग्घ ससके धधीन है और यह है बिश्वास एक प्रतिबास के बीच धपयं। जितने भी युग बिश्वास द्वारा

१ इरायमिन्दक म नानु नरं

ब साधे बाधं मधदिमधधम।

सम्भ- क्रीधाम्भनरधकन

मद- वरमाकानक पुठ- ॥१२॥

नियंत्रित हुए हैं फिर चाहे उनका रूप कुछ भी रहा हो उनका एक अपना धातो और धातु-र होता है वे अपने देश-जाति के लिए भी और पारवत-सनातन के लिए भी कसबायक होते हैं। जितने भी सुय ऐसे हैं जिनपर किसी भी रूप में अविश्वास का राज्य है वे यदि अपने मिथ्या धामोक से दान-भर के लिए धमक भी उठते हैं तो भी सनातन काल-प्रवाह द्वारा उपेक्षा को प्राप्त होते हैं, क्योंकि कोई भी धनुषनात्मक या धनुषपादक वस्तुओं को लेकर अपने जीवन को गलत करता नहीं चाहता।” विभिन्न भागवत-समाज भी मनुष्य-प्राणिमों की भाँति ही मिथ्या एवं विश्वास से जीवित रहते हैं और मिथ्या का लोप होते ही मर जाते हैं। यदि हमारा समाज पुनः अपना गमा हुआ स्वास्थ्य प्राप्त करना चाहता है तो उसे अपनी कोई मिथ्या पुनः प्राप्त करनी ही पड़ेगी। हमारा समाज इतना अस्वस्थ नहीं है कि उसकी रक्षा ही न की जा सके कठिनाई इतनी ही है कि वह भिन्न-भिन्न मिथ्याओं तथा परस्पर-प्रतिक्रम प्रेरणाओं से पीड़ित है। अभी वह उस्ताह निहल हो उठता है अभी निराशा से हिम्मत हार बैठता है। पर यही धातु-र वेदना यही सब हमारी आशा का कारण है। हम केवल ऐसी मिथ्या को खरूटें हैं जो वस्तुओं पर अन्तरात्मा की शक्ति स्थापित करे और इस दुनिया में वह विज्ञान एवं समाज गठन में अपने पारस्परिक सम्बन्ध को परम्परागत ब्रह्मों को दिसा है, पुनः महत्त्व का स्थान प्राप्त करे।

दूसरा अध्याय

विश्वास की कठिनाइयाँ

प्रायः जिन प्रमाण शक्तिशाली और प्रभावों के कारण विश्वास या प्रमाणा की समस्या उठ जाती हुई है उनमें बहुत ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रबल सामाजिक चेतना तथा विश्व-एक्य में हिममल्ली प्रमुख है। यदि कोई धर्म-इसारे युग के वैज्ञानिक स्वभाव को समुचित करने, जयवी सामाजिक-आकाशार्थों के साथ सहानुभूति रखने और विश्व-एक्य को प्राप्ति बढ़ाने में प्रयत्नरत है तो वह जीवित रहने की प्राप्ति नहीं कर सकता।

१ धर्म और विज्ञान

वैज्ञानिक स्वभाव अपनी सुविधात्मक जीविक जिज्ञासा, किसी भी चीज का बेवस विश्वास पर स्वीकार करने में हिचकिचाहट तथा मन्त्रह करने की शक्ति के कारण ही सम्पूर्ण दुर्घटों एवं प्रयोगों को प्राप्ति कराना रहा है। वह किसी विश्वास को बिना निरीक्षण-परीक्षण एवं प्राप्ति के स्वीकार नहीं करता। वह प्रयत्न करने और मायताओं पर सन्देश करने में स्वतन्त्र है। इस प्रेरणा इस भावना ने हमें अपने भौतिक परिवर्तन पर एक अद्भुत प्रमाण प्रदान किया है।

धर्म का जो सामाजिक अर्थ लिया जाता है उसमें वह विज्ञान को प्रत्यक्ष भावना का विरोधी है। विज्ञान की त्रिभिः आनुभविक या अनुभवधित है, जबकि धर्म की पूर्वाग्रही है। विज्ञान किसी सर्वाधिकारवादिता पर आधारित नहीं है बल्कि एने दृष्ट प्रमाणों की शक्ति इंगित करता है जिनका अनुमान कोई भी प्रमाणित मस्तिष्क कर सकता है। विज्ञान जितना एवं जिज्ञासा की स्वतन्त्रता के बीच किसी भी प्रतिबन्ध को स्वीकार नहीं करता वह पूर्णतः ज्ञान एवं तथैव अनुभव का स्वागत करता है एक सच्चा वैज्ञानिक कभी पूर्वाग्रह या अंधविश्वास का शायद नहीं भेता। उसके दृष्टिकोण में ज्ञानात्मा आत्मतन्त्र और दुर्घटों से छीनने की तत्परता दिखाई पड़ती है यदि हम जिज्ञासा की स्वतन्त्रता को महत्त्व देने हैं तो हमें वह समझते देर न लगे कि वह धर्म का प्रमुख अंग सर्वभूतवाद या प्राधिकारवादिता के प्रतिद्वन्द्वी है।

तन्मिथन ने सम्पूर्ण अज्ञानवाद को राक्षसी कहकर जयवी जिज्ञासा की है।

प्रत्येक धर्म का दावा है कि उसका धर्मग्रन्थ असाधारण रूप से ईश्वर की वाणी है और इसलिए निर्रन्त है। परन्तु धर्मग्रन्थों की भ्रान्तिहीनता विज्ञान की दृष्टि में भर्त्सनीय है—दोनों में विरोध है। कतिपय मूलधर्मवादीयों या परम्परावादीयों के अतिरिक्त धर्मग्रन्थ को अक्षरशः प्रमाण मानने पर प्रायः सब कोई जोर नहीं देता। सब धर्मग्रन्थ केवल उन लोगों के भ्रान्त मन एवं हृदय पर ईश्वरीय वाणी के सम्पर्क-साध को व्यक्त करते हैं जो उसके प्रति उन्मुख हैं या जो उसको ग्रहण करते हैं। सब धर्मग्रन्थ की बातों को अतर्क्य एवं अभास्य नहीं समझा जाता।^१

धर्मग्रन्थों के अधिकांश पाठ को अक्षरशः ग्रहण भी नहीं किया जा सकता। उदाहरणस्वरूप यदि हम सृष्टि की तिथि-सारणी और सृजन-सम्बन्धी भाग के प्राकस्मिक कानों की मासिका पर विचार करें और एक ठोस स्वर्ग एवं स्थिर पृथ्वी की बात को अक्षरशः मानें तो वे विज्ञान की सोचों के विरुद्ध प्रतीत होंगे। फिर कोई भी धर्म इस सम्बन्ध के सामने ठहर नहीं सकता कि वह ऐसे विरवालों में मूलबद्ध है जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है, न कोई व्याख्यात्मक सत्य ही उनके पीछे है। धर्म से कट्टरता परम्परा एवं शौर्यशक्तिता को घनग कर देना उसे क्षोभना कर देना है। इसीलिए धर्माधिकारी ऐसे सम्पूर्ण प्रयत्नों की निन्दा करते हैं जिनसे धर्मग्रन्थों के प्रति निष्ठा को बलका लपटा हो।^१

१ प्रोफेसर सी एच० डॉर लिखते हैं : 'धर्म-विराट तो वैज्ञानिक मान्यताओं की अनेकानेकों की अनेकानेक है। वैज्ञानिक अनुभव की धर्मिता धार्मिक अनुभव को भी समरथ रचना चाहिए कि लगे लगे को अन्वय रूप करने को वे सक्षम हैं वह अन्तिम स्तर के एक अक्षर अक्षरों पर प्रतीक के सिद्ध और कुछ नहीं है।'—दि क्वारिटी ऑफ़ दि वाचमन (१९२०) पृष्ठ २

२ वह रोमन सम्राटों ने ईसाईयत के प्रति लक्ष्मण्डल की नीति अपनायी तो रोमन कैथोलिक धर्म ने 'सेन्सुरा' (कटोर निरीया) की एक प्रणाली गठित की। पहली किताब, जो इस प्रणाली द्वारा अध्यात्मिक रूप से निषिद्ध घोषित की गई, धाररी वेरिगस की पुस्तक 'अभिधा' थी। धाररी वेरिगस को निवारण धर्मग्रन्थि में ३२५ ई० में बालिक घोषित किया था। वह प्रणाली मगान प्रमुख्य में बनती रही। मुस्लिमों के आधिकार के बाद तीसरी ई० ६४६ में रोमन कैथोलिक धर्म में आदेश दिया कि धर्माधिकारी प्रकाश के पूर्व सम्पूर्ण पुस्तकों की निरीया करेंगे। रिचार्डसन के बाद जेम्स कौसिग (१५५२-१५६६) ने निषिद्ध पुस्तकों का एक सूचीय तैयार कराया था। जॉर्ज रैमन ने ईसा की वर्ष का कन्वर बापते हुए कहा था कि यह धर्मग्रन्थानिधन एक धर्मग्रन्थ है। १८२२ ई० में 'कालेज ऑफ़ दि प्रोटेस्टेंट थियोलॉजियन' ने अपने ईसा की वर्षा करने हुए कहा था "एक अधिनीय मान्य—इत्यादि मान कि मैं उनकी लक्षण के अन्वयानुसार गुणा से प्रकल्पित व्यक्ति द्वारा उल्लेख कर देने का प्रतिपाद करना नहीं चाहूँगा।" कुरुक्षेत्री धर्म धर्मग्रन्थ के इस आरोपित अक्षरों को मानने को तैयार नहीं है। रोम धर्म लक्ष्य में इन १८२२ में एकत्र धारिकों को अक्षरशी देने हुए कहा था।

मध्य स्तर अधिनीय ईसाईयती और धर्म की समस्त धर्मग्रन्थों को मजदूर करने से प्रकल्पनीय वे धर्मग्रन्थारी निष्ठा, वे निष्ठा तथा निष्ठा का धार कर देनेसे अनेक अक्षर

बन गया।^१

ईसुसहस्र के अस्तव्यस्त में मड़-बकरी जैसे जानवरों के बीच 'मां धीर धिगु' की गाथा भारत में योद्धा के गोबुद्ध के बीच समोदा एवं कृष्ण की यात्रा दिशाती है। स्वर्ण की सम्राज्ञी या कुमारी माता (बजिन मन्त्र) की धीर जो मेरी के रूप में पूजित है। पूबकाम में इस्तर एस्तोरेष आइमिस लिबेल धीर द्वितीमातिस के रूप में ज्ञात थी। मानव-जाति के लिए ईसा की बेचना गिलगामेश हेराक्लिस प्रोमीथियस के दम एवं इसाइया के सेबक के कष्ट-सहन में देखी जा सकती है। मानवरूप में ईश्वरत्व की पूजा ईसाइयों के पूब यहाँ तक कि रोम में भी प्रचलित थी।^२ यही नहीं ईसाई चर्च के लिए जो नाम 'एक्वेगिया रत्नागया बहु भी गब्स के नगर राज्य में पहल में प्रयुक्त होता था। वही यह मन्द नागरिक' मर्मति के लिए तब प्रयुक्त होता था जब बहु ग्याय कार्य के लिए नहीं वल्कि राजनीतिर कार्यों को निबटाने के लिए बैठती थी। धब इस मन्द में किमो स्थानीय ईसाई-समाज का भी बोध होता है धीर मार्केटिक चर्च का भी।

जब ईसाईयमत्रों ने ईसाई तथा अन्य धर्मों के बीच अनेक समानताएँ पाइ तो उनमें से कुछ ने कल्पना कर ली कि ये मानव को प्राप्त में फमान के लिए धैर्यता की चानें हैं। उनमें जो समाज विचारवान थे उन्होंने इनको ईसाईधर्म के लिए ईश्वरीय तयारी के रूप में ग्रहण किया।

३ मानव-व्यक्ति एवं प्रौद्योगिकी का विकास

हम एक ऐसी अवस्था में विकसित हुए हैं जो विज्ञान द्वारा प्रदत्त वास्तविकता की समीचीन को धयनाम के लिए हमें प्रेरित करती है। जीवविज्ञान मनोविज्ञान तथा इतिहास की गोर्षों ने पठा जसता है कि मानव सहज या प्रतिबल फियासा (रिपनफनेज) का प्राणी है। धयने पर्यावरण की लक्षितया की दृशा पर धाधित है।

१. जन्मिन देल निराउ है "इसमें मन्वेद नहीं कि चर्च में २२ दिसम्बर का प्रिमास का दिन निपन करने में जो मूर्त का अन्वदिन या मूर्खेव-पूजा (धरती धर्म) से निवार किया। -'क्रिश्चियनिटी इन दि लाइव फॉर मॉर्टन जॉर्ज (१९२६) पृष्ठ १३।

२. 'प्रथम ईसाई' पब्लिशिंग के किल लोवें को ईसाई बनाया था उन्होंने 'दार्शन ध्यग-रत्न के रूप में ईश्वर' के अन्वरेण की धयना की थी। वहा मया कि कसका मरलरुतिना धर्म को किसी धम्म के धामि-न से बहु शिषु प्रकट बुद्ध था और वह देवीरुत्न जिसे कोई भी लक्षित-कुम्बिका मैटिक लदन कहरर कांय उरेगा ईश्वर की एक धारमविष्कित के रूप में बज्जया गया—'इस ईश्वर को प्रेन ही किमकी शक्तिर और जिमका ईश्वरत्व पिना का शक्ति ही बुन में जो वर्तमान था। इसे धयने वर्तित प्रालिधे के अन्वरे के लिए किना के ध्यमवर्धितन के मयात कर्ष की संका ही मर्त जिमसे किना ने बुन के निर धयनी देवी शक्तिर का दिष्वा का रोषदापूर्वक स्थाप किया।'—'जन्म' ज० टोपनरी: 'द रट्टी मॉड दिग्दी' भाग ७ (१९२७), पृष्ठ ७२८।

घोर प्रायोगिक विज्ञान द्वारा निरूपित एवं नियंत्रित होता है। बाइबल के चरमलेखक (लानिस्ट) के इस प्रश्न का कि 'मानव क्या है कि तुम उसका इतना विचार करते हो मध्यविद्यति शताब्दी का विज्ञान उत्तर देता है कि मानव एक कार्यशील मंच है जबकि पत्रिक है प्रथिक एक प्राणी है। परन्तु के 'एबिक्थ' में प्रतिपादित मानव-विषयक जीववैज्ञानिक विचार की पुष्टि उसके 'एबिक्थ' में दिए हुए वैज्ञानिक जीवन के धारणों में हुई है। धार्मिक विचार जो और देता है कि कम से कम कुछ सीमा तक तो मानव को स्वतंत्र स्वयंपूर्ण अभिप्राययुक्त एवं बुद्धिशील मानो इसे प्रयोगशाला के नियंत्रित प्रयोगों द्वारा नहीं सिद्ध किया जा सकता क्योंकि वे प्रयोग मानव की उच्च मनोरचना से सम्बन्ध ही नहीं रखते जिसमें वह एक चेतन प्राणी के रूप में अपने प्रति सजग होता है।

प्रायोगिकी (टेक्नामजी) की बरीमत धार्मिक संबन्धता की ऐसी नई प्रथा सिया निकल आई है जिनमें व्यक्ति की अपनी भक्ताचारसूत्रा तथा बुद्धों के साथ अपनी एकता की भावना का लोप होता जा रहा है। हमारा समाज एक विद्यालय संबन्ध का मंच बनता जा रहा है और व्यक्तिगत सम्बन्ध उसमें लीते जा रहे हैं। परिवार, शास्त्र-समूह, स्थानीय संस्था मन्दिर, चर्च या मस्जिद का प्रभाव मिटता जा रहा है। लोग अज्ञान गठमान हैं और उन्हें कश्चित् ही धार्मिक मित्त पाती है। प्रायोगिकी की प्रवृत्ति ने जो लुभियाएँ हमारे प्राये रख दी हैं उनमें जो बुरे हुए हैं वे धार्मिकविषय के प्रयत्न में कठिनाई अनुभव करते हैं। हम भौतिक स्तर पर सुखपूर्ण जीवन बिटाने के साधनों का जितना ही इस्तेमाल करते हैं उतना ही अपने-आपसे दूर पड़ते पाते हैं।

उन बच्चों की बाँटि ही जो उन्हें धार्मिक प्रदान करते हैं और बिह्वल कर देते हैं उनसमूह न तो बुरे हैं न भले। बच्चों ने हमारे जीवन को अटिभ बना दिया है और बुद्धि ने हमारे मन को अघाँठ कर रखा है। संतुलन धार्मिकता और निर्मल धार्मिक हमारी पकड़ से निकलते जा रहे हैं और सुरक्षा की एक भिष्या भावनावस व्यक्तियों में समाहित होकर एक गया इफार्ड-नुज बनाता जा रहा है। इस बुज या समूह की वैज्ञानिक ध्याया हमारे लोक-विषय अघोप व्यापार, सामाजिक जीवन एवं धार्मिक सबपर छा गई है। इस समूह का सबसे बड़ा अतरा संघत अविचार या असत विचार नहीं है बल्कि विचार का एकान्त अभाव है। हमारे जीवन पर समूह-माध्यम के प्रत्यक्ष असर एवं प्रभाव के कारण निष्कर्मता परवसता एवं एकरूपता को बन मिला है। युन सिद्धि एवं संकल्प प्रक्ति पंगु हो गई है। प्राकृतिक स्वतन्त्र चिन्तन के स्वान वर धनपड़ भावना या प्रायेण के प्रतीकों एवं बच्चों को साम्यता प्राप्त हुई है। मनोवैज्ञानिक प्रति-आय-आयन का समस्त नाम लोक-समूह का संतुल विवेक पड़ गया है। जो लोक बनता को भुसावा दे सकते हैं बड़े प्रभावशाली हो जाते हैं। राजनीति समूह-मनोविज्ञान

का जुमा बन गई है। समूह ने ही बैस्टाइल पर पवरात किया समूह ही या जितने हिटलर के प्रभाव का सामूहिक मानस के साथ स्वानत किया। धाम भी वैचारिक कट्टरता के लिए लोकसमूहों का शोषण एवं उपयोग हो रहा है। लोक मानस को निर्बल करने के लिए लोकमत के नेता प्रचार-बीसस का धापव लेत है। अब हम देखते सुनते हैं या टेलेविजन के कार्यक्रम का अनुसरण करते हैं तो हमें पता लगता है कि बड़े समूह राष्ट्र की वैदेशिक नीति एक वैज्ञानिक के नैतिक तर्क, एक कलाकार के कार्य और एक मोटर की विद्येपताओं का निर्णय करते हैं।

एक प्रौद्योगिक यांत्रिक सम्यता में एक सामूहिक समाज में व्यक्ति एक व्यक्तिवहीन निजी प्रेरणाओं से रहित रखाई-मात्र बनकर रह जाता है। वस्तुएं जीवन का नियन्त्रण करती हैं। सांख्यिक शीतलों द्वारा गुणात्मक विशेषतात्मक मानव-शक्तिओं का स्थान छीन लिया जाता है। मानवीय होने का अर्थ तो विश्वासशील होना स्वामु होना सहयोग की इच्छा से पुर्न होना सहानुभूतिशील होना प्रहृषणीय होना है। मानवीय होना जनतन्त्रात्मक होना है और उन शीतलों से भी विचार-विनिमय में भागति नहीं करमा है जो हमसे भिन्न मत रखते हैं। यह अपने पड़ोसियों पर विश्वास रखता और अपने शत्रुओं के प्रति उदार होना है। यदि हम अपनी मनुष्यता को फिर से प्राप्त कर लेते तो मनमानी करनेवासी सत्ता को धातमसमपण करने से भी इन्कार करते और राष्ट्रों को सामूहिक मानस-विपर्यय या धातमसमपण की स्थिति से जितने कुछ (राष्ट्र) पड़ गण है उबाने में मदद देंगे। परन्तु मात्र स्थिति यह है कि धार्मिक सत्ता का प्रौद्योगिक संघटन, जितने व्यक्ति का महत्त्व बहुत ही कम हो गया है एक मौसिक संगण्य की बढ़ावा है सब्य ज्ञानधारा को प्रस्वीकार करने का प्रयास करता है।

धार्मिक सरकारें मानव-शक्तिओं के धातमसमपण पर धातमसमपण करती हैं और जते तट करने की प्रवृत्ति रखती हैं। धर्म-धर्म के मनुष्यों को अपने प्रति वैशय्य पदार्थ के रूप में बहल देती हैं और धर्म में उन्हें अपने प्रति निरपरा और धारिश्वास से पुर्न करके छोड़ देती हैं। यह केवल शौडिक स्तर पर ही नहीं होता बल्कि धारमा की गृहपी में भी होता है। ये मनुष्य धरमी धारमा ही सो चुके हैं। ऐसे ही मनुष्यों को उपनिषद् 'भारमहन्तो जना' कहकर पुकारती है। धातमसमपण का अर्थ है धातमसमपण के धातमसमपण में—एक ऐसे धातमसमपण में जो किसी बाहरी शक्ति के हारोप से धातमसमपण और धातमसमपण है तथा जितनी धातमसमपण प्रभुमता धातमसमपण है—निन्टा इनका अर्थ है धारमा द्वारा धारमा पर पुर्नधारमा। हमारे धातमसमपण का एक स्तर है सण्य का एक धम है धारमा की एक धिन्तारी है। हम धुषण पदार्थ-जगत् के धातमसमपण नहीं हैं जिससे धार्मिक वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी हमें धिन्तार कर देना चाहती है। धातमसमपण के

असाध्य प्रयोग और मानव के प्रभ-पतन के बीच एक नुप्त सम्बन्ध है।^१ यदि मैं अपनी भक्ति सबाई और पूर्णता को कायम रखना हूँ तो प्रौद्योगिक प्रगति का विवेकपूर्ण धारणा-साधन से सामंजस्य करना ही पड़ेगा।

४ सांकेतिक प्रत्यक्षवाद

पूर्व एवं पश्चिम दोनों में प्रत्यक्षवाद तत्त्वज्ञान का एक घाघरी घंग रहा। घत्री हाम तक यह इन्द्रियलक्ष्य चेतना एवं निष्कर्ष पर घाभित मानव जाण के एक विधेय सिद्धाण्ट धाध्यात्मिक कल्पनाओं के प्रति घृणा घौर वैज्ञानिक ज्ञानी के लिए घडा का घोटक धा—घाधारघास्त्र की एक ऐसी प्रजाती को जमाना में मानवीय किण्णु जर्म में घनीघरबाही थी। ये प्रत्यक्षबाही एक सांकेतिक दृष्टिकोण रखते घ घौर जीबन तथा जित्तन के प्रति उनका एक निविधत जोभाघ एक निविधत रघैया बा। परम्परागत घघ में उन्हें ऐंसे तत्त्वज्ञानी या तर्घनिक कहा जा सकता है जिनके ब्यक्ति की प्रकृति तघार में उसके स्वाध तथा तकी नियति के सम्बन्ध में निविधत विघार थे।

नवीन प्रत्यक्षबाही घम्पूर्ण धध्यात्मविघा का विरस्कार करते हैं। जो कुछ इन्द्रियलक्ष्य नहीं है या जो वैज्ञानिक बग्घों की सहायता से भी इन्द्रियबाह्य नहीं; यह सत्य होने का दावा नहीं कर सकता। विज्ञान जिस परार्ध-जगत् का घनु ज्ञान करता है वही सत्य है। उसके घठिरिधत जो वस्तुएं सत्य हैं उनकी प्रकृति भी वही होगी बाहिए जो पराघ की है। केबल परार्ध को ही हम देख घौर घू सकते हैं घौर जो कुछ भी घानुबधिक प्रमाण के योग्य है वही सत्य है। मूर्खों की जात सोचना बा सीधर्म का उपयोग करना सत्य के प्रस्न की दृष्टि से घसंघत है। सा करना घयघार्ध की परघाहवा की मिध्याज्ञाओं की बुनिया घ भ्रमण करता है। एक घबुधय धाध्यात्मिक यघार्ध काम एघ घबकाघ के घमूर्त कम में एक जाबलक्षक घ्याघात-भाघ है।

घरसिस बेकन ने कहा बा 'घम्पूर्ण प्रचलित दार्घनिक विघार-प्रजासिया क प्रकार के मचनाद्य है जो घयघार्ध एवं दुरघसज्जा की भूमि पर बने स्वर्ध'

१ बर्किन स्वेर्किंसन 'कुल गिरे इर्वेरी-किरध जाल' (१४४) में हाकन कहा है घने जगनाठघ घपाल-कन में घारघरध सम्कण ब्यक्ति का कोर्द कनाल नहीं कर रही है कि यह कबरा कने के लिए कोर्द बारास रही है कि क् घेष्ट कर लगेगी। तमान को ब्यक्ति कुल ही ब्यजर्म (गबयेरघात्त) का बाल है; घरनी परिपूर्णा के साघ संघत घनन का से ब्यक्ति कहा बाघ न। उनके लिए कोर्द घमिधय ही बही रह गया है। पश्चिम ने एक ठे अघाक को क्क कि क् के जो बक घरीन के अघा है। क्क मनुष्यों को इल अघाक के अर रहने तक मरीन के विघरवा को घरघ करने को घान्य करता है। क्क मनुष्य ब्यन्धी ल मरान में बने को मिघा रीगे ल करती पर मनुष्य रह ही ब बानी।'

सूचित जगत् का प्रतिनिधित्व करते हैं। मैं यह बात केवल प्रचलित प्रणामियों या पुरातन सम्प्रदायों एवं दर्शनों के विषय में ही नहीं कह रहा हूँ, बनी प्रकार के और भी बहुतने नाटक निमित्त होते रहेंगे और बनी कृत्रिम रूप में प्रथिनीत होते रहेंगे।^१ यहाँ बेकन ने बिश्वासनीय वैज्ञानिक सामान्यताओं की दार्शनिक कल्पनाओं से भिन्नता एवं बिरोध व्यक्त किया है। इसी ढंग से ह्यूमन भी कहते हैं "अध्यात्म विद्या के प्रतिकारण के विषय में यह प्रत्यक्ष स्पष्ट एवं उचित धारणा की जा सकती है कि वह ठीक प्रकार से बिश्वास ही नहीं उमका जन्म या तो उस मानवी अहंकार के, जोकि ऐसे विषयों का अन्वेषण करने का दुःसाहस करता है जो मानव की समझ के धन से बाहर हैं निष्पन्न प्रयत्नों द्वारा होता है या फिर ऐसे मुद्द बिश्वासों से जोउम से होता है जो धीरचित्य की मूर्ति पर लगे होने से असम्भव होने के कारण अपनी दुर्बलता को छिपाने और उसकी रक्षा करने के लिए हम उनअज्ञेयवासी स्यादियों को लड़ा करते हैं।"^२

अपनी पुस्तक 'ट्रीटोयूज ऑन ह्यूमन नेचर' (मानव प्रकृति पर एक प्रबन्ध) में वे इसी बुद्धि करते हैं कि मूर्खतापूर्ण करनेवासी वृत्तियों में कोई नैदानिक मूल्य नहीं होते। वे ऐसे मौलिक तथ्य हैं जो अपने सिद्धा और कुछ प्रमाणित नहीं करते। वे अपनी प्रकृति में सगोभीय नहीं हैं। वे वृत्तियाँ तथ्य के विषयों पर कुछ नहीं कहती। सावक बलव्य केवल धानुमबिक—प्रत्यक्ष तथ्यों एवं पुनरुक्तियों तक सीमित हैं। हम जगत् के स्वभाव या प्रकृति के विषय में जो इतने प्रश्न उठाते हैं वे ऐसी माया में होते हैं कि अचहीन हो जाते हैं। महत्त्वपूर्ण जाबनामक धनुम्वृत्तियाँ तथ्य के विषयों की कोई सूचना नहीं देती वे तथ्यों से उद्भूत नहीं होती न उनपर अविश्वसित ही होती हैं।

बाष्ट न प्रश्न किया या कि यदि सम्पूर्ण ज्ञान धनुमवज्ज्य है तो धार्मिक सामञ्जस्यारामक निर्णयों की स्थिति क्या है। न तो वे धारणाओं से सम्बद्ध हैं न तथ्य का विषय हैं। ह्यूमन का अर्थवाद काष्ण को समुष्ट न कर सका। उसने तर्क किया कि यह बाह्य जगत् परिवर्तनशील बिश्वासों के बहुतरंगों से निरव कल्पना का निर्माण-मात्र है। धनुमब मे स्वर्नत्र टिमी यथाबंता का ज्ञान नवना हमारे लिए अर्गभब है। गणितीय प्रस्थापनाएं न तो तक के बिश्नेपचारमक तथ्य हैं, न धनुमब द्वारा पुष्ट होने योग्य नैश्नेपचारमक प्रस्थापनाएं हैं। बिश् ची य रस्थापनाएं ओ न तो धार्मिक पुनरुक्तिवा हैं न धानुमबिक सामान्यताएं हैं धाबसपक रूप मे गाय हैं।

५ एन० स्टार्त्हेड और बरपण्ट रगन ने अपने संघ त्रिभोपिया संकमटिका में यह दिग्गने का प्रयत्न किया है कि नविनीय प्रस्थापनाओं में भी निश्चित तथ्य

१ 'नेकम स्टोरीज'।

२ 'अनकवण्टेड कनवर्सेस ह्यूमन अरररर्टिंग', सवतन १।

से वही सामान्यता विद्यमान है जो तर्क की प्रस्थापनाओं में पाई जाती है। ये दोनों दिग्गो भी विषयवस्तु या अनुभवगत्य विषय से स्वतंत्र हैं। गणित एवं तर्क (न्याय) को तो एक-दूसरे की उत्पत्ति या प्रसार-मात्र मानना चाहिए, क्योंकि दोनों ही प्रतीकात्मक प्रणालियों के रूपगत गुणों का विवेचन करते हैं। सूक्ष्मती न्याय (तर्क) शुद्धरूपयुक्त या औपचारिक नहीं है। यह विद्येय व्याकरणीय रूपों और उनपर आधारित निष्कर्षों पर भी विचार करता है। न्याय (तर्क) का विद्युत् औपचारिक या रूपयुक्त अर्थ उन्नी प्रकार का होता है जिस प्रकार का गणित का होता है किन्तु न्याय (तर्क) का जो अर्थ भाषा के विविध एवं धारण्य रूपों द्वारा निर्यत भावधर्मों का विवेचन करता है वह एक अलग अनुशासन है।

ह्युम का अनुसरण करते हुए जो ई० मूर भी वर्तन को विद्युत् वर्णनात्मक न कि मूलनात्मक या निर्णयवात्मक रूप में देखते हैं। उनके विचार से यह सिद्धान्त की अनेका एक प्रणाली अधिक है। ह्युम के अनुसार वे शारीरिक सिद्धान्त जो वर्तन की सीमा से आगे आने का यत्न करते हैं मानव-अस्तित्व की कार्यशीलता से पैदा होनेवाले धर्मों का विचार हो जाते हैं। मूर का विचार है कि वे सब भाषा के व्यवहार में प्राप्त किए जा सकते हैं। इसलिए अब कोई शारीरिक सिद्धान्त प्रस्तावित होता है तब मूर और के साथ कहते हैं कि हमें पहले जानने का यत्न करना चाहिए कि वस्तुतः इसका अर्थ क्या है। यह अर्थ का काम नहीं है कि वह धर्म एवं नीति के सिद्धान्त बनाए धर्मवा उनके परस्पर-प्रतिकूल विचारों पर निर्भर है। इसका काम तो यह प्रदर्शित कर देना-मात्र है कि ये सिद्धान्त तत्कालीन पूर्वतानुर्भवं एवं शब्दज्ञान-मात्र हैं।

अर्थ का कार्य विवेचन, स्पष्टीकरण है। हर तरह की विज्ञान की पाँति ही इसकी प्रणाली धातुमयिक प्रयोगात्मक विवेचनवात्मक है। इसका कार्य यथा साम्य मानव-ज्ञान की सीमा की परिभाषा करना और विभिन्न प्रकार के ज्ञान के बीच का अन्तर बताना है। मानवीय स्थिति से उत्पन्न होनेवाली केन्द्रीय समस्याओं से सम्बन्ध रखने और अर्थों की उत्पत्ति एवं अर्थ-विकास की औपचारिक व्याख्या पर अपने को केन्द्रित करने से उसे कोई मतभेद नहीं।

सत्यता है कि मानव हम वैज्ञानिक आत्मपूर्णता की एक ऐसी धरमि में रू रहे हैं जब हम अन्तिम प्रश्नों की हास्यास्पद और उत्तर न देने योग्य समस्याएँ छोड़ देते हैं जब हम मानव प्राणियों को अद्विज धर्मों के रूप में देखते हैं तथा उनके दुःख मुक्त उनकी व्याख्या और आत्म-विकासता को शारीरिक-वैज्ञानिक दुःख का अन्वेषण-मात्र समझते हैं। हम जान लेते हैं कि जिस विद्येयित बीरता की दुनिया की हम उत्पत्ता करते हैं, वह वही एक दुनिया है। धर्म का अस्तित्व बीरे-बीरे अल्प किया जा रहा है।

५ धर्म एवं सामाजिक सम्बन्ध

बाह्य निष्ठा एवं धार्मिक होहं दोनों के बीच जो संबंध है, उसीसे धर्म की अपर्याप्तता स्पष्ट हो जाती है। धार्यार में यात्रिक रूप से दामिस होने को या कट्टर सिद्धांतों के प्रति निष्कष्य धारमसमर्पण को प्रमथय धर्म समझ सिखा गया। हममें से बहुतेरे ऐसे हैं जो धर्म के बाह्याररण, उसके धार्यार एवं पबित्रता की परम्पराओं का धामन करते हैं परन्तु अपना जीवन उन उपदेशों पर मठित नहीं करते जिनको मानने का दावा करते हैं। हम धर्म के बाह्य रंग-रम की रक्षा करते हैं, जो एक धमिनय जीता मयता है।^१

अपने सर्वोत्तम रूप में धर्म बिश्वास की धयेदा धार्यारण पर धारिक बल देता है। निष्ठा की परिभाषा करने तक ही धर्म की सीमा नहीं है। इसके धन्तपथ बसा ही जीवन-यापन करना भी धाटा है। परिभाषा धामन है साध्य नहीं। कोई साधन कोई बाह्य उस लक्ष्य या मक्षिम से यथादा महत्त्वपूर्ण नहीं है यहाँ तक बह हमें से जाता है। हमें सत्य एवं धार्यारण में धर्मजीवी होना चाहिए, केवल धारिक निष्ठा-धाम प्रकट करके नहीं। धार्य हमारे बिश्वास धौर हमारे धार्यारण में धन्तर धा मया है। इतने पर भी हम बहते जाते हैं 'कर्महीन धर्मबिश्वास ही मूठ है।' संत पौम कहते हैं 'इस बुनिधा के धनुष्य न बनो बल्कि अपने मानस को नवीन जीवन देकर प्रबुद्ध बनो ऊर्ध्वमति में रूप्यार्यतित हो जिससे तुम प्रमागित कर सको कि ईश्वर की इच्छा मया है धौर मया धेय स्वीकार्य धौर पूर्ण है।' यदि धर्म जीवामय धौर रूप्यारक नहीं है, यदि बह मानव-जीवन के प्रत्येक रूप में प्रवेश नहीं करता धौर प्रत्येक मानव-कार्य को प्रभावित नहीं करता तो बह केवल बाह्यारधन्तर-धाम है यधार्न या सत्य नहीं है। इसके बिच्छ यदि हमारा बिश्वास है

१ 'धर्मिनय रिष्णू ने केवल सिद्धनी रिमथ में लिख्य धा : "यदि मारठ में धार्यारित का विचार सिधा जाता है तो धारा के निरासिधों को बह धामरर केय धार्यार्वं होय कि इकोठी, धला धौर नेरी इधरे कि धर्मिय है हमारे लिए रिष्णोने ५० ६० के धन्तर धयता साधाम्य सारे धार्यारिध धार्यारिध के कथ धा लिख्य है धौर धयने सार्यारिधिध धार्यारण में केय कोई धयार्य करना नहीं बोधा जो धामन-प्रकृति के लिए सम्यक है। देगे धयरेता धौर पैसा धार्यारण। केनी धयार्यारण कृष्य है।" —केय १८०६, १५५ धा। धत धी धर्मिय धे धरना धत प्रकट करते हुए लिख्य है : "जेरा धन्तर विरधम है कि ईश्वर्य धार्यार के रक भी धयेठ को सचकी धौर बिश्वास्य ईसाधयध में ही धत धर देने से नैर-ईसाधवा के धर्म-परिधर्न में उठते नहीं सधार साधाम्य धिलेगी किधनी धयोरैराधों की रक धौर की धौर से नहीं धिल मधी।" —'नेरुन धान इधियठ इधारम' (१८५३) धा १, ५० ६०। ऊधोने धनुष्य धका कि विरधो से मूर्धियुध (नैर-ईसाधयठ) धर धरने के पूर्व धरने ही देरा से गे धर धरना धादा बुधियधयार्य धयध।

२. केय १ : १७।

३ 'रोमस' १५ १।

कि हमारा धर्म बिलसृत है और इसके अनुयायी जो कुछ मानते-कहते हैं उगीके अनुसार प्राचरण भी करते हैं तब इनमें यह निष्कर्ष प्रतिपाद्य है कि निष्कर्मता है कि व्यक्ति एक समाज के विकास-साधन-काय में धर्म का स्थान धारण महत्वपूर्ण है।

विज्ञान की कृपा से जीवन की सुबिधाएँ बहुत बढ़ गई हैं। इन सब वैज्ञानिक सुबिधाओं के सम्बन्ध में धर्मों का प्रतिक्रम चल रहा है। जब प्रसव-पीड़ा में मुक्ति प्रदान करने के लिए मारी पर मूर्खकारी उपचार का प्रयोग किया गया तब धर्म की ओर से उसके विरोध में एक शिवा मया कि ईश्वर की ही इच्छा है कि मारी वह पीड़ा सहन करे यदि ऐसा न होता तो वह प्रसव को इतना पीडादायक न बनाता। स्त्री की प्रसव-पीड़ा में कमी करना ईश्वरीय इच्छा का उत्सवण करना है इसलिए धर्मादि है।

बेचना के लिए बेचना महत्त्व करने का मिश्रण मुख्य हिन्दू एक बुनामी विचारधारा से मेल नहीं खाता। ईसाईधर्म मनुष्य एवं प्रकृति के द्वन्द्व का घोर कटोर करता है। अपनी धारणा की रक्षा के लिए धार्मिकों को मांस (शरीर) की दुर्बलताओं और उनकी प्रवचनार्थ प्रतिच्छविता का नियन्त्रण करना ही चाहिए। धर्मों की कट्टरता सब सुगों की तब तक निम्ना करती है जब तक उनमें ईश्वर का मय न उत्पन्न हो जाए। मानव-ज्ञान और कला वाक्य एवं चित्रकला मनीषी और साहित्य इस्वादि को सैतान के जाल बताया जाता है।

कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इस सुख मान्यता के कारण संसार के कष्टों से पलायन की चेष्टा करते हैं कि धार्मिक जीवन सामान्य सामाजिक जीवन से भिन्न है। वे भागकर एक ऐसे धार्मिक रहस्यवादी में शरण लेते हैं जो जीवन से दूर हो जाता है। ज्ञान एवं धर्म के टोड़ शेष में प्रसंग होकर वे जीवन का त्याग करनेवाले इस विश्वास से एक सौन्दर्य एवं विचार-प्रधान कल्पित धर्म में पहुँच जाते हैं कि धर्म का सम्बन्ध मुख्यतः सत्ता की एक कुरसी ही धर्म से है और जो धर्म वह चाहता है वह इहमीकिक या इस दुनिया का नहीं है। जीवन के वे मनीषी धार्मिक मानवी धर्मों से दूर खिसक जाते हैं और एक सुरक्षित सत्ता के प्राथम्य में चले जाते हैं। पवित्र एवं सासारिक के बीच एक खाई बनाकर समाज के दुःखान्त भाग्य के प्रति उदासीन बनकर मानव-जाति की सामाजिक बेचनी के दुःख से अपने को हटाकर तथा वह भोगना करके कि मृत्यु के उपरान्त ही श्वाय प्राप्त किया जा सकता है धर्म को सामाजिक पुनर्जीवन की सम्भावना से ही विरत कर दिया गया है।

परन्तु हम धर्म एवं सामाजिक जीवन के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींच सकते। सामाजिक सभ्यता धर्मनिरपेक्षता मानव-प्राणियों द्वारा किए गए उन निर्णयों की मानिका पर निर्भर करता है जिनके द्वारा वे तय करते हैं कि वे

तथा उनके धनुषायी किस प्रकार जीवन बिताएँ। ये निम्न प्राथमिक विवेक के विषय हैं जबकि उनकी पूर्ति के हेतु किए जानेवाले कार्यों में प्रौद्योगिक ज्ञान तथा सामाजिक चेतना की आवश्यकता पड़ती है।

यह सच है कि धर्म कोई समाज-सुधार का धातुमन नहीं है। इतने पर भी मनुष्य के जीवन का बहुत बड़ा भाग समाज में बीघता है। एक स्थिर समाज व्यवस्था सम्यक् जीवन का प्राथमिक कार्य है। धर्म एक सामाजिक संयोजक—एक सीमेंट है, एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी उच्छाकांक्षाएँ व्यक्त करते हैं और अपनी प्रसफलताओं, विरामार्थों के बीच शान्ति एवं सन्तुष्टता पाते हैं।

यदि हम धर्म को समाज का मार्ग नहीं समझें तो फिर उसे स्थापित व्यवस्था की रक्षा का साधन बना लेते हैं। सभी धर्म भावना में परम्परावादी होते हैं और उन सबको बरकरार करने की कोशिश करने हैं जो दुनिया में दक्षिणमान हैं। बस्कि वे समाज के लिए उनका सहारा लेते हैं। गतानुपति एवं तुष्टीकरण की वह भावना किमी एक धर्म तक ही सीमित नहीं है। धार्मिक भी कुछ ऐसे हिन्दू हैं—हर्ष की बात है कि उनकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही है—जो जातिप्रथा एवं घस्पृश्यता के प्रचाराय एक कमरू के समझी रहना है। इसमें सन्देह नहीं कि ईसाईधर्म को वास्तव में लुप्त करने तथा धार्मिक सामाजिक धनीतियाँ का भंग करने का प्रयत्न रहा है किन्तु एक समूह या समाज के रूप में ईसाई लोग ईसा के आदेशों के अनुसार जीवन-यापन करने का दावा नहीं कर सकते। वे अपनी धर्मों की फूँदी नहीं देगते वे न तो वास्तव (धार्मिकविज्ञान के माग) को ग्रहण करते हैं न विषयान ही करते हैं।

धर्मों के प्रवर्तन भी अधिकांश मनुष्यों के कष्टों—वेदनाओं का जगने पूर्व जीवन के संकीर्ण कार्यों के प्राथमिकत्व में नहीं तो उनके जीवन के अनिवार्य धर्म के रूप में व्यवहार मान लेते हैं। वे उनके वर्तमान कष्टों का बदने भविष्य में सुख-प्राप्ति का आश्वासन देते हैं और अनुमन रखने के लिए उल्लोङ्कित जनों के बिदाह एवं कष्टों के दमनाय स्वर्ग की सुपमा और दुःख का इन्द्रजाल लडा कर देते हैं। इसीलिए सामाजिक आदर्शवादी धर्म को ऐसी घटीय कहते हैं जो बुद्धिमत् रूप से निराकारी धीर्य की भाँति प्रयोग की जाती है—उन लोगों द्वारा अपनाई गई एक विधि के रूप में जो स्वयं या इन संकीर्णतापूत्रक नहीं लेते पर दूसरों से संबंधी प्राणा करत हैं। वे धर्म के व्यवहार की निन्दा करते हैं जो निहित स्वार्थों की सहायता में जीवित रखा जा रहा है।

ईदवर की दृष्टि में सब मनुष्य समान हैं। धार्य ही विमोचन दम पाठ को समझे अधिक्त स्वतंत्रता तथा जानबारा क माय स्वीकार किया हा जिनकी स्वतंत्रता तथा जानबारी के साथ धमरीकी विधान के निर्माताओं ने स्थापित किया था। हम स्वतंत्रता क घोषणापत्र में गद्दे हुए जयमत क हम गुजित धर्मों ने

परिचित है। " कि सब मनुष्य समाज उत्पन्न हुए हैं और अपने स्रष्टा द्वारा कतिपय मनस्य संज्ञामय अधिकार उन्हें प्राप्त हुए हैं। इनमें जीवन स्वतंत्रता और गुणान्तरण के अधिकार भी हैं। ये केवल प्रचार-वाण्य नहीं हैं बल्कि महार्थ के साथ अनुभव किए जानेवाले विद्वान्त की उपज हैं। अपने अन्तिम पथ में अन्तर्गत ने इस भीषणपत्र के वास्तव्य वर टीका की थी 'मानव-जाति के अधिकारों को अपनी पीठ पर बोझ माने लोगों की तरह नहीं पैदा हुए थे न तो ईश्वर की कृपा से कोटे-मे वन सोय उन्हें हाँकने की तैयार होकर ही पैदा हुए थे।" वर मान्य भी हम सब मनुष्यों को समान मानने की तैयार नहीं हैं। हमारे कर्म हमारी पापों के अनुकूल नहीं हैं।

समाज की पूजीवादी व्यवस्था मानव प्राणियों के बीच स्वत्व सम्बन्धों का विकास नहीं करती। जब जब आदमी उत्पादन के सम्पूर्ण साधनों पर अधिकार किए हुए हों तो दूसरे इस दुष्टि न नाम के लिए स्वतंत्र होते हुए भी कि वे मुक्त नहीं हैं बर्बरस्ती बोपी परीक्षाओं के नीचे अपना भ्रम देखने की बाध्य हो पाते हैं। भौतिक सम्पत्ति के प्रभाव महत्त्व पर पूजीवाद भी बल देता है जिस प्रकार अंग्रेजवृत्ति को तथा और अधिक प्राप्त करने की वृत्ति को उत्पन्न करता है। आर्थिक शक्ति की जिस प्रकार पूजा करता है और वह शक्ति जिस साध्य जित लक्ष्य की सेवा के लिए है उसकी या सत्यवृत्ति के लिए अपनाए जानेवाले साधनों की जिस प्रकार उपेक्षा करता है। धाम हीरे से जिस प्रकार वह सम्पत्ति का समर्थन करता है — सम्पत्ति के विधेयाधिकारों का ही नहीं बल्कि एक सर्व-प्रणामी की मान्यताओं के लिए मानव-प्राणियों की बसता-बासता महत्त्वशक्ति की नीचा के बाहर उनका उत्पीड़न। अधिकारिक उत्पादन की जगह अधिकारिक मुनाफे पर उत्तका केन्द्रीकरण भेदभाव पर आधारित मानव-मुटम्ब के विभाजन के प्रति उत्तकी स्वीकृति बैधनितक विधिपता का सामाजिक कार्य वर आधारित भेदभाव नहीं बल्कि धाम गर्भ आर्थिक स्थिति द्वारा उत्पन्न भेदभाव—यह सब मानव-सम्मान का विधातक है। जब तक पूजीवादी समाज इन कारणों और पादकों को प्रोत्साहित देता है तब तक वह सामाजिक अंधाधुंध को बढ़ाता है।

विशेषतः प्राण्य जनत् में जहाँ शक्ति एवं सुविधा का वर्तमान विभाजन ऐसा है कि बोझे-से धीम तो बिना महत्त्व किए ही जीवन-यापन करते हैं और अधिकार जनों की पीठ उपपर लगे बोझ से दूट रही है, संकट-मोचन की आवश्यकता है परन्तु गन्धे साबास एवं बेकारी वीसी सामाजिक समस्याओं के प्रति वर्गोपदेय की अनिच्छितता एवं नीम ने तथा बूझ से पीड़ित और कृषिम विभाजनों से दुर्बल साबास जनों के प्रति उत्तकी उपेक्षा ने वर्ग की मर्यादा नीची कर दी है। जो सामाजिक आन्दोलन समता के सिद्धान्तों की पूर्ति की कैप्टा करते हैं उनका वर्ग के

प्रतिकारियों द्वारा विरोध किया जाता है।'

खातिगत भेद भाव विश्व भ्रान्त्य के सिद्धांतों के प्रतिकूल है।' संसार हमारे उपरोक्तों से नहीं हमारे उदाहरण या प्राचरण से हमारी जांच करता है।

सभी बर्मे प्रीटियों के प्रति कड़वा के व्यवहार पर जोर देते हैं। उदाहरण स्वरूप ईसाईधर्म धारित देता है कि जो लोग हमें भूना करते हैं या उपेखक हमारा उपयोप करते हैं उनके प्रति भी सम्म्यक्हार करना उचित है। जो लोग हमें प्रेम करते हैं या जो प्रेम के माध्य हैं ही उन्हें प्रेम करने से कोई विरोधता नहीं रह जाती। ईसा हम पापा से हमें अपने शत्रुओं से प्रेम करने को कहते हैं कि इसके द्वारा हम उनमें इसानियत और प्रेम करने की उनकी शक्ति को पुनर्जीवित कर सकेंगे। हम शत्रु के हृदय से बुनामूलक कामनाओं के बय को निकालने का आदेश किया गया है। अपने से बुना करनेवालों के प्रति भी अपने होने से इन आदेशों का हम नहीं तब पालन करते हैं ?

पर्यन्तगण प्रायः प्राधुनिक मुझकता के सैतानियत से भरे अपराधों के विषय में मोन रहते हैं। वे उनके समयन के लिए बाकुसम और बितरबा का प्रयोग करते हैं। १ वितम्बर १९३९ को स्वर्णिय एफ० डी० स्त्रबेस्ट ने बोधित किया था 'पिछले कुछ सालों में पृथ्वी के विभिन्न भागों में जो महाइया चलती रही है उनके बीच परलित बन-केन्द्रों में प्रसन्निक जनता पर आकाश से जो निप्टूर बमबर्षा की गई है और जिसके फलस्वरूप हजारों परलित स्त्रियाँ और बच्चे मर गए हैं या वंगु हो गए हैं उससे मानव-जाति के प्रसन्नकरण को सहारा पचना मगा है। उनके उत्तराधिकारी भी दुर्घन ने प्रथम यूरेनियम बम का प्रयोग करते की भासा की जो आगान के समुद्री बंदरगाह हिरोशिमा पर ६ अगस्त १९४५ को गिराया गया। इन घटनाओं के प्रयोग में अनुप्य ने ईदर को हटाकर सैतान की भासा का

१ सन् १९३४ ई. में रोप वास्तु नयन में अपना 'बर्षाय ब्लोप' आध्यात्मिक विकास प्रसिद्धि समिति लामबरा सम्म्वार सामिक समितियों तथा अन्य विभिन्न वाली समितियों की महासारी कहकर निगम की।—अमेरी अनुवाद (१९७५), पृष्ठ १५। १९६१ में रोप सिने वेरबने ने 'द देरन मेथारम नामक आदेश में महासवार को दूनो कहकर उसकी निगम की और आदेश दिया कि 'इससे सिवान् सक्तु डैबोलिक लोगों द्वारा अपना-ब कर दिन जान।—अमेरी अनुवाद (१९६१) पृष्ठ ७-१३। लामबरा वर्ष लामबरा के प्रति रोमन डैबोलिक बर्ष का अधिष्ठान रपिबोल काय की देना ही है।

२ माक-माक के मनोविज्ञान पर अपनी रिपोर्ट में कम्पार जे सी० कैरोर्म ने केविषा के देदारनो से अनुरोध किया है कि 'बर्दि ने करते हैं कि प्रकीर्षी अधिष्ठानों पर उनकी सिताओं का प्रत्यय बने तो उन्हें लपका ईसाई बीमन सिप्रिया काहिब। वे कहते हैं : "बर्दि इन उन निरीत की लामबरा इति जनता अपने काले-गारे दोनो मकार के बहासिनो—लामबरायो के लय ईसाई सिदानो के अनुहन परलतब बरी कर लपकी तो कपदा होय कि बर्षाकारक लोग कपदा को देस-बिहार बंधकर बने कारे।'

परिचित हैं " कि सब मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं और अपने स्रष्टा द्वारा प्रतिपन्न धर्मस्य सभाम्यध्विभेदस्य अधिकार उन्हें प्राप्त हुए हैं। इनमें भीतन स्वतंत्रता और गुणान्धेषण के अधिकार भी हैं। ये केवल प्रचार-वाचन नहीं हैं बरन् पहचान के साथ अनुभव किए जानेवाले विरवात की उपज हैं। अपने अन्तिम पत्र में जेफर्सन ने इस घोषणापत्र के तात्पर्य पर टीका की थी "मानव-जाति के अधिकारों को सौंप अपनी पीठ पर बोझ लादे बोझों की तरह नहीं देना हुआ है। न तो ईश्वर की इच्छा से बोझ-से हमें सौंप उन्हें हानि को तैयार होकर ही देना हुआ है। पर धार्य भी हम सब मनुष्यों को समान मानने को तैयार नहीं हैं। हमारे कर्म हमारी बाधों के अनुकूल नहीं हैं।

समान की पूर्णवासी व्यवस्था मानव-प्राणियों के बीच स्वस्व सम्बन्धों का विकास नहीं करती। जब शब्द धारणी उत्पादन के सम्पूर्ण साधनों पर अधिकार किए हुए हों तो दूसरे इस दृष्टि से नाम के लिए स्वतंत्र होते हुए भी कि वे गुणान्ध नहीं हैं, बर्बरदस्ती बोपी पर्यंतों के नीचे अपना धर्म बेचने की बाध्य हो जाते हैं। भौतिक सम्पत्ति के प्रदान महत्त्व पर पूर्णवासी जो मन होता है जिस प्रकार संघर्षवृत्ति की तथा और अधिक प्राप्त करने की वृत्ति को उत्पन्न करता है धार्मिक धर्म की जिस प्रकार पूजा करता है और यह शक्ति जिस साध्य जिस महत्त्व की सेवा के लिए है उसकी या मध्यवृत्ति के लिए अपनाए जानेवाले साधनों की जिस प्रकार उपेक्षा करता है धर्म तौर से जिस प्रकार यह सम्पत्ति का समर्पण करता है — सम्पत्ति के विशेषाधिकारों का ही नहीं बरन् एक धर्म प्रचारी की धार्य स्वकृताओं के लिए मानव-प्राणियों की बस्यता-बाधता सहनशक्ति की सीमा के बाहर उनका उत्पीड़न अधिकधिक उत्पादन की जगह अधिकधिक मुनाफे पर उसका कैम्प्रीकरण मेरमाध पर धार्मिक मानव-कुटम्ब के विभाजन के प्रति उत्तकी स्वीकृति वैयक्तिक विधेयता या सामाजिक कार्य पर धार्मिक मेरमाध नहीं बरन् धाम एवं धार्मिक स्थिति द्वारा उत्पन्न मेरमाध—यह सब मानव-सम्मान का विधातक है। अब तक पूर्णवासी समाज इन धारणाओं और धार्यों को प्रोत्साहन देता है जब तक यह सामाजिक प्रचालित को बढ़ाता है।

विशेषतः प्राच्य जगत् में जहां शक्ति एवं बुद्धि का वर्तमान विभाजन ऐसा है कि बोझ-से सौंप तो बिना मेहनत किए ही भीतन-यापन करते हैं और अधिकधर्म जनों की पीठ उनपर सारे बोझ से दूट रही है संकट-मोचन की धार्यस्वयता है जगत्नु नये धार्यास एवं बेकारी जैसी सामाजिक समस्याओं के प्रति धर्मोपदेश की अनिच्छितता एवं मौन है तथा मुक्त से पीड़ित और दुर्बल विभाजनों से दुर्बल सामाज्य जनों के प्रति उत्तकी उपेक्षा ने धर्म की मर्यादा नीची कर दी है। जो सामाजिक धार्योत्पन्न समता के सिद्धान्तों की पूर्ति की श्रेष्ठ करते हैं उनका धर्म के

प्रतिकारियों द्वारा विरोध किया जाता है।^१

जातिगत मेव मात्र विश्व भ्रातृत्व के सिद्धांतों के प्रतिकूल है। संसार हमारे उपदेशों से नहीं, हमारे उदाहरण या भाषण से हमारी जांच करता है।

सभी धर्म पीढियों के प्रति कृष्णा के व्यवहार पर जोर देते हैं। उदाहरण स्वरूप ईसाई धर्म धारणा देता है कि जो लोग हमें पूजा करते हैं या भेषपूर्वक हमारा उपयोग करते हैं उनके प्रति भी सख्ख्यवहार करना उचित है। जो लोग हमें प्रेम करते हैं वा जो प्रेम के योग्य हैं ही उन्हें प्रेम करने में कोई विघ्नता नहीं रह जाती। ईसा इस भासा से हमें अपने सख्खियों से प्रेम करने को कहते हैं कि इसके द्वारा हम उनमें ईशानियत और प्रेम करने की उनकी शक्ति को पुनर्जीवित कर सकेंगे। हमें मनु के हृदय से बुभामूलक कामनाओं के भय को निकालने का धारणा किया गया है। अपने से बुभान करनेवालों के प्रति भी भस्ते होने के इन धारणों का हम कहाँ तक पालन करते हैं ?

धर्मनेतावन प्रायः धार्मिक युद्धकला के सैतानियत से मरे भयरायों के विषय में मौन रहते हैं। वे उनके समर्पन के लिए बाकसुल और बितर्या का प्रयोग करते हैं। १ सितम्बर, १९१९ को स्वर्गीय एफ० डी० स्कावेस्ट ने घोषित किया था "पिछले कुछ सालों में पृथ्वी के विभिन्न भागों में जो सड़ाइयाँ बनती रही हैं उनके बीच धरणीत जन-केन्द्रों में धरणीत जनता पर आकाश से जो मिश्रुर बमबर्षा की गई है और जिसके फलस्वरूप हजारों धरणीत स्त्रियाँ और बच्चे मर गए हैं वा पंशु हो गए हैं उससे मानव-जाति के धरणीतकरण को महदा बचका लगा है। उनके उत्तराधिकारी श्री टुर्थन ने प्रथम यूरेनियम बम का प्रयोग करने की धारणा की जो जापान के समुद्री बंधरगाह हिरोशिमा पर ६ अगस्त १९४५ को गिराया गया। इन धरणीत के प्रयोग में मनुष्य ने ईशवर को हटाकर धरणीत की धारणा का

१ सन् १८४९ में पोप वास्तुत मयन ने अपना 'वर्दाय कपोरा' धरणीतपत्र निकाला जिसमें समाजवाद, साम्प्रदाय बहसिलि समितिधो तथा धरणीत विचार वाली समितिधो की 'मन्नामारी धरणीत, निरा की।—मयेरी अनुवाद (१८७२), पृष्ठ १५। १८९१ में पोप सिनो तेरहवें से २ 'रेतन मोषरय' नामक धरणीत में समाजवाद को टकैनी कडकर बसकी निरा की और धरणीत दिवा कि 'इमडे सिधरधत समसत कैबोलिक लोगो द्वारा धरणीत कर विण जारं।—बंदिमी अनुवाद (१८९१) पृष्ठ ७-१३। समाजवाद पूर्व साम्प्रदाय के प्रति रोमन कैबोलिक धर्म का धरणीत दृष्टिकोण काय भी ऐसा ही है।

२ साम्प्रदाय के मनोविधान पर अपनी रिपोर्ट में वास्तर के० सी० केरोरम ने केतिवा के ईशरथे से धरणीत किवा है कि बरि वे धरणीत हैं कि बरि की धरणीतसिधो पर उनकी सिधरधो का प्रथम बरे तो कडे सध्या ईसाई धरणीत सिधरधना धरणीत। वे कहते हैं : "बरि इन धरणीत निरोध की तायाल्य होत जनध धरणीत धरणीत-धरणीत दोनो धरणीत के धरणीतसिधो—धरणीतसिधो के लय ईशर निधरधो के अनुहय धरणीत बरि कर सध्या तो धरणीत होय कि धरणीतधरणीत लोग धरणीत धरणीत-धरणीत धरणीत धरणीत।

पामन किया है तुम सब बेब-नमाम बनोने ! हिरोनिमा के बार जापान के एक जेमुइट धर्म प्रचारक ने रोम से निर्णय प्राप्त करने की निरर्थक प्रार्थना की। ६ जून १९२४ को सम्मन के धार्मिकीकन (प्रधान पाररी) ने सेंट पात कैपडस की परमवेदिता पर से बोसते हुए ईसाई-जानू को बिश्वास दिलाया कि ईसाईधर्म उम धार्मिकता का समर्थन नहीं करता जो सम्यता को मल्ट होता या समप्र देसों को गुनाम बनाया जाता देग सके।' उम्य जो बुद्ध करना चाहते हैं उनके समर्थन में बाइबलम एव बिबलता का प्रयोग करना हमारे धार्मिक बल्लामों की अनुमति से बाहर की बात नहीं है।

धार्मिक साम पहल अनुभवों से घपने-धब 'कामनवेनु एवाउट दि बार' (बुद्ध बिषयक सामान्य बुद्धि) से लिना बा 'हम घपने साम्नि-मन्दिरो को तुलना मुद्ध भन्दिरो में बचन देते हैं और घपने पादरियो को समाज के मन्त्रों बृषित कमहृप्रिय धार्मिकों के रूप में प्रकट करते हैं। मैं बह प्रभावित करन का माहल करता हूँ कि इसके द्वारा उत्पन्न कमन भावना उसमें नहीं स्याता ध्यापक श्री/ यहरी है जितना बच समझता है—बिधयत धर्मिकबगों में जो पा तो पर्य को गंभीरता पूर्वक बहल करते हैं मा फिर उसका बिरोध करते हैं और धन्धि तरह उसकी धारणापना करते हैं। अब एक बिषय (प्रधान धर्मोपपत्त) पहली योमी बगते ही ईसा की पूजा का स्वाभ कर देता है और घपने अनुवासीकृत को ममन (बुद्ध देवता) की बरी की ओर से बाकर एकत्र करता है तो भाड़े देगा बह देसमक्ति के कारण प्रावस्यकता के कारण बहादुरी और धीबिध के साथ करता हो किन्तु इतसे उसका बह बहाला करना उचित नहीं सिद्ध होता कि कोई परिवर्तन नहीं

१ दो दिन बाद १० जून को अवरन पुन्कर ने अवरन में मन्त्र करते हुए कहा हमारे धर्म ध्याम एक श्री है किन्तु धार्मिक मन्त्र है। हमारे पास एक देस हूर तक बनेबाला अनुवासा है किन्तु को उम सौविषय के धर्म नहीं है। मैं बालुबन के- कना पाव बह रहा है जो हमी तीव्र की से और हमी कर्षार् पर उम मन्त्र है कि बरी १७४ में तो उससे बन्दे का कोई साधन उनके धाम नहीं है।

२ १६ ६ में मुसोलिनी और बलिष गुब बथ में समझौदा टोन के बाद, बथ ने मुसोलिनी का 'इरिजन कइकर अधिबलन किना और १९३२ में इ-इने गैर कीर के निरवार में बने धार्मिक दिसा। बाद माल बाव अजली परिधों का ब्याप ही गई कि धोपिक का दुई अधिध विषय पर बिरोध धार्मिकीकन समारोह मन्त्र। कर्ना एल (१९३६ में) लेना पूव-बुद्ध में बथ ने अन्वयता सेनाबा को सौधनी कहा और अवरन क को की टोगबा को धार्मिक दिसा एक कन्धी टोपों का ईसा के धर्मिक अवर के निह सं बन्धन किना। मुझे बिश्वास है कि बर्तमान धर्म विनका बिरोध और मन्त्र-धर्म किन्तु दे देसी कर्षाकथ का समर्थन म बरेने।

अब धार्मिक धैर्य की निम्हा की बनी है तो बहिष अधीना में बसे और खेरे लोनों के अलग-अलग निरवार करने के मन्त्रक लोना एव संघका राष्ट्र धार्मिक के बहिषी राज बने लोनों के धिर् धार्मिकता की धामना करते हैं। (बेनेसिच ६ : २१-२३)।

हुमा या यह कि ईसा बस्तुतः मुड़-बेबता ही है। ईमानदारी का घोर अर्थ के लिए अन्त में हिलकारी रास्ता तो यह होता कि हमारे द्वारा मुड़ की घोषणा होते ही ईसाई कहे जानेवाले अर्थों को हम बन्द कर बैठें और जब शक्ति-सम्बन्धि हो जाती सभी उम्हू फिर खोमत।

हम जो कुछ करते हैं उसके अन्तर्गत कठोर रूप को मधुर अर्थों के जान का प्रमाण कर अपने से ही छिपाते हैं। यदि हम सब बहानेबादियों छोड़ दें और अपने प्रति ईमानदार हो सकें तो हम घोष हो यह जान जाय कि वही तेजी के साथ हम गवाह और स्पष्ट व्यवहार में अपनी निष्ठा खोने जा रहे हैं। जन मानस में सुराई की घोर में जानबोझा एक गंभीर गुणात्मक परिवर्तन हो रहा है।

राजनीति और धर्म की सर्वाधिकारी प्रजातंत्रियों में मानिया एक आचार का समर्थन या निष्ठा इस दृष्टि में नहीं होने कि बाल्मिकि जीवन में उनके संभावित परिणाम क्या होने लगें इस दृष्टि में होने हैं कि पवित्र प्रमा की ओर ध्यास्यां की गई है व ठीक है या गलत। बुद्धिमान लोग अपने दिमाग इस बहस में लगाने हैं कि एक मुई की तस्क पर कितने बेबहुत सड़े हो सकते हैं या किसी तंग का समाजवाद विस्तृत आसबादी है या नहीं। बट्टर सिद्धान्तों के प्रति अपनी निष्ठा में हम मध्य और मनुष्यों के मुग की कोई परबाह नहीं करते। जब भारत में सतीप्रथा बन्द कर देने का सवाल उठा तब शास्त्रबादियों ने धर्मग्रन्थों में उद्धरण देने शुरू कर दिए और मानवी जीवन तथा उसके कल्याण की धार ध्यान दन की कई आश्चर्यचकितता में समझी। ऐसी बातें सभी जानी हैं जब ईश्वर में निष्ठा का भोग हो जाता है और बेचन कर्मकाण्डीय या आचार तथा मूर्खान्तिक तर्क की ही प्रथामता रह जाती है। मूर्खान्तिक बट्टरता में हमारा अन्त-चरण मुक्ति पर दिया जाता है।

धार्मिक संघर्ष के प्रसार की बहूत बड़ी विस्मयकारी ऐतिहासिक घणों पर जो है। यद्यपि इन घणों की अपने लम्बे जीवन-काल में क्या मस्कुति तथा प्राप्ता त्मिक जीवन के रोचक में महान् रस रही है किन्तु वे मूर्खान्तिक बट्टरता और अंध विश्वास-बट्टरता और अज्ञान-बट्टरता तथा अपने अनुयायियों की बौद्धिक बेईमानी में दुर्बल ही हुए हैं। जब तक धर्म अपने मिडान् इस दुनिया पर शासन करनेवाले होंगे के अनुबन्ध रखेंगे जब तक वे सर्वाधिक व्यवस्था का चाहें वह कितनी ही पनीतिपूर्ण हो समर्थन करने रहत तब तक ऐसे आचार के बिना बिभोह करनेवाले ही मन्व आधिक्य बने जायेंगे। बाल्मिकि अपनी पुस्तक 'गोड एंड हि स्टेट' (ईश्वर और राज्य) में कहता है कि राज्य को अपने अन्तर्गत का मुख्य सम्पन्न ईश्वर मानना में जो मानव विवेक स्यात् एवं स्यात् का परिणाम है प्राप्त होता है। वह एक ऐसी सामाजिक शक्ति के लिए आवश्यक बनता है जो एक ही समय मारे धारा गता और गिरजाधर को अन्त कर देगी।

उनका बड़ा विश्वास था कि उनका ईश्वर और सब देवों से बड़ा है "हे प्रभु ! देवों में तुममें बड़ा योग फोड़ गयी है।" पैगम्बर मोकाह (८वीं शती ईसापूर्व) में बिबिध देवों के क्षातिपूजक सह-अभिन्न की भावना बिद्यमान थी। वे कहते हैं कि हमारे देव भी अपने भोगों की मिष्टान्त पर उचित बाधा रखने के अधिकारी हैं। सब राष्ट्र अपने-अपने देव के प्रति वफादारी रख सकते हैं पर हम अपने देव याहवा के प्रति मिष्टान्त बने रहेगे।^१

जब एकेश्वरवाद का विकास हुआ याहवा एक और एकमात्र ईश्वर बन गया। "मैं याहवा हूँ—सब वस्तुओं का निर्माता। मैंने ही स्वर्ग (पारमात्मा) का विस्तार किया है मैंने ही पृथ्वी को फैलाया है। मरी सहायता किसने की ? मैं याहवा हूँ मेरे सिवा दूसरा कोई ईश्वर नहीं है। यद्यपि यहूदियों का विश्वास था कि बहुतों एकमात्र ऐसे हैं जिन्हें ईश्वर से सखी धर्मबानी सच्चा ज्ञानात्मक प्राप्त हुआ फिर भी वे ईश्वर की सार्वभौमिकता की पारधा रखते थे और समझते थे कि दूसरी जातियाँ भी ईश्वरीय रक्षा पाते हैं अधिकारी हैं। याहवा पूछता है "ये यहूदियों ! तुम हबसियों (एजिप्टियनों) से क्या और क्या हो ? मैं तुमसे तुमको मित्र में लाया—हा और किमिस्तीम को क्रीट से तथा धार्मीनियों को कीर में लाया। यदि हम ईश्वर को समस्त ससार का पिता मान लें तो हम यह विश्वास नहीं कर सकते कि वह केवल इस या उस ईश्वर को माननेवालों के प्रति गिन्तव्य व्यवहार करता है और दूसरे धर्मावलम्बियों के प्रति असह्य क्रोध से भरता हुआ है। दूसरे देवों की उपासना करनेवालों से क्या मुक्त का व्यवहार किया जाता था वे उस याहवा के मन्दिर के भावी रंगरूट (अनुयायी) थे जो 'प्रत्यक्ष जाति के लिए प्राधान्य-मन्दिर बन जाण्डा'। हम बिषारों के होते हुए भी 'पुरानी धर्मपुस्तक' (घोस्ट टेस्टामेन्ट) इस्रायलियों को ईश्वर के बिनाप कुपापान के रूप में ग्रहण करती है। इसका ज्ञानार्थ सब गैर-यहूदियों को निरर्थक मानकर उनकी मित्रता करता है।^२

ईश्वर के विशेष कुपापान होने की धारणा, या यहूदियों तथा ही सीमित नहीं है ऐसी रीतियों एवं प्रवृत्तियों को जन्म देती है जिनके कारण भेद होने और अपने तक ही धर्मावलम्बित सीमित रहने पर जोर दिया जाता है। यह दूसरी पृथ्वी

१ साम ८१।

२ मीकाह ४ ५।

३ ईसापूर्व ४४ २४।

४ 'जमोरा १ ७।

५ ईसापूर्व २९ १७।

६ "हे प्रभु ! तुने कहा है कि हमारे (यहूदियों के) लिए ही तुने सब दुनिया बनाई है। जहाँ तक दूसरी जातियों का सम्बन्ध है तुने कहा है कि वे बगदव हैं और कीमियों में सम्मिलित हैं। —२ 'इसाया ६ १२, और धामे।

एक ही ईसाईयम का मार है। इस प्रकार की अन्तिम घटना के रूप में हाथ धारित हो सकता है।¹ 'बाईस वायें बड़े कथन है। ईसा मसीह के रूप में ईश्वर ने मनुष्य के लिए अपने को व्यक्त किया। हम ईश्वर के विषय में दूसरे और किसी बात में क्या जानते हैं? 'विमर्श' नहीं। 'अपने पदों का दूसरे पदों के प्रति बन हम इस रूप में रखते हैं। माना कि सब समय ही और उनके बिना यहाँ एक मात्र मार्ग हो। या यह ही सचता है या वह। या ना यह प्रमाण है या अपकार। हाथ की एक पुस्तक में बताया गया है कि ईसाईयम प्रचारक का मुख्य उद्देश्य दुनिया में प्रोक्त सब धर्मों को निरस्त कर देना है। विलियम बुनिविसिटी के डॉ॰ जूजियस रिचर्ड्स ने १९१३ में लिखा था 'जहाँ जहाँ भी गैर ईसाई धर्मों के साथ ईसाईयम प्रचारकों का समय हुआ है वहाँ-वहाँ उन्होंने उन्हें निरस्त कर देना और उनके स्थान पर ईसाईयम को प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है। अन्तिम के विचार-विभाग के प्राथमिक टिप्पणियों में लिखा है 'एक तरह ईश्वर की बाणी और उनके काम है। दूसरे और अपनी ही प्रतिष्ठा के रूप में ईश्वर का बर्णना करने की प्रतिष्ठा प्रकृति है। उनके साथ सम्पूर्ण स्थापित करने का कार्य पदों के साथ एक प्रवचन-भूत एक धार्मिक-कर्मों के साथ सम्पूर्ण स्थापित करने-के समान होगा। 'अब एक प्रवचन या अन्तिम हाथ का दावा ईसाईयम के प्रोत्प्रेषण और वैधानिक गठित करने और पुरस्कार सम्प्रदायों की धार में ला दिया जाता है।' अन्तिम के अन्तिम में विद्यमानियम में कहा था

यो मीबर ! मुझे दे दो दे दो मुझे नास्तिकों से मुक्त परती घोर बदम में मैं तुम्हें स्वर्ग का राग्य दूंगा ! मेरे साथ मिलकर नास्तिकों को ध्वस्तों का संहार कर दो घोर मैं तुम्हारे साथ मिलकर फार्सियों का कात्मा कर दूंगा।" प्रोटेस्टेण्ट घोर कैथोलिक एक-दूसरे से प्रति विरोध भाव रखते हैं। मीबर रोमन चर्च को भी नास्तिक जगत के अन्तर्गत गिनता था जो ईसाईधर्म के बाहर है फिर चाहे वे नास्तिक हों तुर्क यहूदी या सिव्या ईसाई (रोमन कैथोलिक) हो घोर भले ही केवल एक सन्धे ईश्वर में विश्वास रखते हों फिर भी वे धास्वत विमर्ष घोर बिनास—सनातन क्रोध घोर नरक के भय में पड़े हुए हैं।^१ जॉन नाथन ने अपनी रचना 'तन्त्र के अज्ञानियों के नाम ईश्वरीय पत्र (१२२४) में लिखा था 'एशिया में क्या है ? ईश्वर से प्रति अज्ञान। अफ्रीका में क्या है ? हमारे प्रभु ईसा हमारे उद्धारक के प्रति अस्वीकृति। अशिया में क्या है ? क्या मुहम्मद घोर उनका सिव्या सम्प्रदाय ? रोम में क्या है ? सारे जादूगर का बड़ा भारी प्राथम। बहू कमकित मानव। जॉर्ज टाहरेस लिखता है ईसा कहेंगे कि हर्नक 'ईश्वर का राग्य में एवांजेल बुर नहीं था परन्तु जरा-सा अन्तर भी एक मीम के मनुष्य ही है। फिर प्रोटेस्टेण्ट घोर अंगमियों में कोई अन्तर नहीं—ये सब नरक में एक समाज ही जसंगे।

कमी-कमी अन्तर्गत अज्ञानता का यह अन्तर्गत अज्ञान में लिपटकर सामने आता है। यह मानते हुए भी कि ईसाई देववाणी अन्तर्गत है घोर इसरी देव वाकियों से विमकुल भिन्न है उनके साथ मंत्रीपूर्ण सहयोग की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जाता। (उनकी दृष्टि में) ईसाई सत्य अन्तर्गत है पूर्ण प्रकाश है जबकि दूसरे अज्ञान या टिमटिमाती अज्ञानियों की भाँति हैं। दूसरे अज्ञानों में जो अज्ञानिक सत्य है उन्हें ईसाईधर्म पूर्ण अज्ञान देता है। इस अज्ञान में भी इस अज्ञानता का त्याग नहीं है कि ईसाईधर्म ही एक घोर समग्र मानव-जाति के लिए एक पुत्र अज्ञान है। अज्ञान यह अन्तर्गत अज्ञान सहयोग को अज्ञान देता है घोर यहाँ तक मानता है कि एक अज्ञान का अज्ञानिक ज्ञान दूसरे अज्ञानों के अज्ञान से अज्ञान घोर अज्ञानिक हो सकता है किन्तु इससे अज्ञान के अज्ञान में अज्ञान भी कमी नहीं आती कि ईसाईधर्म अज्ञानों को ईश्वर-अज्ञान एकमात्र अज्ञान है। यदि

घोर अज्ञान घोर अज्ञान का अज्ञान अज्ञान अज्ञान को अज्ञान में होना।

१. लिखन 'दि डिक्लैरेशन देव अज्ञान अज्ञान कि रोमन अज्ञान अज्ञान ४७। निश्चयि कस अज्ञान भी अज्ञान में नास्तिक अज्ञान अज्ञान अज्ञान। लिखन अज्ञान अज्ञान है: "निश्चयि अज्ञान के अज्ञान अज्ञान अज्ञान एक अज्ञान अज्ञान अज्ञान है; फिर भी अज्ञान अज्ञान अज्ञान कि अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञानों को अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान" —अज्ञान।

२. 'अज्ञान अज्ञान २ ३ अज्ञान अज्ञान (१८६३), अज्ञान २ ३।

३. लिखन, 'अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान' (अज्ञान १९४९), अज्ञान ४४२।

४. अज्ञान ही० अज्ञान कि अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान (१९६२) अज्ञान ४।

ईश्वर ने दूसरे धर्मों को धार्मिक सत्य की कुछ विशेष जानकारीया दी है ता वह इसमिए कि व सत्य को परिपूर्ण बनाने में सहायक हों।^१

१९२० ई० में लैम्बेथ कॉन्फ्रेंस ने ईश्वर के ईसाई सिद्धान्त-सम्बन्धी धर्ममिति डाग इन बात की पुष्टि की थी। हम प्रमत्ततापूर्वक महान धर्मों में निहित और उनके द्वारा उद्घोषित सत्यों को स्वीकार करते हैं किन्तु किन्तु इनमें से प्रत्येक ईसा की धर्माधीन सम्प्रदायों से भर उपदेश से रहित है। इसमाम में व्यक्त ईश्वर की महत्ता दूसरे प्राच्य धर्मों के उच्च नैतिक मान एवं मनीर सत्य इस द्वारा व्यक्त ईश्वरीय सत्य के पक्ष-मात्र है।^२ और यह विचार स्वयं ईसा के इन बक्तव्य से मेल खाता है। यह न सोचो कि मैं पैगम्बरों को और यम-नियम को नष्ट करने सामा हूँ मैं नष्ट करने नहीं उम्हूँ पूष करने सामा हूँ।^३

बुद्धधर्म ईसाईधर्म तथा इसमाम इत्यादि जो भी धर्म प्रचार में आस्य रखनेवासे धर्म हैं धर्माधीन धर्मों में बिश्वास रगत है। इन सबका दावा है कि उन्हीके पास सर्वोच्च सत्य है। एक के दावे को दूसरे पर तरजीह किस दी जा सकती है? हम निष्ठा का ही आश्रय लेना पड़ता है। प्रोफेसर ए० ई० टेलर कहते हैं यह मान लेना भ्रम है कि ईसाईधर्म धार्मिक सम्प्रदाय के ऊपर जिस धर्म ब्रह्माण्ड्रीय महत्ता का आरोप करना है उस उनके सांसारिक जीवन की मिश्रित घटनाओं के आधार पर प्रमाणित भी किया जा सकता है। और जब हम तत्त्व एवं प्रमाण की मीमा में बिश्वास एवं थडा की मीमा में बने जात है तो प्रत्येक धर्म निष्ठाजनित कार्य को सम्भूत मानता है और इसीके कारण असहिष्णुता का जन्म होता है। इन धर्मों द्वारा पूर्ण सत्य केवल उन्हीके पास होने का दावा एवं कई धर्मों के अस्तित्व से ही असंगत हो जाता है। इन सर्वसत्ताप्रिय एवं धर्मप्रमाणित और परस्पर-विरोधी धर्मों द्वारा केवल धर्म-धर्म ही प्रति निष्ठा की मांग में कारण हम लोगों को एक-दूसरे के विरुद्ध खडा कर देते हैं। भविष्य की रचना में निष्ठा नैतिक एवं धार्मिक धर्मों के एकीकरण के हमारे प्रयत्न धर्मों के प्रतिद्वन्द्विता के कारण भीहीन एवं निष्फल हो जाते हैं।

७ धर्मधटा का विकास

संसार में मानों गने धर्मधटा है जो बिश्वास या धटा करना चाहते हैं किन्तु

१ धर्मना बुनाक दि धाइन धर्म दिन्दुसम (१९१०) पृष्ठ ४२ में न० २०० पर प्रकृत कर रहे हैं: ईसा में दि-दुर्धर्म के सर्वोच्च कारणों का धर्म ३ है। वे धर्म धर्म के मुक्त हैं।

२ लैम्बेथ रिपोर्ट (१९२०), पृ० ४२।

३ मैथ्यू २३: १०।

४ 'दि वेब ऑफ़ धर्म-निष्ठा' (१९२१), पृ० १२२।

कर नहीं पाते। यद्यपि य घनाब बरष घमों के बाह्याचार का उपवीम करण रहत है। घपनी घपनी घामिक रीतियां के अनुमार हमाग नामकरण हाना है बप निम्मा हाना है ह्य बिबाहित होने हैं घौर बपनाण जाने है या बपनाण जाने हैं बिनु यह गब करने हुए भी गगुण घबधि मे ह्य एक घनिष्ठत पागण्ड क गिवाण बने रहत हैं। ह्य एक तम युग मे रह रहे हैं बा गिबिप एक घृष्टित है घौर बिमबी घागघा भान हा बकी है। हमागे मुख्य घमिम घौर घदुग्य है हमागी बिन्ताभारा भ्रमित है हमागे मध्य बिबलित है। घात्मिक बीबन मे जो सगुर्भ सभ्यता का घ्राणपुध रहस्य है उमे बुद्धि पम्सबित-बिबलित ता कर सकनी है परन्तु पवा नहीं कर सकनी—बहा तक कि बीबित भी नहीं रघ सकनी ह्य निर्मूम हा जाते हैं। जब जडे ही मष्ट हो जाती हैं तब बुद्ध समय तक बुध बीबित रह सकता है बहा तक कि फलता-फूलता-मा भी बिगाई है सकता है बिन्तु उमगे दिन गिमती के होते हैं। टी एम इमियट मे घपनी कबिता वेस्टमंड मे घाधु तिक सभ्यता की बिगुसमता बिबवास तथा घेरबा के घभाव घरीबी बिबाणभम तथा घाधुनिक बतना की गिर्यबता का वर्णन बिबा है। निवेबायब बिबतन के ह्य काठाकरण के कारण ही घाधुनिक बिब्व मे माधनिक रोमियो की सग्या मे घृष्टि हुई है।'

लाइ एचटन मे १९ जुलाई १८९१ की मिया था हबिड के समय से दो ही समय तक घबिस्वास घपना रास्ता बनाना रहा है। यह घबिस्वास बिबान की नीब पर बडा हुपा क्योंकि येष्ट पुस्तका घौर सठार के मुजनात्मक बिबन का मपमग घाबा नाय घबिस्वासियों हाना रबा बया। बिन प्रभावो का योमबाना रहा ब यपावाणर घनीभवरबाबी थ। केबन हंगैड को ही से ता कोई घाधमी घोट मिस घास्टिन बाबिन मेविल ह्यसमे टाइनडाम की सहायता के बिना पनप नहीं सकता।" लाइ

१ ही जी बुग मिरने है बिने सैबजे रोमियो का इबाज बिबा है। रनेमे से घधिक मक्या प्रोरेग्रेट लोअर बी बी, बोरे कदूरी के घौर ब्यरलण मनाम्नी (बेधामिक) हैछाई बब बा घ मे बबाबा म मे। मेने बीबन के बलार्थ मे कर वास बिनेने बी रोमी बाप उमने मे एक सी पैला मरी बा बिमकी सगस्या घात्मि गिर्य मे बपने बीबन के मिर एक घात्मि रबिबोय को घात्मि करही हो। यह बहमा उमे बग्या कि उमने से डरेक केबन एमलिय बीबार पना कि बीबण बने फलक पुन मे बपने अनुघबियों को जो बीब्य हेते हैं को यह रये बुन। बा बीर बिब ल गो न बपना घात्मि रबिबोय पुनः मदी घाष्ट किब्य उमने से एक भी बबर्कन न्भेमा घय किब्य बा सका। — मीडर्मे मेन ह्य सवे ब्येड व लीन (१९१३) कृष्ट ११४।

> 'सेलेस्टिय ब्राम रि क्सेमपटेन बयक रि काट लाई एचटन के बम बिबित बने घर बा ब्राएन ह्य सघाडिना माय २ (१९१७)। १९ जुलाई १ ९१ का पन।

'सेट लीरिगु रेट घात्मिप' (१९१९) की मूयिया मे टायम बाबी मे मिया बा 'पल पुन के घब्य कमाद, ग्येवक वर्ग मे लाल की गिर्यय बुद्धि, बिबेक को लाल करेपाने बान के बिबन घौर, बर्गबरे के लाल। मे निताम्य डसेब्य के मिर घपनभनभरी रिबान के वारय

एकत्रय के यह सिगने के पतामिम बप बाव टी० एम० इमिपट मे यह थापिन किया हमारी पाठ्य सामग्री का अधिकांश भाग एम प्राइमिया द्वारा लिखा जा रहा है बिनम (ईंग्लिशिय व्यवस्था के प्रति) न कमम कोई मन्था बिस्वास नहीं है बस्कि का इन लक्ष्य म भी धनमित है कि इन समार म धन भी ऐम पिछड़ या सनकी लाग है जो (ईंग्लिशिय सत्ता म) बिस्वास गलते जा रहे हैं।" ऐसे मार्तवशन मे पामिक निरक्षरता वराबर बढ़ती जा रही है और मध्यता धपनी जड़ो में प्रमम्वद हानी जा रही है। हम नास्तिकवादी दर्शन के धामने-सामने गड़ हैं और वह कोई मोवियत बन द्वारा प्राबिधृत नहीं है।

नीरस किमी पारम्परिक धनीबरबाव की गिला नहीं नेता। हा वह धबिरपाम के दण्डवारियो के धामसलीय को धस्विर कर देता है और समस्त मूष्यों के धप्रास यूरोपीय नास्तिकवाद के सामने टुड़े हुए मानबाएमाओ तथा समाजों की स्थिति का बिषण करता है। वह पुछता है नास्तिकवाद का क्या धर्य है? और स्वयं ही उत्तर देता है "इसका धर्य इतना ही है कि सर्वोप्य मूष्य म्बय को मूष्यहीन कर देते हैं। हमारी बिनामा का न कोई सटय है न कोई उत्तर है। पूष्य हतास होकर वह चीग उठता है हमारा धर कहा है? मैं धोज रहा हू मैंने गोजा है पर मही पा सवा। धो गिरा मूर्खधामीम। धो मित्य कही भी मही। मब म्बयं। बदिएब सिमता है यूरोपीय मामब एब मधानक धूष्यता लवयो को बधि के बरंत हो जाने से क्कवा चादे और बिसी कपन से हो, हमारे समन एक मये म्बकम-बुन की निर्भविध का लही दु" है।

१ 'धमेड' (१९२६) कूड २२२।

२ मरता के मेग्राजन्स मे धम मधुन क्कव दिमक गिरि वा बरंतन किया क्कव है गिराई इतर को कृष वा धीगर्जा का उदमन होय है 'जापने धम काल की बधा मही मही है जा इंदुरी क नल प्रकाल मे कानटन म्बकट बाटाट मे रीदने दुप गिलता रहा था कि मे ईसा का धोब कर रहा हूँ? मेगकि क्कव भाग है बधा कुप लो लोग क्कव म्बक धे जा देरर मे निरकन मही रया क क्कविक उय क्कवना क्कव गूर बहबहे क्कव। पगन क्कवकत उन सावी न म्बय मे धा गवा और धीम, ईश्वर कहा है? म्बध्या मे क्कवय हूँ—धम लोयो मे मुमने और इमने म्बकवर उयका इया कर दी है पर हमने क्कव क्कव कीम किया? धने विमन क्कव रा क्कव क्कव की क्कवे उयन मारी क्कविक पर वेरकन उयका लक्ष्य क्कव दिया? धमने म्बकन धारा का उय नुव ता बिधिदन् क्कव क्कव क्कव? धन क्कव किम और धन रदी है? धम क्कव जा रू है? उध धम गिराए म्बकजिन मही हो रद है? क्कव इय धर्यम गू का मे क्कव नहीं रद है? क्कव गिरा क्कव मारी धनी भा रदी है—ध क्कव विध लक्ष्य? क्कव धने क्कवकदकाल मे ही क्कवने नही क्कवानी पाधि? धनो क्कव लक्ष्यधयो का सार मुने। के ईश्वर को इमान मे म्बक है और इमने धम मार टाला है। हमने विध कौनयो लक्ष्य म्बकनता रर गई है क्कव धम क्कव की म्बक्य ही इधारे विध क्कविक म्बकन मही है? एता धोष्य धनने के विध क्कव धने स्वयं ही क्कव मही धन म्बक क्कविक?

तीसरा अध्याय

विश्वास की आवश्यकता

१ धर्म के स्थानापन्न पदार्थ

धर्म संसार के लोगों की बहुमूल्यक खोजियां धर्मिष्ठक विश्वास का संचार हैं। वे गारम्भिक रूपों बानी मठीय बीवारों के अन्दर बड़ी नहीं हो जाती फिर भी उन्हें विश्वास निष्ठा अपनी बलमान धारकताया घोर धार्यों के लिए महत्त्व मय्य की भाष्यकता है। मनुष्य बहुत समय तक अज्ञान या होनता की प्रकथा में नहीं रह सकता। धर्मार्थविद्या के सम्बन्ध में काष्ठ ने कहा है कि वह एक अन्तःप्रकाश (इंस्टिन्स) है जिसे हम नष्ट नहीं कर सकते फिर चाहे उसकी उन्नत प्राप्तिसे से कितना ही इन्कार किया जाए। यही बात धर्म के लिए भी सत्य है।^१ इसकी अन्तःप्रकाश कुछ समय तक गृहीत रह सकती है किन्तु वह नष्ट नहीं की जा सकती। बिना किसी विश्वास अन्तःप्रकाश या निष्ठा के भी सकता धर्ममय है। यदि प्रकृति में रिक्तबलाग या निर्वातता (वेस्चुम) के लिए धर्म है तो मानवता की प्रकृति से भय जाती है। अन्तःप्रकाश ने कहा था 'मनुष्य का कोई धर्म होना ही चाहिए, और वह धर्म प्राप्त करने रहेगा। यदि उसके पास ईसा का धर्म नहीं है तो वह ईश्वर के धर्म का ग्रहण करेगा और शक्य के मन्दिरों का निर्माण कराएगा इस दुनिया के उस राजा का ही ईश्वर कहकर पुकारेगा और जो सोए ईश्वर को ईश्वर मानकर पूजा न करेगा उन सबको नष्ट कर देगा।' हेरु की विश्वास तो करना ही पड़ेगा फिर चाहे वह किसी भी बीज में हो। जो सोए धर्मार्थिक बुद्धिसे ही पीड़ित हैं उनके सामने एक सड़ा धर्म भी जा सकता तो उसमें ऐसा स्वाद घाएगा मानो स्वयं से घाई रोटी ही जिसे अमृतमय हो जो प्यास में भर रहे

१ शब्द सारो है : "कभी मानव-मानव आध्यात्मिक शोष को पूरा-पूरा दूर न कर सका जाता है। निरर्थक है किन्तु अन्तःप्रकाश के अन्दर जाने जाने के भय से शक्य किश को एक-दूसरे बंद कर देना। इसलिए दुनिया में सदा धर्मार्थिकता रहेगी। बड़ी नहीं अन्तःप्रकाश विचारक और किन्तु अन्तःप्रकाश अन्तःप्रकाश के अन्तःप्रकाश और किन्तु अन्तःप्रकाश के अन्तःप्रकाश में धर्मो अन्तःप्रकाश के अन्तःप्रकाश ही जो क्व है।" —महात्मा ज्ञान प्रदीपक १ ११०।

१ 'वेस्चुमेन', पृष्ठ ११-१२।

है उसकी विपन्न कुल का पानी निमग घोर बीबनदायक जड़ जैगा समया। धारमा धपन भयानक यथत का जाननी-मममती है। उगक विण कार् ईश्वर मही है परन्तु ईश्वर हाता ही बाहिन। मनुष्य रिमी न रिमी भीत मे बिघ्नात करने पर जार देते है। क्योंकि हम रिमी घञ्जात भय के सामने कया नही जान एजते। धापुनिक मानव की धाध्यात्मिक गृहनीनता या निराधयता धधिर रिता तरु टिक मही सक्ती। कही का भी न होना धपने तरु रिमी बात को न मानता धपने की बिमबुन धामग कर सेना है। यह मरमता नही महजता नही तरु वैयक्तिक मार है। हमे धपनी धाई गुरधा पुन प्राप्त करनी ही हाया। हमक विण हम कोई भी मुख्य यहां तरु कि बीटिक गभाई की बनि धी बने वा नैवार है। गयहपी घानी के धग्तिम नाम मे परम्परागत धमों की धमिक स्थानधुनि हाानी गर् है घोर उसका स्थान म्मनन-गुजा का कार् न काई क्य या प्रकार ताता गया है। धार्मिक धाधार की जगह धर्मनिगाग धाधार पर ध्यवित की रखा करने की सेटान ताक धिय हा गर् है।^१

२ उपमानधीय स्थिति में पतन

कमी-कमी हम उपमानुपी स्थिति मे लौट जाने की जाना करते है तथा बिचार हीन बिबेकहीन हा जाने है। जाह बिबानानियमीय ईश्वर समीर के-गुर-गुल को धपने इन धप्यो स खम करना चाहता हा। मैं सोना चाहता हू या मनुष्य पुन उठी धवस्था में लौट जाने की इच्छा करता हा जिसमे बहु ज्ञान-बुधा बा-मम धान के पुन ईश्वर के उधान मे धा या बहु मोचना हो कि सबस धपछा यह बा कि बहु वैवा ही न हुआ हीता जाहे बहु बीटिक सेतना को एक उगट के रूप मे सेतता हा धौर उचका धत हा जाने की इच्छा करता हा किन्तु इसम हम समस्या वा सामना नही करते उससे धचना भावना चाहत है। उपमानधीय धमका पापविक बीबन की धार लौट जाने की प्ररणा जो उगट क समय हमपर छा जाती है धम की छाया-मात्र है। मनुष्य पुन धपनी पापक सेतना की प्रहय नही कर सकता।

१ 'अन्तरगतपूर्वक मही बलि संभव-साधनाती से रक्षय एक निरन्तरन सल के प्रति आग्रक होना—सैटिन हाय रिमीबिबेन' का गुड धर्म है। धर्म नही निरन्तरन इनसे मनुष्य धर्म का धार्मिक अधिप्राय है। एक मनुष्य जो बिबलन करता है धीर धीरिण जिने क्व मताव रहित सल मम-मम है नही उचका धर्म है। 'रिबलजवा हाय 'रिमीबन बलु से किसका धर्म मनुष्य को ईश्वर मे बास्ता है सही लिखता है। बिबलन मे सेवा के धुनार्थ को धमम रखा है धीर रिमीबिबेन हाय गुड धार्मिक जगहन ध-ध नाम ध्यवित वा धन सेय है। धमलिप रिमीबन (धर्म) का धार्मिक धर्म हैनेचान हाय हाय—धमलवाती धानरवाती रिबिब। रिमीबिबेन के धार्मिक हाय है 'नेप-लिबो' 'रिमीबेन' (रिमीबिबेन) के धार्मिक है 'नेबिबेन'। —जोम बासेगा सेयट कको^१ पण्ड बिबरी (१९४४) पृ २२।

‘जब तक त्रियो मनुपूर्वक जियो खूब सेजर भी पी पियो देह क मिट्टी में मिस जाने जसकर उक्त हो जाने के बाद क्या फिर घाता है ?’

भोगवाण का यह सम्पूर्ण दृष्टिकोण जीवन के एक मौलिक संघर्ष पर आधारित है। मनुष्य देह की पुनार एवं स्वपुनार आत्मा की पुनार, के बीच द्विर्लभ्य विमूढ़ है। देह का भीखार एण सरम और प्राकृतिक मामुम पड़ता है और यदि मनुष्य उसे मुक्तता है तो उसका विकास रुक जाता है और वह एक ऐसी वासता में फिर से फिर पड़ता है जिससे छूटने का प्रयत्न वह धीरे-धीरे कर रहा है। अपनी सहज प्रकृति का घादेष मानकर वह विकास की रैसा से फिर जाता है। जब जीवन में धानि एव स्थिरता क नभीर स्रोतों का अभाव होता है तब हम इन्द्रियमनुष्यो में डूबकर उसकी पूति करना चाहते हैं और इन प्रकार की प्रकृतियों द्वारा अपने प्रखर की कराहती हुई, रिक्तता के प्रति अपने ध्यान को मुतप्राप्त कर देते हैं। विचार भ्रम में फंसी बुनिया के लिए अपने को बासने का भार बहुत होता है परन्तु खाना-पीना मंत्र-सपाटे करना और इस बिस्वास के माब विधाय करना कि इन बातों से कुछ होता-जाता नहीं माननिक दृष्टि से एक असम्भव बात है। परियुक्त भोगवाण जीवन की समस्या का कोई उत्तर नहीं है।

४ मानवतावाद

जब मानव-मस्तिष्क को पता लगता है कि जिन अवसर्तों पर वह बहुत समय से भुक्त्वर सहारा लेता थाया है वे जीवन एवं जर्जर हैं जब संभव होता है कि पारम्परिक धर्म का संप्रचाय निराधार हैं जब जीवन से उटका धर्म को गमा सा लपता है और वह मिडूडर एक अर्थवि एक सम्बाई एक प्रसार भर रह जाता है जब भवानक धरमा एवं धारमा के अकेलेपन का भाव हमपर अधिकार कर लेता है तब हम अनुभव करते हैं कि विवेकपूर्वक जीने का केवल एक ही मार्ग है और वह है उन तारिखक अनिवार्य वस्तुमा को बलपूर्वक ग्रहण किए रहना जो धाव भी निश्चित है सत्य की सरमता और नैतिक नियमों की महनीयता। यह एक अवप्रव नहीं है और जो हमसे बुरर चुके हैं केवल वही बता सकते हैं कि जब मृत्यु सर्वस्वाम्त के रूप में दिखाई पड़ती है अविवित प्रणत् एक मुठ विस्तार-मान लपता है सिर पर फेमा धाकाध कासा बीखता है तथा उसकी रिक्तता म से ईस्वर प्रयाण कर गये-से जान पड़ते हैं तब यह अनुभव कैसा भयाणक होता है।

‘प्रोफेसपोड डिकपनरी’ में मानवतावाद की परिभाषा इस प्रकार की गई है ‘कोई विचार या कावप्रनाली जिसका सम्बन्ध केवल मानवीय (न कि देवी) शक्तों से या फिर सामास्यत मानव जाति से होता है। मानवतावाद के लिए मनुष्य ही अस्तित्ववातियों में व्यक्ति का सर्वोच्च प्रकार है तथा मानव-सेवा ही सर्वोच्च धर्म है। वह-उत्तम जीवन, जखारता, सामंजस्य, संतुलन में विश्वास करता है

जब धर्म किसी दूसरी ही तुला पर वजन देता है। मानवतावादी यह मानकर भी चमत्ता है कि मनुष्य प्रकृत्या घबड़ा होता है जो बुराईया हैं वे समाज की हैं उन परिस्थितियों में निहित है जिनसे मागब मिरा है और यदि वे दूर कर दी जाती हैं तो मनुष्य की घबड़ाई बाहर झा जाएगी और प्रगति सहजसम्भ होगी। इसके प्रतिकूल धर्म मानव प्रकृति की प्रतिगम धर्मोपान्तता में विश्वास रखता है। धार्मिक व्यक्ति पाप के दूर लक्ष्य तथा उससे बच निकलने की प्रतिपाद्य आवश्यकता के बस दाएण संभवा भाग करता है।

जब धर्म बिगुलन और मनुष्य का ध्यान धरनी और क्षीपन में प्रथमच हो जाता है तब मानवतावादी पुनरुद्धार (रिबाइवल) की बिचारधाराएं पुनः जी उठती है ऐसा ही प्राचीन यूनान में हुआ था। प्रोटोगोरस ने सत्य पर आ पुस्तक लिखी है उसमें एक उल्लेखनीय सूक्ति है जिसकी प्रतिष्पनि आज तक सुनाई पड़ती है "देवताओं के बिषय में मैं यह पता लगाने में प्रसन्न रहूँ हूँ कि उनका अस्तित्व है या नहीं। बिषय की अस्पष्टता तथा मानव-जीवन की लघुता इसका पता लगाने में बाधक रही है। कल्पयूधिपस ने ज्ञान का एक पुद्बबौद्धिक दृष्टिकोण प्यताया जब तुम किसी बात को जानते हो तब यह कहना कि तुम उसे चीज को जानते हो और जब तुम उसे नहीं जानते तब यह कहना कि तुम उसे नहीं जानते यही ज्ञान है। जब उससे मृत्यु के बिषय में तथा देवों के प्रति उचित कृत्य क्या हैं इन बिषय में प्रश्न किया गया तो कल्पयूधिपस ने उत्तर दिया था "जब हम जीवन के बिषय में हो नहीं जानते तो मृत्यु के बिषय में क्या ज्ञान संभव है? हमन धर तर नहीं सीगा कि मनुष्यों का सेवा कैसे की जा सकती है तब हम देवों की सेवा कैसे कर सकते हैं?" हेमनस्टीय (यूनानवासी) युग में बराम्पस (स्टोइक मत) की आश्रयिता बहुत कुछ "स धनुमूनि के ऊपर धाधित थी कि गम समक में जब मनुष्य संलय एवं अस्पष्टता में भीत था बराम्पस ने मानवीय धनुमक की कुछ निश्चितताओं के अस्तित्व पर बल दिया।

जब यूनानी रोमन दुनिया के ईसाईधर्म धर्मोकार किया तो वह अन्नाइ एवं माटकायाता में मानव जीवन का मजा सूदन से धारमरपाग एवं तपकटोर जीवन की धार जाने का परिचरन था—इसमें देवम जीवन की निम्नतम धार देवताओं के लिए ही नुजाती थी। पूरि स्वर्नय यूनानी भावना धारोचना प्रपाग एवं बिनेही भी धार रूप गठन धारामाजिक-राजनीतिर स्वतन्त्रता तथा बुद्धिवाद पर जोर देती थी इमानिए स्वेण्डाप्रुवरु संगीरुत गरीबी एवं बीनता के ईगान् गद्गुणा के प्रति पूणतः सार्वत्रस्य न स्थापित कर सकी। दोनों के बीच निरन्तर भीषतान चलती रही। यूरोप में तीसरी सदी के धाम में ही मन की धार्मिक

'प्रिंसीपिया एथिका' (नीति-सिद्धान्त) के अन्तिम अध्याय में प्रो० जी० ई० मूर ने अपने विचार का सारांश दिया है। तृतीय अनुच्छेद ३ में वे लिखते हैं

'हम सबसे मूल्यवान जिस चीज को जान सकते हैं या उसकी कल्पना कर सकते हैं, जतना भी कतिपय अध्यायों हैं जिन्हें मोटे तौर पर मानव-संसर्ग का गुण या सुन्दर पदार्थों का उपयोग कहा जा सकता है। निष्पत्ति ही यह सरल सरल सार्वभौमिक रूप से पहचान लिया गया है। पर जो अभी तक नहीं पहचाना गया है, वह यह है कि यही नैतिक उत्कृष्टता का अग्रिम एवं मौलिक सत्य है। इन्हीं वस्तुओं के लिए, इसलिए कि इनमें अधिक से अधिक यथासंभव किसी न किसी समय अस्तित्व में रहें, किसी व्यक्ति का कोई सार्वजनिक या निजी कर्तव्य का पालन करना स्याद्व्य हो सकता है यही गुणों की कसौटी है यही है—य अस्तित्व पूर्वत्व स्वयं इनके कोई धर्म या धर्म नहीं—जो मानवाचरण के अन्तिम बुद्धिसम्मत सत्य का निर्माण करते हैं।'

यह पुस्तक १९०१ ई० में प्रकाशित हुई थी। उस समय के तरुण बुद्धिवादियों के लिए मूडवाही धर्म अमान्य था इसलिए मूर ने उनके लिए एक रास्ता निकाला। उसकी जतना भी धनस्वायं प्राध्यात्मिक धनस्वायं है—उत्कृष्ट धार्मिक। मूर ने मानव-सम्बन्धों के धार्मिक मूल्यों पर जोर दिया और अपने विषयों से कहा कि वे उसकी दो सबसे मूल्यवान वस्तुओं का अभिवर्धन करें—मित्रता एवं सौन्दर्य का न कि वैयक्तिक शक्ति एवं सफलता का अनुकरण करें।

ऐसे मनुष्य-प्राणी बहुत ही थोड़े होंगे जिनमें इस विज्ञान जगत् की घोर देखने पर, जिज्ञासा या विस्मय यहाँ तक कि घातक का भी उदय न हो। मनुष्य जगत् की प्रकृति को उसके स्रोत एवं मंडित को जानने के लिए उत्सुक है। मानवीय मूल्यों में हमारा जो विश्वास है वह जगत्-सम्बन्धी हमारे विचारों से एकीकरण चाहता है।

चिर हूँ मनुष्य की प्रकृति की परिभाषा करते समय उसके अन्दर जो प्रकृतिक धारणाएँ हैं उमें छोड़ नहीं सकते—उम धारणाएँ को जिसका वर्णन करते हुए परल्लु कहता है वह जो विवेक से उत्तम है क्योंकि विवेक का श्रोत है।''

''क्या वह सत्य है कि धर्म के उ अन्दर में अन्तर्गत लोभ मानिक है ? जो वह उत्तर दण्ड है अस्तित्व विचार-प्रदान लोभ धर्म है क्योंकि वे ऐसी कृपा का लक्षण माना कल्प नहीं करते। सचार्थ तो वह है कि धर्मधर्म परिचय विश्वास अरु अस्तित्व का कुछ प्रकार का वाह नहीं करण। धर्मधर्म सत्य रहल अस्तित्व धर्म भी अब हम-सुय सत्य वे अस्तित्व वस्तु शार मन्थन था।

१ 'यूनिवर्सल एथिक्स गुणधर्म अस्तित्व ए धर्म अस्तित्व' इमार अस्तित्व धर्मधर्म है चिर भी हम धर्मधर्म की अस्तित्वधर्मों में भी हम धर्म धर्मधर्मधर्मों में धर्म धर्म है जो अस्तित्व धर्म धर्मधर्म धर्मधर्म का अस्तित्वधर्म है कि अस्तित्व धर्मधर्म धर्म धर्म धर्मधर्मधर्मों को धर्मधर्म धर्मधर्म।'—यूनिवर्सल एथिक्स धर्मधर्म धर्मधर्म धर्मधर्म (१९१४)।

मानवतावाद धारणत भाकीयाधों धनुभूतियों धामिकता के लिए बुभुधा एवं पिपासा तथा उत्पीड़न एवं प्रायोसर्ग के लिए तैयारी की धोर ध्यान नहीं देता ।

एक प्रफसातून मत ऐसा भी है जो हमारे मानस के लिए वैसी धपना जैसा लमता है । इसमें साक्षत सूक्ष्मों को धेष्टता प्रदान की गई है । इन्धनों के धनुषं धग में बाँटे हमारे सामने लिम्बो का नित्र ररुता है—यह लिम्बो बजिन एवं होमर जैसे पुरातन महानकियों धरस्तू तथा धम्य महान धार्सनिधों हेक्टर एनियस सीजर एवं धम्य बीरो का देर है । ममुष्य मनुष्य की हैसियत त धपने धार्शनिक धिन्तन कनारमक धर्जन तथा धैतिक एवं राजनीतिक प्रमलों द्वारा जिस सर्वोत्तम बुध की धाधा कर सकता है वह धैरनाधित बुत्तरहित धीजत है किन्तु वह ध्वाध्म्य-रहित जीवन नहीं है ।^१ इन धेष्ट धिधारकों कमाकारों एवं धीरों ने 'कोई नमती नहीं की थी' किन्तु उनकी धोष्यताएँ इस धरती पर उनके लिए सुपमाजनक एवं धानामी लोक के लिए यद्यस्वी नहीं हो सकी । उनका जीवन 'धामाधित कामना का जीवन है । बस इतना ही धानन्ध बाँटे के धनुसार मानवतावाद देता है । धानियों का बुध धरस्तू 'बही ररुता है पर वह ध्वाध्म्य स्वर्ग नहीं है । बाँटे

१ इन्धनों ४ १३ । बल रुरुध्ट मिल की धरमनधा में एक प्रसिद्ध धंरा यह है : "१८११ की सीन धनु धे जब मैंने ररुती धर देकम को ल्हा धा धिरीलन" केर धिनिधर रिगू के धारण से मुन्धैं एक धीर की जिने सध्द से जीवन ना धरेसक कहा ज्य सनरु है । मैं सध्द का एक धुधारक बनना धारुता ना । धैरे ध्वाध्म्य-सुख का धारुता भी इस धरेसक के धूर्धः धनुभूत थी । मैं ध्वाध्मे धिध धिन्की ध्वाध्म्युधुति की इन्धा धरुता ना धै इस प्रमन में धैरे लरुधी धै । एह में धलने धुध धैने धार्धिक से धार्धिक धुध धुधने का बल धिध धरुतु धपने धीर एवं धिध ध्वाध्म्युतुतों के लिए धेध सध्दूर्ध धिरुधुत इतीधर ध्वाध्म्य धा धीरे मैं धिध धुधी जीवन का ल्हा लध धा धीरे जलधी धिधिरुधुत के लिए धपने को धधर्त देध धा वह धिधी ल्हाधी धर्ध धुरिधुत धरुतु में धिधुत थी—जैसी ल्हाधी एध धुर की धधु धिधकी धीरे धुध-धुध लधने का धनुभूत तो धा धिधुत धूर्ध उध्वाध्मि से ध्वा धमाध न धा धाध । किन्तु एधध ध्वाध्म्य ल्हा में इत धिधुत से इत प्रकधर का एध धानो ल्हाध से ल्हाध होक । ल्हा धधध १८१६ ई० के धरुध की है । मैं धुध ध्वाध्म्युधर्ध धन-धिधुत में ना धैध कि इर धारधी धधी न कधी होध है ।" इसी धनधुध धरुध में मुधे धेध धया कि मैं धरने से सीला ल्हाध धक 'मान लो कि धुधारे जीवन की सधध इन्धाध धी हो धर ना धुध धरुधधा ध्वाध्म्य लोनों का एध धै जो धुध धरिधुध धैकधा धरुधने हो धै इसी धध धूर्धः सधधुधुत हो धाध तो ध्वा धध धुधारे धिध महान ध्वाध्म्युध धर्ध धुध की धध होधी ? धीरे धक ध धानधाली धध धैधुता धै ल्हाध कध धिध 'नधी । इधधर धैरा कधेध्य धैध धध धध धिध धीध पर धैरे धधध जीवन की एधध धूर्ध की धध धधकधर धैध धर्ध । ध्वा ध्वा कि इत लधध के धिरुध धनुभूतध धै धी धध धध धानन्ध ना । धध लधध धधधुधुत नधी कधुता—सुनर नहीं लधुता, धिध सधधुत में धुध धिधकधुत धैध हो सधेध ? जैसा लधुता है धैधे जीवन के धिध धैरे धध धुध धैध नहीं ररुता । जे कध धिध धै धनुभूत धिध कि कधे धानधी कधधुध का धधुध धानधधुधुतध में धधुधुत की धध-धुधुत संधुधुत को धधुध लधध धैध धाधध ।

सब धरस्तु के प्रति स्वाय मही करता जिसका मत है कि सबसे पवित्र एवं कम से कम स्वार्थपुत्र सत्याय जो मनुष्य को शत्रु है वह है ज्ञान के लिए ज्ञान प्राप्त करना । शूद्र ज्ञान का आनन्द प्रदाय है । यह स्वयं ईश्वर की श्रियाणीमता में विद्युय चित्त के उसने नित्य जीवन में भाग मना है ।^१

मानवतावाद धर्म के उन धर्मों के प्रति एक उचित विरोध है जो लौकिक एवं पवित्र में भेद करते हैं काल एक निरम का विभाजन कर देते हैं तथा धारमा एवं देह के ऐक्य को उचित करते हैं । धर्म या तो सब कुछ है या कुछ नहीं है । प्रत्येक धर्म को मानव की मर्यादा तथा मानव-स्वभित्त के परिपक्वों के प्रति-पर्याप्त-मानव सम्मान रखना चाहिए । यदि हम धर्म का तिरस्कार करेंगे उसकी निन्दा करेंगे तो हम उपयुक्त बातों की रक्षा भी नहीं कर सकते । जैसा कि मुकुरत से मिलने प्राण हुए भारतीय ने कहा था 'यदि हम ईश्वर के विषय में नहीं जानते तो मनुष्य के विषय में भी कुछ नहीं जान सकते ।' जो कुछ सत्यत माननीय है उसीकी पूजता धर्म है । मात्र मानवतावाद एक धारमा की खोज में है ।

५ राष्ट्रवाद

धर्म का कर्मावली या धार्मिक (टाइमस) रूप बहुत प्रारंभिक समय से मिलता है । उस समय धर्म का कार्य अपने अनुयायियों को बेसभक्तिपूर्ण बदयता से प्रवि क्षित करना था । (इजराइल के) ईश्वर के रूप में माहवा उन लोगों की राष्ट्रीय शैतना इजराइल की आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधि था । यहूदी एक बड़े परिवार एक फिर्के के सदस्य थे 'मो इजरायल' यानि मैं तुम्हें भ्रूण तो मेरा दाहिना हाथ धरती बृजमता मूल जाए । यदि मैं तुम्हें न मार दू तो मरी जिज्ञा मरे तामू में भिष्ट जाए—मो इजरायल ! यदि मैं अपने प्रधान मुख के भी ऊपर तुम्हें न रत्न ।"^२ प्रत्येक पूजाती यात्र में कोई विरोध बूल खेत या मन्दिर होता था जो वहाँ के किसी देवता या नायक के प्रति घणित हाता था । वह देवता या नायक ही उनको रक्षा करता था । जापान में धर्म का प्रयाग राज्य की संघटित एवं बृह करने में किया जाता है । मुहम्मद एक धम और एक राष्ट्र के संस्थापक हैं । कुर्बत एवं परलम्ब देवों में राष्ट्रीयता स्वयं धर्म बन गई है । भारतसम्मान की प्रामाणिक भावना को जागरित करके यह धर्मित एवं संघपतीय जानियों को रचनात्मक कार्य को प्रोत् प्रेरित करती है । वह उगह धार्याबिश्वास एवं तेवय की

१ विद्वानेयदन एविस अथर्व ७५ ।

२ ४ जो ईश्वर को समीकृत करने के मानव की देवता को प्रतीकार करने है बर्के निरस्य ही। अने शार में मध्य खु-मुम्ब है; और यदि वह क-र से धार्या में ईश्वर मुम्ब मरी के ता का बीच पन्नारद धार्या है । —वेरन ।

भावना देती है तथा अपने देश का एक मिशन है एक निरुक्त कार्य है हममें उनका विश्वास पैदा करती है।

वे लोग भी जो अपने को धार्मिक कहते हैं, राष्ट्र राज्य (नेशन-स्टेट) की प्रशंसा करते नहीं अपनाते। मसमग सभी देशों में शिष्ट-व्यवस्था में मिलाया जाने वाला धर्म सितों मठ का स्वामीय संस्करण-मात्र ही तो है जिसमें भग्ये की समामी और राष्ट्रगीत का गायन सम्मिलित है। किसीने कहा था "इन्डियन का एक धर्म है उसका धर्म ईश्वर है।"

राष्ट्रवाद एक राजनीतिक धर्म है जो मनुष्यों के हृदयों एवं धारणाधर्मों में उत्पन्न-पुष्पम कर देता है और उन्हें इस प्रकार सेवा एवं धारमत्याग की ओर प्रेरित करता है कि प्राधुनिक समय में किसी विद्युत् धार्मिक धारणाधर्म ने बीमा नहीं किया। यह अधिष्ठित स्वर में बोधता है और हमारे मनोबोधों को स्पर्श करता है। राष्ट्र का बाबा है कि वह संसार में ईश्वर की सर्वोच्च धर्मव्यक्ति है। जर्मन ईसाइयों ने स्वीकार किया कि "हिटलर के माध्यम से ईसा हमारे बीच दक्षिणमान हो गए। इसलिए राष्ट्रीय समाजवाद (नेशनल सोशलिज्म) आचरण या कर्म में व्यस्त धिमाजीन ईसाइयत है।"

धर्म को उधार, मार्कवैधिक और सब मानव बर्णों तथा मानवीय परिस्थितियों में प्रकृत किए जाने योग्य होना चाहिए। राष्ट्रवाद इस भावना पर प्राधान्य करता है। जब तक कोई धर्म किसी बर्ण भेगी या राष्ट्र की कार्यपरिधि से बाहर नहीं निकसता तब तक उसका यह दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता कि वह सम्मार्ग का अनुसरण कर रहा है। किसी समूह की भले वह राष्ट्र ही क्यों न हो पूजा ईश्वर को राष्ट्रीयता की एक उपाधि-मात्र बनाकर छोड़ देती है। जब कोई राष्ट्र, अपने को बीबी ईश्वरीय मान लेता है और उसका यह विश्वास बन जाता है कि अपने सत्य से केवल बही सबका रक्षण कर सकता है तथा केवल बही संसार को ऊपर उठाने में सक्षम है तब छिन्न और उपनिवेशों की बाहू का प्राधुनिक होता है।

६ साम्यवाद

जिस विराट ऐतिहासिक घटना-वक्र में एक ही पीढ़ी में पुरानी व्यवस्थामों को ध्वंस कर दिया परस्पर विभक्त विषम समाजों में कान्ति कर दी विश्व भर में घब तक बात राजनीतिक धार्मिक एवं सैनिक शक्ति के सर्वोच्च पुनर्निर्माण को संपादित किया जो लक्ष्य धापी दुनिया में छलन हो चुका है और सेप संसार

१. दुनिया की विविध, विदेशीय में विश्व की इतिहासिक संकेतों हैं "हमारे पूर्वजों का ईश्वर, हमारी सुदूर तक विस्तृत बुद्ध-देवता का मनु मनुके सर्वकर हाथ के नीचे इन लक्ष्य तथाकथित धर्म से बने इतिहास को कान्ति किन्तु है।

२. ५. कान्ति ५ 'कान्ति' (१९९), पृ १९ पर उद्धृत।

के लिए चुनौती के रूप में आया है उसे समझने और उपाय सम्पन्न करने की आवश्यकता है। हमें उसकी वैश्विक भस्त्रबस्तु, उसके नैतिक कार्यक्रम उसके सामाजिक भावधर्म को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। आज दुनिया में बहुतेरे ऐसे धार्मिक हैं जो साम्यवाद की पति रोकने को उत्सुक हैं किन्तु ऐसे बहुत कम हैं जो जानते हैं कि वह बीज क्या है जिसके विरोधी वे हैं। हम किसी बाधे को इन्कार नहीं कर सकते हम किसी धारणा को मिटा नहीं सकते जब तक हम जान न लें कि वह धारणा, वह बाधा वह अपीम क्या है। बिना उसे जाने उसकी प्रेरणा के बिना हम कोई ठोस आकर्षण भी उपस्थित नहीं कर सकते। सामूहिक कहानियाँ मध्य राष्ट्रीय गिरफ्तारियाँ अफवाह भरे मुकामे पिछले साम्यवादियों द्वारा अनुताप प्रकाश—उन साम्यवादियों द्वारा जो निष्ठा से मेजर स्वप्नमय सैनिक हस्तक्षेप खोससमाज के काफी बड़े-बड़े संघों के विनाश को सहन कर भी जीवित रह—यदि हमें इतना ही कहना है तो हम बस्तु के मूल तक नहीं पहुँच सकते।

माकर्मकारियों का विश्वास है कि उन्होंने मनुष्य की प्रकृति के एक वैश्वान्वित दृष्टिकोण का विकास कर लिया है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य की प्रकृति का निष्पत्त उम्र इंग पर होता है जिसे इंग पर जीवन की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन होता है। उसकी वैश्वान्वित सामाजिक स्थिति का ही एक कार्य है। उसकी मूल स्थिति उदात्त धार्मिक सम्बन्धों की सीढ़ पर सही एक श्रेष्ठ रचना है जिसके द्वारा जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। विभिन्न धार्मिक मत वे विचारधारणाएँ हैं जो परिस्थिति-विशेष में कुछ विशेष हितों की रक्षा के लिए विद्यमान कर ली गई हैं। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ-साथ मन में परिवर्तन होता है। धार्मिक धर्मों एवं पूजाधर्मों के दो बर्ष हो जाने के कारण राज्य वर्ग-नियंत्रण वर्ग-सामग्य का एक ऐसा साधन बन गया है जिसके द्वारा एक बग दूसरे को अपने प्रभुत्व में रखा है। धर्म वह अपीम है जिसके द्वारा नियंत्रित और शासित वर्ग के सदस्यों को सूक्ष्म तथा संतुष्ट दासता की स्थिति में रखा जाता है। संक्रमणकाल में उत्पादन के साधनों के विकास में वर्ग-संघर्ष अत्यन्त प्रभावी है। जब यह स्थिति समाप्त हो जाएगी तो एक बगहीन समाज का जन्म होगा जिसमें कोई शोषण न होगा तथा राज्य की भी आवश्यकता नहीं रहे जाएगी। इस समाज में सबसे अधिक आवश्यकताएँ पूर्ण की जाएगी पूरा म्वाय होगा तथा स्वतंत्रता के लिए भरपूर शक्ति रहेगी। इतिहास की वर्तमान धररवा में हम इस सत्य की ओर बढ़ रहे हैं। साम्यवादी इस के सत्य को इस मरय-साधन के लिए मन्वेष्ट है जिसके द्वारा ही धोर से जाने-जाली भाषा के नेता हैं।

साम्यवाद धर्म की निरा इमतिष्ण करता है कि वह मान लेता है कि वह एक प्रकार का निरन्तरीय आदर्श है जिसका स्वयं ऐतिहासिक प्रक्रिया की सीमा के बाहर है। यदि धर्म नास्तिक विषयों में कोई निरन्तरीय नेता है तो ऐसा वह केवल

पत्तियों एवं बमपातों की बुनिया के लिए करता है। साम्यवादी घातक इहसौफिक है और त्रिा पुरस्कार का यह प्राप्तमान होता है वह दूरी धरती पर उपभोग करने के लिए है। यह धर्म एक संवेष्टा का उपदेश नहीं बना एक नये समाज की रचना में यह गम एवं मल, मूत्र एवं बसिदात की पुकार है। इसी मायामों एवं सिद्धान्त में ये जाहे प्रत्येक वास्तविक प्रीर दारण ही पर साम्यवाद 'जो कुछ तेरे पास है उसे बेचकर पत्तियों को दे दे - इस सिद्धान्त पर धारित एक नये प्रार्थ की मोर राज्याज्ञा ठुमा बड़ रहा है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है कि हम सब उसकी प्रगसा करते हैं पर उसने अनुसार धारण करने की परवाह नहीं करते। इसकी मपील या प्रेरणा बिलुप्त है। बुद्धिवादी एवं ऐसी जीवन प्रणाली से अब बूके हैं जो प्रसङ्ग रूप से सिबिल प्रीर बेजान दिखाई देती हैं क्योंकि उसकी कोई मांग ही नहीं। इसलिये वे इसकी मोर धारणित होते हैं। तारे समय अपना पैसा पैसा करते अपने उरास एवं नीरस वीन एवं रज जीवन से बच सकते हैं। साम्यवाद एक ऐसी बुनिया में बच निकलने का रास्ता बताता दिखाई देता है जो निष्कारहित है जो युव की बीमारी को सम्झनी नहीं न जिसमें उसपर बिजय पाने का संकल्प ही है। जो सोम भय एवं महत्वावादा कृटिमता एवं निराशा से पीड़ित हों उनको यह एक ऐसा निमित्त प्रदान करता है जो मृत्यु में ही जीवन पूरने की समता रचना है।

धूमसंस्कार की प्रेरणा का दमन नहीं दिया जा सकता। बूकि परम्परावादी भम अपूर्ण हैं दूसरे तरीके दूसरे रास्ते निकाले जाते हैं—बसा एवं मपील नृत्य तथा धर्म जनरजक बालें। पलायन के इन तरीकों में साम्यवाद सबसे छलित मान है। तहनों एवं तरणियों को पुनः पठा लग रहा है कि किसी कर्तव्य के लिए बक्ति में निष्ठा में एक धान्य एक बिह्वलता एक उत्सुकता है बिचके धामे बुनिया मुख एवं मात्मभोग का जीवन निश्चय एवं स्वादहीन मयता है। एक बने से बच जाते हैं प्रीर ब्यक्ति क विम्वेधारियों से छूट जाते हैं।

साम्यवाद में धर्म के सब लक्षण हैं। यद्यपि वह पूर्णतः बर्मनिरपेक्ष एवं मानवतावादी होता है। यह मनुष्य एवं प्रकृति के एक स्पष्ट बर्धन को पूर्ण मानकर उसकी सिखा देता है। यदि हम एक विशेष प्रकार की राजनीतिक एवं धार्मिक कान्ति कर लेते हैं तो सामान्य कस्याम अपने-माप प्रा जाएगा। यह प्रभुत होने का बाबा करता है प्रीर लोगों पर अपनी कटुता लावता है। यह छिछं बुनिया की

१ जान विकित्तम नरे कां तक बहने है कि "धर्म के वास्तविक रूप में सम्भवतः ही रचनात्मक बर्धन धर्म है।" —दि वेष्टेसिटी ऑफ कम्प्युक्त्स (१९७०) ४ १११।

कोरी तार्किक व्याख्या-मात्र नहीं है क्योंकि म्याय के लिए इसकी धीमी में एक धर्म की सम्पूर्ण प्रवसता है। यह एक ऐसे बिश्वास से संज्ञातित होता है जो धर्म निष्ठा की भांति ही संमीर है और भोगों से कहता है कि इसके धारम की प्राप्ति के लिए कोई बलिदान भी बहुत नहीं है।

प्रत्येक मध्य धर्म में शक्तिकारी चुनौती का स्वर होता है। यह स्वर स्थापित धर्मों में मित गया है। वे केवल धौपचारिक होकर रह गए हैं। साम्यवाद ने इस स्वर को पकड़ लिया है। सेमिन की मूल्य पर स्तामिन की उचित सुविधित है। हे मापी सेमिन हम गुम्हारी धापय सेते हैं कि हम सारी दुनिया के धर्मियों की एकता को बढ़ाने और दृढ़ करने में धपने प्राधों की परवाह न करेंगे।”

मार्क्स एंजेल्स सेमिन और स्तामिन पर साम्यवादियों का भरोसा हमें धार्मिक जुन की आवश्यकता की निर्मलता की माद दिमाता है। सच पूछें तो साम्यवाद के इतिहास में धायर ही कोई ऐसी स्थिति रही हो जिसका समानांतरण ईसाईधर्म के इतिहास में न प्राप्त हो। इसमें भी हमें समाधियों पबिध धंभ सिद्धांत नीरस भाव्य अम्प्रदाय भद शहीय, नास्तिक विधुडीकरण संत पापी तथा बर्तमान धामुधों की धाटी म दूर स्वर्ग का दर्शन होता है। इसकी प्रणालियां एवं धनुषासन हमें बनाना कुछ धम-संप्रदायों की बाद दिलाते हैं। धर्म की भांति ही इसका भी बिश्वास है कि दुनिया धात्र प्रमय के सट पर सड़ो है और इतिहास असह्य रूप से धीमी धति से चल रहा है। धरती पर सत्य एवं म्याय की रबापना धबिसम्भ निस्मभेह एवं बिना किमी समभ्रीते के होनी चाहिए। स्व० निकोलस बडिणव एक धार्मिक सत्त्वजाती थे उन्हें रूसी साम्यवाद का धास्तरिक ज्ञान था। वे लिखते हैं कि साम्यवादी दृष्टिकोण धर्म के प्रति इतना बिरोधी इसलिए है कि 'बहु स्वयं ही धर्म बनना चाहता है'। वे कहते हैं "यह कर्नासिक एवं धायोंटास संप्रदायों के धनुकरण पर बना है बरन्तु उनके प्रतिदूष साधे जाता है।" साम्यवाद ईसमद-रहित बिश्वास है, यह नास्तिकता का धम है।

जब हम साम्यवाद की एक ऐसी कुराई के रूप में निम्बा करते हैं जो दूर-दूर तक बड़ रही है धमास्यवाणी जगत् के लिए बाहर से एक सतरा बन गई है और धदर में उसे गीगसा कर र्पो है तथा धारबाध सभ्यता के महान मूध्यों को नष्ट करने पर उताव है तब हम उस बात का धनुसध नहीं करते कि जो उगाधवा धा-बाध सभ्यता का एक धगभूत तरव है उसके मूध्यों के सगल बिकास का ही बहु धाना करता है। मार्क्सवाद नाक, सेंटैसगू तथा अमोके धटाधवी सदी के यूरोप की उगाधवादी परम्परा की एक तार्किक अंघभा है। इन मुधारकों ने ऐसे

१ '५३ कोर्गिबन धाक इतिास धनु'निधम' (१९३७) पृ १११।

२ 'अनुसेनिसल रिम्पू सं० १ (१९४०) पृ २२।

सामाजिक पुनर्गठन की बहालत की थी जिसमें हर आदमी अपने विचारों के अनुसार अपना जीवन बिता सके—सर्त इसी ही की कि वह दूसरों के भी बँसा ही करने के अधिकार का सम्मान करे। ग्याय एवं समानता की धारणा से ही वे सामाजिक विरोध उद्भूत हुए 'जिन्होंने पाषाणस्य समाज को हिंसा दिया उसे मया हरा लिया और अब तक उसके डंके को झकझोर रहे हैं'। 'कम्प्यूनिस्ट बोधधापत्र के द्वितीय अंक के अन्तिम पंरा में साम्यवादी आदर्श को 'एक ऐसा एगोसिप्लिसम या संघ जिसमें प्रत्येक सदस्य वा स्वतंत्र विकास सबके स्वतंत्र विकास की छत है' बताया गया है और पूर्व तथा पश्चिम के सब उपारणावी विचारण इसे स्वीकार करते हैं।'

इस तरह समाज का परिवर्तन करना कि मनुष्यों का जीवन समृद्ध स्वतंत्र एवं सुधी हो, सब ईश्वर की सतान है—इस जुर्म-विद्यालय वा हीताधिक परिचाम है। साम्यवाद विकसित इस लिए हुआ कि सामिक बना ने अपनी जिम्मेदारी छोड़ दी। फ्लोरबास पर प्रसिद्ध अन्तिम विचार म कहा गया है कि "दार्शनिकों ने बुनिया की व्याख्या भिन्न रूप में की पर मुख्य बात है उसे बदलने की। साम्यवाद को करना चाहता है वह यही है। वह बुनिया को बदलना चाहता है और ईसाईधर्म तथा धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद ने वा व्याख्याएं की हैं वह सिर्फ पत्नीको लेकर समुष्ट नहीं रह जाता। साम्यवाद को एक ईसाईधर्म-विरोध वा नास्तिकता कहा जा सकता है क्योंकि वह ईसाईधर्म-भूढ़ता वा कट्टरता के विरुद्ध जमे ही हो पर निश्चित रूप से ईसाई-तास्य एवं ईसाई-विद्यालयों के विरुद्ध नहीं है। ग्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था बन के लिए एक कामना-मात्र बनकर रह गई, किन्तु साम्यवाद में उसे पूर्ण करने का गंभीर यत्न मिलता है। कोई आदमी मार्क्स के 'कैपिटल' को पढ़कर सामाजिक अन्वय के प्रति उसके अन्तःस्थ रोप एवं बीम-बुद्धियों तथा दमितों को ऊपर उठाने के लिए उसकी सच्ची चिन्ता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। साम्यवाद धर्माचरण की भूटियों वा दोषों पर बिना मया एक फँसता है। बीस मैटिंग मिलते

१ एक अग्रकर्मिण डाकरी में आर्ज देकर लिखते हैं : "हम मार्क्स में दोष ढूँढ सकते हैं, पर वह क्या आँसे है ?—मार्क्स सिवा मार्क्स रिक्तों का टी० (न्यू टेथ्योरि), छोटे धर्मविश्लेष केवलता (धर्मविश्लेष) (सर अन्त) वू और धर्मवाक्यवाच से। —द्वितीय बुद्धि-वर्द्धि आरने की अन्तिम पाठ्यलिपि १९१० 'दार्शनिक विद्वेदी एन्स-वैर' अर् २० १९१४ पृष्ठ १४२ पर उद्धृत।

२ अन्तिम लिखते हैं : "किसी ने अपनी विशिष्ट समोपधि के अनुकूल पूर्ण दृष्टिगत में अन्त प्रयोग की वैशेष पर अन्त के लिए अन्त को मंत्र कर दिया। अन्तों के अन्तिम विचारों के अन्तिम लिखनों को अन्तिम कर दिया। वे एक रहस्यमयी अन्ति के लोग हैं जो किसी सम-अन्त पर—एक 'अन्तःकर्मिण' अन्त पर एक नहीं सकते हैं। वे वा छो 'ईसा के अन्त' को अन्त बना सकते हैं वा फिर ईसा-विरोधी अन्त को अन्त कर सकते हैं। यदि एक अन्त नहीं बनता तो दूसरे का अन्त ही अन्तिम। एक अन्त अन्त के अन्त अन्तों ने अन्त अन्त अन्त अन्त के अन्तों एक लिख है। —'दि एन्त अन्त अन्त अन्त' (१९१०)।

हैं 'सुख्यत' अपने ही सिद्धांतों के प्रति बेवफा एक ईसाई-जगत् के दोषों से ही साम्यवाद पैदा होता है—इसकी उत्पत्ति के पीछे इन दोषों के प्रति गहरा विरोध या रोप है केवल ईसाई-जगत् क ही विरुद्ध नहीं परन्तु—यही है इसका कुशाग्र नाट्य (ट्रेजिडी)—स्वयं ईसाइयत के विरुद्ध जो ईसाई-जगत् के बहुत घामे जाता है।^१

१९४८ में ईसाई धर्मोपायो (विद्यार्थी) के संश्लेष सम्मेलन ने ईसाई-जातिपों से घनुरोध किया कि वे समझें कि साम्यवाद में 'ऐसे तत्त्व हैं जो वर्तमान समाज एवं धर्म-व्यवस्था पर सख निर्भम-रूप हैं'।^२ उस में १९१७ की त्रान्ति का वैयक्तिक स्वतन्त्रता कुसल गरीबों के लिए घबघर एवं राष्ट्रीय प्रत्यमतों की मुक्ति के उद्य के रूप में देना।

उन्नीसवीं शती के सभी उग्र विचारकों में यह एक सामान्य धारणा मिलती है कि राजनीतिक सत्ता हमनकारी और निश्चित रूप से बुरी है। मार्क्स के लिए यह धारणा एवं मुक्तिप्राप्त मोम के हाथ का एक प्रत्य है जो धर्मिकों के क्षोपन में इसका उपयोग करते हैं। किन्तु राजनीतिक सच्य के समय यह एक धारणयन पुराई है। अब धर्मिक इसपर अभिचार कर चुकेगे और समाज क ढांचे को बदलने में इसका उपयोग कर चुकन केवल तभी यह बुराई दूर होगी हमक पहले नहीं।^३

१ इ. इ. सुविस्म धर्मोपायो (१९१८), पृ. ७० १३ पर प्र. जॉन मैकमर लिखते हैं कि धारण में सम्भार एवं प्रत्यभर से भी धर्मिक सत्ता ईसाई है। वह बहने है यदि हम कबनी को एक पार रण दे और बालन के साम्यकारी मार्ग के रूप में धरना मनो बलि कर विचार करें तो हमें बहार धारण होने लगता है कि हममें कोई ऐसी विनिध धर्मिकता है जो धरने का ईसाई करनेधन समाजों में नहीं आई जाती। "य यह अनुभव किए बिना नहीं रह सकता कि साम्यवाद ने ईसाई में बाल्मिक निष्ठा के उस साठण को पा लिया है जिने धर के उमाने में मरिठि ईसाईयत प्रविधरण को पुष्प है। — जिने एन स्तेसाबडी (१९१४) पृ. १९ पुटनोत्र।

२ धर्मोपायो और धर्मोपायो प्रत्यभर।

३ उल्लेख मिलने हैं— 'जब समाज का कोई भी धर्मिकता में लगे जाने क लिए नहीं रह जाता दमन के लिए दलित रहने के लिए ऐसी कोई चीज नहीं रह जाती जो विशय दमनकारी शक्ति का निर्माण कर सके या जिसे के लिए एक राज्य की आवश्यकता हो। समाज समाज के प्रतिनिधिरूप में जब राज्य बनने प्रथम कानून में समाज क नाम संवत्परन के साधनों पर अभिचार कर लग्य है तो वही राज्य के रूप में अपना धर्मिक स्वतन्त्रता भी होण्य है। धर्मिकता की स्मरण का स्थान अनुभव और उत्साह उपक्रम का निरन्तर से होता है। राज्य को समाप्त नहीं किया जाता वह स्वयं सुभाकर भङ्ग जाता है। — ऐच्छी-पूर्णि ३, २ मार्क्स का अनुसरण करने हुए लनिन बहने हैं 'ऐक्य साम्यकारी समाज में जब धर्मोपायो का प्रतिकोष पूर्णतः नष्ट कर दिया जाता है अब धर्मोपायो लूण हो जाती है जब कोई बग नहीं रह जाता है 'धर्म, धरण एभीवृत्त साधन्य निरन्तरन लोभन्य समर्थ एवं मूर्त हो मरता है। और केवल तभी स्वयं लोभन्य भी सुभाकर समाप्त हो जाण्य—उसका समाप्ति इस सत्य सार के कारण होगी कि धर्मोपायो सुभासे मुक्त होकर लोग धीरे धीरे साम्यिक धरन के

धरातलना की प्रवृत्ति घोर गुरुरा की घावस्पर्शता दोनों का घेस बँट्या ही चाहिए। जब ज्ञान की वृद्धि होनी है तभी उद्योग में पूर्णता घाती है घीर तभी मनुष्यों को वे भीतिघ्न एव घाघ्याधिक साधन प्राप्त होने हैं जो उन्हें स्वतन्त्र समाजों के सदस्य के रूप में जीयन बिताते का घबधर देने हैं। तभी हिंसा की घाघ्यता एव घोपण का घस्त हो पाता है। उद्यम का मोघ मानघाया की स्वतन्त्रता की वृद्धि के लिए है। मार्क्स का घाघरस तमात्र ममान मोनों का तमात्र है जहा एक भी घाघमी दुगरे पर घानी हृष्या लावने के लिए कमप्रयोग नहीं कर मरता। उसने कुर्बुया (पूजीवादी) मोरतता की घाघोचना इनलिए की कि ऐरो समाज में मनुष्य के घाघरार एक मनु घाघ्यमन के हाव में मुबिघारण बनरर रह जाते हैं। केवल एक बर्गहीन समाज में ही प्रत्येक मनुष्य इनना स्वतन्त्र होना दि घेघ-मघ्ययी घपने बिघारों के घनुमार घपने जीवन का सघोलन उपयोग कर सकेया। घरि समाज की भीतिक संघदा उन सोनों द्वारा तमात्र के हिन के लिए त्रियन्तित कर सी जाए जो उसके प्रति उतररणी हैं तो ऐसे समाज का निर्माण संभव है।

हमे साम्यवाद के तमात्र-दर्सन में घीर साम्यवादी देशों द्वारा गिद्वान की पुति के लिए घपनाई गई प्रघानी में भेद बरमा ही चाहिए क्योंकि कोई भी राज नीतिक मत अब बहु घाघरण में पाता है तो घपरिबन्धित नहीं रह सकना।

यह कुर्बाय की बात थी कि मार्क्स ने घनुभव किया कि नये समाज की स्थापना एक दीर्घकालिक उद्य एव समझौता रहित संघर्ष के बिना नहीं हो सकती। १८४८ के कम्युनिस्ट घोषणापत्र के घनुसार 'साम्यवादी इस तथ्य को घिघाने से बूधा करते हैं कि उनके उद्देश्यों की पुति समस्त वर्तमान सामाजिक रिघतियों का बलपूर्वक निराकरण करने से ही हो सकती है। इसीलिए मार्क्स ने घाघरक एव हिंसा का उपयोग करने को बडाबा दिया। जो सोम इस घाघरस को नरम घीर कम घ्यघा-पूर्व तरीकों से प्राप्त करना पाहते वे उन्हें मार्क्स स्वप्नदर्शी तथा घपने को बिघान कममत कहना बा। यह उद्य एव उरघार कारबाई करने का पकपाती अतिघारी घा बबकि समाजवादी मुघारक बा। बैज्ञानिक को स्वप्नदर्शी सं घलग करनेवाली बीज उसकी अतिघारी कमन थी। किन्तु हम किसी हिंसाक शान्ति के बिना भी एक बर्गहीन समाज की स्थापना कर सकते हैं। किसी शान्ति की प्रकृति का निरघय उन घाघदियों द्वारा होठा है जो उसके नियन्ता होते हैं। मार्क ऐघटन उद्य मुघारक नहीं वे। उन्होंने अन्ति को प्रघति की घाघुनिक प्रघानी' कहा है। इसका कार्य

कम प्रारम्भिक लिघनों का प्रसन्न करने के अन्वय होकारने कि-ई इस लिघनों से कपते रहे है और कि-ई इसरो बर्ष से घुमिठनों के रूप में दोघराघ बरत्र रहा है। उन के बोले किना किसी घोर-उत्कर्षती के, किना किसी घघीनता की ककण के, ककरीकी के लिए ककण कर जल बंध के बिना, किने रान्न कसे है, इन लिघनों के अन्वय हो करगे। किन्तोकर दिघ, 'सिन्ध देव शिन्ध देव' (१९४७), इक (१०)।

है 'पुस्तक का बोझ हटा देना' और 'दुनिया को मृतों के शासन से बचा देना'। हम स्वतन्त्र मानिसों बन सकते हैं। सामुहिक साम्यवाद की प्राधिकारवादी या सर्वनियन्त्रणवादी प्रकृति समुहार प्रसंस्कृत बल्कि यहाँ तक कहा जा सकता है कि मार्क्स के मत के भी प्रतिद्वन्द्व है।

हिंसा तभी आवश्यक होती है जब सुविधाप्राप्त बग कानून के शासन का त्याग कर देते हैं और हिंसा का आश्रय लेते हैं।^१ पश्चिमी यूरोप के बुरुज्या (पूजीवाणी) प्रजातन्त्र शक्तियों को उससे ज्यादा भयानक वे रहे हैं जिसका उन्हें दुनिया के और भागों में कभी प्राप्त रहा है। आज जिन देशों ने संसदीय लोकतन्त्र को अपना लिया है वहाँ शक्तियों की घबरेला प्रत्येक स्थानों की घोषणा ज्यादा अच्छी है। वे उससे ज्यादा अच्छे आशाओं में रहते हैं ज्यादा अच्छे साथे हैं ज्यादा अच्छे पहनते हैं, उससे ज्यादा शिक्षित हैं जितना वे कभी थे। जब तक सम्पूर्ण श्रेणियों के न्यायपूर्ण दावों को स्वीकार नहीं किया जाता तब तक कोई समाज स्वतन्त्र एवं सुरक्षित नहीं रह सकता। जब मार्क्स एवं एंजेलस तर्क से तब बुरुज्या लोकतन्त्र उससे कहीं कम समझौसी (प्रोलेटारियन) से जितना वे आज हैं।

साम्यवादी जतने ही बुरे विश्वास पड़ते हैं जैसे बरे से बुरे धार्मिक कट्टर मतवादी हैं—वे जो सगरे अपने धर्मग्रन्थों की दुहाई देते रहते हैं। यदि वे अपने बंध दिमागों को धीम से तो धनुमन करेये कि उनसे इस विश्वास के लिए कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है कि समाजों के सांस्कृतिक एवं धार्मिक ढाँचे केवल उत्पादन की शक्तियों के स्वरूप से निर्धारित होते हैं, या यह कि मूढ़ के प्रमुख कारण धार्मिक हैं धर्मका समाजवाद विविध रूपों से जिनमें से हरेक का प्राधिकारवादी सर्वसत्तावादी होना जरूरी नहीं विकसित नहीं हो सकता। आज की बदमती हुई दुनिया में हम एक कटोर कट्टरता का समर्थन या बचाव नहीं कर सकते। हमें वैज्ञानिक, वस्तुवादी सुमे दिमाग का एक अपने दृष्टिकोण तथा पट्टे में सर्वनाशक बमना ही पड़ेगा। हमें संसदीय लोकतन्त्रों की प्रगतिशील प्रवृत्तियों पर जो सुविधाप्राप्तियों की घोषणा शक्तियों के लिए धर्मिक अनुकूल हैं विचार करना ही पड़ेगा। यह कलबा देना सम्पूर्ण शक्तियों के विरुद्ध जाना है कि धर्मिकबर्ग जिना लड़ाई के अपने अधिकारों को नहीं प्राप्त कर सकता और जोर जबदंती ही एक ठोसी बाई है जो नये समाज को जन्म देना चाहती है। जो साम्यवादी मानिसकारी समाजवाद का

१ एंजेलस लिखते हैं 'इस मानिसकारी विश्वास के लिए के लिए जिनकी लक्ष्यों की घोषणा बान्नी शक्तियों पर उपाय कर कर रहे हैं। शक्ति और कानून का सम्बन्ध एक-दूसरे की बात उत्पन्न बान्नी शक्ति के बीच सम्बन्ध होते जा रहे हैं। वे घोषितान्त वेद के शासन में निरुत्तर होकर बंधा है—वेधिका ही हमारी मूर्ख है एक हम हम वेधिका के स्वतन्त्र में एक मान-वेधिका बर्ग दुहाई बनेज प्राप्त कर रहे हैं और जैसे बंधा है जैसे लडा बने रहे हैं।'—बर्ग एंडेंगार्ड 'जर्मन मार्क्सवाद और एंगेलस कम्प्यूनिज्म' (१९२४) पृष्ठ १९९।

समयन करते हैं य वह भूल जाने दे कि मांतिम्य वांछितवा भी सम्भव है और किसी मतवा के लिए सामाजिक मार्गों के भय धाता एव पूजा वा दुस्प्रयोग करना बिबिध-सम्भव नहीं है।

यद्यपि साम्प्रदाय सामाजिक ग्याय की समस्याया का स्पष्ट बयान करता है किन्तु उसने व्यक्ति के अधिकारों की उपेक्षा करके पाठक मूल को है। यद्यपि सम्पूर्ण समाज-व्यवस्थाओं को दिव्यव्यापी सामाजिक परिवर्तन की धारण्यता की बुलौती स्वीकार करती ही पढ़गी किन्तु उन गवनों व्यक्ति के प्रति ग्याय एवं उपायता का व्यवहार करना ही मांतिम्य। सर्वप्रथमकारवार्त्त व्यवस्थाया में व्यक्ति के अधिकारों-अन समत एव दसन हाता है।

वेबग इसमिण कि हमारे महा एक बर्भहीन समाज है यह नहीं गठ होया कि सब माग सजातीय वा समकृतवापी है और उनके हितों वा प्रतिनिधित्व एक बदन द्वारा किया जा सकता है। एकदलीय व्यवस्था का निर्माण उन दो प्रकार की विपयताओं की रसा करने के उद्देश्य में हुआ है जो पैदा हाती हैं और अपने को दृढ़ करती जा रही है। हम में समाज के गय बुलों के प्रीथ सामान्य धातृत्व वा विनास नहीं किया है। महा भय भी सामाजिक बाई वा ग्याय हैं। बारसाही मुग की भांति भाव भी बहाँ ग्याय पर एक सुविधाप्राप्त्य बय है और नीचे की ओर ऐस भविष्य एवं किसानों के समूह है जो स्वतन्त्रता एक ग्याय के धर्म में वेगबन है और अपना विनास करन के साधना से हीन है। यह एकात्म (मानोमिबिब) — एक ही पत्थर में निर्मित—राग्य है जहाँ सब प्रकार की वांछितवा—धार्मिक राजनीतिक यहाँ तक कि धार्मिक भी सामाजिक परिवर्तन के सिगर म जाकर बिनीन हो जाती है जहाँ बोड़े-अ धादमी सब कुछ जानने हैं सब कुछ करते हैं और सब निर्भय कर भते हैं। यह स्थिति उस मानवीय धारण्य की पूर्ति नहीं करती जो मार्क्स की दृष्टि में वा। यदि हमें बिस्वात बिलाया जाता है कि जीवन एक बर्भहीन बुधंटा है और हम मोक्ष धपार, ठडे कासे घंटरिस में जानाबदोस की तरह भूम रहे हैं, हमारी मानवता किसी भी प्रकार के भाव वा महत्त्व से रहित है तो हम अपने धारिक अधिकारों के हीन लिए जाने की कोई परबाह नहीं करते।

कम्पायवापी राग्य अमप्रधान (प्रोसेलेरियन) हो सकते हैं। इसी प्रकार साम्यवापी राग्य बुर्जुया (पूजीजीवी मध्यवर्गीय) हो सकते हैं। पुराने बिनेय धपना महत्त्व कोते जा रहे हैं। संसदीय मानवक काण्ड द्वारा निर्दिष्ट दो सिद्धांतों की पूर्ति करते हैं—जिस वामून को हम अपने लिए बनाते हैं उनका पालन ही स्वतन्त्रता है और किसी भी मनुष्य को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करना नैतिक दृष्टि से गमत है। किसी एकात्म (मानोमिबिब) राग्य में इन सिद्धांतों का रक्षण नहीं किया जाया। यदि साम्यवाद को स्वतन्त्रता एवं मानवता के धन सिद्धांतों के प्रति लक्ष्णा रहना है जिनकी बोधना वह करता है तो सासन-प्रगापी

में परिवर्तन करना आवश्यक है। जहाँ हम लुप्त एवं विहित विरोध को धारणा नहीं देते ता मुक्त धारणात्मक उठ सके होते हैं। व्यक्ति की धरणा सबसे प्रापतिजनक और भयावह है। एक भावनी धारणा मंत्री और कम बंदी हो सकता है। वह एक प्रमाण द्वारा सम्मानित और दूसरे द्वारा धरणादुत होता है। ज्यों ज्यों जीवन-मान बढ़ता जाएगा और लोग विशिष्ट तथा अपने लिए स्वयं मानने योग्य होते जाएंगे स्वों-स्वों के एकदम राज्य के प्रति धारणाबनापूर्व होने जाएंगे और उसकी रक्षा करने में प्रसन्न होंगे।

सोवियत रूस में एक संभावनात्मक विश्वास है। वर्तमान मामलों को इसका पता है और विरासत में जो चीज उम्हारे प्राप्त की है उसकी मर्यादा का ध्यान रखते हुए, व्यक्ति के अधिकारों के रक्षण एवं निरक्षण स्थाय के क्षेत्र में सुधार के लिए वे सज्ज हैं।

साम्यवादियों में व्यक्ति के हार से जो दृष्टिकोण ग्रहण किया है वह उसे गुमान या कठमूर्तनी बना देता है। हिरोस के समुदाय व्यक्ति की पतन इच्छा उसकी मर्यादा इच्छा के सामने जो उसकी राष्ट्रीय सम्पत्ति सन्निहित होगी है प्रपचार्य है, महत्त्वहीन है। हममें राष्ट्रीय संस्कृति को राज्य की इच्छा में एक कर दिया गया है और राज्य की कार्यवाही इतिहास की इन्डारमकता के नियमों से प्राणित होगी है। मार्क्स ने रूस विचार का उभट किया है और इसके लिए दूसरे स्थाय प्रस्तुत की है। वे कहते हैं 'मनुष्यों की चेतना उनका परिहार का निश्चय नहीं करती बल्कि उनका सामाजिक परिवार उनकी पतला को निर्दिष्ट करता है।

समाज-सुधार को अपनी चिन्ता में मान्य सम्पूर्ण सुराई और संपूर्णता का कारण बना चुकी स्थितियों के मापे सज देना है। पत्नी में मनुष्य की मूर्ति स्थिति चुरी की क्योंकि सामाजिक व्यवस्था चुरी थी। यह एक वर्ग का पतन या जिसमें मानव-जाति का महान समूह केवल इसलिए जी पाता था कि वह उत्पन्न के मापनों के स्वामियों को अपना धर्म देना था और वे स्वामी अधिकों की धारणा प्रारंभों का योग्य करते थे। वे प्रत्येक व्यक्ति का प्राप्त धर्म में सज देना ही देने के विना ही वह जीवित और सामान्य दृष्टि में मान्य रह सके। धर्म सब के धरने उभरण के लिए ल सते थे। यदि हम इन व्यवस्था का हटाकर उनके स्थान पर साम्यवाद को प्रतिष्ठित कर देते हैं तो धनी और गरीब दोनों का महापता करने है। धनी लोग अपनी धरिया प्रमाण स्थाय तथा प्रसम्पत्ता छोड़ देगे और गरीबों से उनके प्रमाण दागता और प्रपचार्य करवाया हो जाएगा।

यह ठीक है कि मनुष्य समाज में बहिष्कार एवं महापत्नी बनना है किन्तु इनसे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि निरा सम्पत्तियों का धरणा सामाजिक हित या स्थाय अधिक महत्त्वपूर्ण है। नीचा बिना चिन्ती हवा और पानी के नहीं जी सकता किन्तु वह ल मरने हुए भिन्न होता है। हम महा अधिकों के लिए धरणा सामाजिक प्राणी-मान नहीं है। मनुष्य की धरणा हृदय एवं परिहार में

को कुछ होता है वहाँ जो बनता और बिगड़ता है वह मनुष्य के जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। हमें आत्मा की छिपी गहराइयों की जिनसे सब प्रकार की महान कला, विज्ञान और साहित्य का जन्म हुआ है, का खोजनी ही चाहिए। मार्स के लिए व्यक्ति समाज से अधिक महत्वपूर्ण है और वही समाज सर्वोत्तम मुद्रित है जिसमें प्रत्येक सदस्य एक परिपूर्ण एक स्वतन्त्र जीवन बिठाने में समर्थ है। यदि हम इस आधारभूत तथ्य को मुझ से तो हमारी निष्ठा के लिए मोक्ष पदायक है और हमारे सामने जो कुछ रखा जाता है वह संकलित मानवीय धर्म की प्रतिमा-भाव रखे आया।

ऐसी बहुधरी सामाजिक बुराइयों को परिस्थिति की उपज है—महापत, विनी, बोझादी एक पोष्यहीनता। किन्तु सम्पूर्ण बुराईया आधुनिक सोच से ही नहीं उत्पन्न होती। मानव-हृदय के आवेग, मानवीय बेवना के प्रति शिष्टर उदात्तता दूसरों पर अधिकार करने की कामना बुराई के ये मूल हमारे निर्माण में ही बने-बिसे होते हैं। मौलिक पाप का सिद्धांत धर्मवेत्ता का आविष्कार नहीं है। मानव-प्रकृति की सहज कठोरता को साक्षात्करण के परिणतों से बच में नहीं किया जा सकता। मार्सवादी भाषा पूर्णतः भौतिक है और रहस्यवृत्ति से सर्वथा दूर है। मनुष्य केवल समझने और निर्माण करने के लिए ही नहीं है बल्कि मार्स एवं प्रशंसा करने के लिए भी है। विज्ञान हम धर्म से दूर है, दृष्टि नहीं बनते हैं धर्मशास्त्र (संस्कृत) नहीं। मनुष्य केवल देह और मरिचक नहीं है वह आत्मा भी है।

व्यक्ति के नाम पर ही मार्स ने पूजीजीवी मध्यवर्गीय कुर्बुघा समाज की आलोचना की। इसलिए पूजीवादी समाज को अपनी सुविधाएँ सुरक्षित रखने की आवश्यकता की दार्शनिक अभिव्यक्ति के रूप में व्यक्ति के अधिकारों की बात करते मुनकर आश्चर्य होता है। सम्पूर्ण प्रगति व्यक्तित्वगत प्रयत्नों से ही होती है। निष्काम अधिकारों का मूल स्रोत व्यक्ति ही है। यदि यह स्वतंत्रता न प्राप्त होगी तो प्रगति भी रुक जाएगी।

जब हम साम्यवादियों पर दोषारोपण करते हैं कि उनकी सरकारें लाखों मनुष्यों का कठोर धम का दृष्ट दे रही हैं तो वे आरोप को व्यर्थीकार करते हैं, किन्तु फिर यह कहकर स्वीकार कर लेते हैं कि यह संश्रान्तिवाद की एक कठोर आवश्यकता है। हम प्रश्नों को ताकें बिना धामनेत नहीं बना सकते। पर यदि विश्वास करते हो कि वहाँ कानून एवं सत्य का सम्मान नहीं है वहाँ सौम्य जन स्वतंत्रता को सहन करते रहेंगे तो वे निरी करुणानास्तु बला का प्रदर्शन करेंगे।

साम्यवाद का एक बाधा यह है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय है। यह कहता है कि विभिन्न राष्ट्रों के अधिकारों में उससे अधिक हित-साम्य है जितना एक ही राष्ट्र के विभिन्न वर्गों में है। हमारा तथ्य कोई धूमिल प्रस्पष्ट विश्व-नापरिक्रमण

नहीं है। किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समाज की रचना राष्ट्रों के ही आधार पर होगी। सामान्यतः पिछले दो महायुद्धों में शर्मिन्हों ने अपने-अपने देश को बाँसा नहीं दिया। जब उन्होंने जन भावना में भाग नहीं लिया और बाहरी धारणा को स्वीकार किया तब वे देशद्रोह के जुम में वलित हुए। जर्मन साम्यवादियों पर नाज़ियों की सरसता पूर्ण विजय का कारण केवल उनकी निष्ठा प्रणाली को नहीं माना जा सकता। यह इसलिए भी हुआ कि लोगो ने समझ लिया कि जर्मन साम्यवादी विदेशों से निपटित हो रहे हैं।

नातस्की और स्तालिन का विरोध साम्यवाद की अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति को भङ्ग ही था। नातस्की अनुभव करते थे कि रूस में मार्क्स समाजवाद होने के पूर्व कम से कम कुछ रखा उन्नत पड़ोसी देशों में शक्ति प्रवृत्ति का होना आवश्यक है। इस विचार के विरुद्ध स्तालिन का कथन था कि चाहे और पड़ोसी देश पूर्णतः जीवी बुर्जुआ व्यवस्था वाले हों तो भी एक देश समाजवादी रह सकता है ही इतना है कि समाजवादी देश किसी पूँजीवादी विश्व में सुरक्षित नहीं रह सकता।

यदि कतिपय ने अपने ऊपर सवे भार को बिनाश भाव से सहन कर लिया तो यह केवल इसलिए कि उनका विश्वास दिनाया गया कि यदि रूस अस्ती शक्तिमान नहीं हुआ तो विदेशियों के आगमन का शिकार हो जाएगा। एक समाजवादी राष्ट्र के निर्माण में जनता की देशभक्ति भावना का उपयोग किया गया। फिर साक्ष्यतः रूस एक युगोस्लाविया के बीच कोई वैचारिक अन्तर नहीं है। युगोस्लाविया अपनी स्वतंत्रता का सम्मान करता है और अपने को किसी विदेशी राज्य के उपनिवेश के रूप में बरते जाने से इन्कार करता है। साम्यवादी राज्य अपने को बराबर, न कि अधीनस्थ रूप में बहते जाने की इच्छा रखता है। चीन में साम्यवाद इसलिए लोकप्रिय है कि लोग उसे विदेशी नहीं अनुभव करते। राष्ट्रीयता जब भी एक प्रथम भावना है।^१ विदेशों से आगत विचार चाहें जितने शक्तिमान और उपजाऊ हों किन्तु उनकी उन्हें भूमि में तभी मुदूठ हो सकती हैं और वहाँ की जनबाधु के अनुकूल ही सजनी हैं जब वे देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। दूसरों से उपहार लिए हुए कार्यन्वय के अनुसार केवल माँग पर, हम समाजों का बिनाश नहीं कर सकते।

यदि हम साम्यवाद के प्रसार का रोकना चाहते हैं तब हमें युग की महत्त्व

१ श्लीमर गिर-बुद्ध में कम के प्रवेश के बाद कैबलररी के आप्रवित्तन ने कहा था : वह अन्वेषण है कि बुद्ध के अस्तित्व होने ही कारणों एवं दूसरे स्थानों में हजारों व्यक्ति प्रियवातों में प्रवृत्त करने के लिए रचन हुए। आगे उन्होंने कहा 'यह ही मकल है कि प्रान्तों परतों की रक्षा और उत्तमे देश हानरानो प्रकाश का कारण सोविपत्र स्थान में जब यह धर्मिक सतिष्पुत्र, धर्मोपनिषि का जो कमी जनता के दरभ में सदा गरीबी जमा रही है, शक्तिमान है।

सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का समाधान करना ही होना। जिन देशों में अटिन सामाजिक व्यवस्थाएँ तथा धर्म-मठन के उन्नत प्रकार विकसित हो चुके हैं वे सामान्यतः साम्यवाद के प्रति इत्थानु नहीं हैं। जो माग सामूहिक कर्तों में पीड़ित है वे उच्छ्वनर बरनुओं की प्राप्ता दिलानेवासे विसो सुधार-आन्दोलन का अनुसरण करने को तैयार हो जायेंगे। यदि कोई उदार परम्परा पहले नहीं स्थापित होती तो वे सामाजिक लोकतन्त्र के इस पर उद्ये विकसित करेंगे। वे सुधारक पूँजीवाद की जगह सोशलिस्टिक समाजवाद की स्थापना करेंगे जैसा कि इर्मनर म है। जहाँ कोई उदार परम्परा नहीं होती जैसा कि कम में नहीं सर्वाधिकारवादी आन्दोलन सफल होते हैं।

धर्म तो चाहता है कि हम मानव की उच्छ्वनर प्रत्या-प्रेरणा-विवेक-सहाय, प्रेम न कि मय स्वार्थ और बुद्धा-को जागरित करें। फिर भी हम देखते हैं कि शान्तिकारी आन्दोलन अपनी जीवन-शक्ति प्रेम में नहीं भूना की उनेजनाओं से प्रकट करते हैं। यह बुद्धा मानव प्राणियों के किन्तो समूह के प्रति सपासित की जाती है और उन्हे बलि का बकरा बना जाता है जैसे यहूदी ईसाई पूँजीवादी या साम्यवादी। यद्यपि साम्यवादी और गैर-साम्यवादी दोनों के सामाजिक जीवन के अन्तिम मध्य प्राय एक-मे है और दोनों साधन एवं माध्य की परस्पर-निर्मरता में विश्वास करते हैं किन्तु दोनों का साधन-माध्य के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में एक मत नहीं है। हाँ दोनों मानवीय मुक्तों की प्राप्ता में ही लक्ष्य का प्रयत्नों का धनुमान मगाते हैं।

धर्म मानता है कि मानव प्रकृति बिलकुल ही विकृत हो गई हो वह सदा अनुधरित की मलाई की प्रेरणा की ओर उन्मुख होती। ईसा की कहानी संपार डार्य निरतिधय धेय-मलाई-के निरस्कार की अस्वीकार की कहानी है। ईसा ने मसे ही पृथ्वी पर स्वर्ण राज्य की स्थापना के लिए अपने शिष्यों को सैनिक बल का नेतृत्व करने से मना कर दिया हो किन्तु ईसाई-राज्य जिन्हे मानवीय विषयों में एक न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित करने की जिम्मेदारी मिली है शरीर-बल का प्रयोग करने से बिरत नहीं किए गए हैं। जो सन्त आत्माओं पर विश्वास प्राप्त कर उन्हें स्वस्थ करने से सम्बन्धित हैं वे हिंसक माधनों का प्रायण नहीं मेल क्योंकि वे साधन प्राध्यात्मिक साम्या की पूर्ति में समर्थ नहीं। इस अपूर्ण अवस्था में मर्या यह सम्भव नहीं कि हम प्राधर्षयुक्तता से मुक्त कर्म-योजना का पालन कर सकें। साम्यवादी एवं गैर-साम्यवादी दोनों प्रकार के राज्य इस विषय में एकमत हैं कि आक्रमण के लिए हमें सैनिक बल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वे यहाँ तक मानते हैं कि आक्रमण के निराकरण के लिए भी हमें अनिर्धार्यत प्राधस्वकता से अधिक वल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मुख्य प्रमाण के रूप में निवयता कोई मर्द भीत्र नहीं है उममें निहित

परन्तु साय यह है कि ईत हरेक की प्रकृति में ही निहित है। हमारे भीतर जा निम्न तत्त्व हैं वही ईतान क प्राथमस्थान हैं। हमारी उत्पीडक व्यसक्तता साम्य वाद के पक्ष या विरोध में हमारी कट्टरता—ये सब ईतान के ही प्रसोचन हैं। मानवता के प्रति हमारा प्रेम छांति एवं सहयोगात्मक जीवन के लिए हमारी बिन्ता हमारे प्रस्वर की देवी ईदरीय तत्त्व है उन्हीकी अभिव्यक्तिवा है। ईदर एक ईतान हम सबके अन्दर लक्ष्यरत है। मानव-हृदय ही जवनी पुनर्जन्म है। "यदि हम कहते हैं कि हममें वाप नहीं है तो अपने वा बोला देते हैं और तब साय हमारे प्रस्वर नहीं है।" किसी भी मानवी संस्था या व्यक्ति में हम बिपुल अभिप्य पाप-क्रियाशील जान-बुझार किया गया पाठक पाप-मही पैरा सकते। हमें समनी घसावधानी सहकार जानाकी घारासा अभिमान शीवता मूर्खता के बर्तन होते हैं। हम और हमारे वापु सब इन कृटियों के विचार हैं।

ईसा के तीन प्रसोचनों के संघर्ष में विचार करें तो साम्यवाद की अपवांठता स्पष्ट हो जाएगी। ससार के घबिकांसा कम रोटी तथा मौक्तिक सुरवा की बिन्ता में व्यस्त रहते हैं। यदि ईसा किसी धार्मिक शक्ति के नेता होते तो सोप उन्हें स्वीकार करते किन्तु मनुष्य केवम रोटी के सहारे शीवित नहीं रहता। यदि उन्होंने कमत्कार दिखाए होते तो वे समूहों की मक्ति प्राप्त कर सकते थे किन्तु वे अपनी कमत्कारिक घवित क प्रदर्शन से शीव को घाकपित करना नहीं चाहते थे। यदि उन्होंने हिंसा का सहारा लेकर इस दुनिया के साम्य को पराभूठ करने की स्वीकृति दी होती और इस प्रकार मानव-जाति की एक बहान समार में परिवर्तित करना चाहते तो बहुसंख्यक जनता उनका अनुपमन करती। उन्होंने घवित की पूजा नहीं की म हिंसा को स्वीकार किया। उन्होंने मौक्तिक सुखों धार्मिक घकीनता या अन्धविश्वास और विवक-प्रभुत्व पर मानवार्थमा की स्वतन्त्रता को लरपीह की।

साम्यवादी समाज में इसी आतशरामा या मानवी अन्तःप्रेरणा को कोई घबसर प्राप्य नहीं। जब हम बल में सम्मिश्रित होते हैं तो बलपठ एवं समूहगत भावना धावरवक भाङ्गाव आन्तरिक शक्ति पक्ष अपनी सार्थकता की एक कूटी अनुभूति प्रदान करती है। हम बल के विषय में भी उसी प्रकार उत्तेजित हो उठते हैं जैसे लड़ाइया के विषय में होते हैं। यह हृथें एक ऐसा सामान्य या सर्वनिष्ठ कार्य प्रदान करता है—एक ऐसी बाहरी चीज बैठा है जिसके लिए हम भी सकते हैं और मर सकते हैं—बह है एक मय धार्मिक जीवन का भाङ्गाव एक मये परमपुङ की बीर भावना। यह छांति किसी आन्तरिक शक्ति का परिणाम नहीं बरन् एक मरय क प्रति आत्मसमर्पण का परिणाम है।

साम्प्रदाय में सत्यानुसरण के लिए बहुत कम मुनाइया है व्यक्तिगत सच्चाई और साम्प्रदायिक पूर्णता के लिए कोई माभावम नहीं मनुष्य-जीवन की धर्म रक्षा के प्रति कोई निष्ठा नहीं। राजनीतिक या धार्मिक किसी भी प्रकार का सर्वाधिकारवाद हो उसमें साम्प्रदाय के बीच छिदरे रहते हैं। कुछ समय के लिए वह मने ही मनुष्यों के मन में मय संगम एक प्रतिनिधित्व की भावना प्रेर कर दे परन्तु कोई स्थायी परिणाम नहीं पदा कर सकता। यह तभी तक सुरक्षा प्रदान करता है जब तक दूसरे प्रभावा के प्रति हमारा मानम-बपाट बन्द है। हमारे मस्तिष्क एवं धर्म-प्ररणाएं चाहे जितने धूम्र हा किन्तु ब सदा के लिए उस बुद्धि की सामोपनात्मक क्रियाशीलता का विरोध करने में सफल नहीं हो सकते जो प्रत्येक मनुष्य के विषय में प्रान करनी है कि क्या यह मय है और जो प्रत्येक पुरोहित एवं अधिनायक के बारे में पूछनी है कि क्या ब साव्यक है। व्यक्तिगत सच्चाई पर साम्प्रदाय का प्रतिवाय परिणाम हागा—साम्प्रदायी निष्ठा का हान।

हम धर्म कायं म चाहे जितन कुाम हा हम धर्मने जीवन में चाहे जितने धाराम स हा साम्प्रदायी मोक्षम म हम धन्दर म मालोपते हैं। कभी-कभी यह मभाव पूछा जाता है—क्या देहात्मक के बाद भी धारामा जीवन रहनी है? इस प्रश्न का उत्तर चाहे जा हो पर इसम तो कोई सन्देह नहीं कि जह-धरती जो विद्वान् रुना है तभी धारामा प्राय मर चुकी होता है।

साम्प्रदाय का दूसरा प्रभाव दाप यह है कि जबकि धार्मिक साग उनका साधारण जो भी हो विद्वान् करते हैं कि मनुष्यो-गहित सम्पुत्र मनुष्या के प्रति प्रम भाव होना चाहिए साम्प्रदायी मनुष्यों के प्रति पूजा और धारण निरूप्य व्यवहार करने का उत्तमन धर्म है। धर्म एक सावर्गिक मराधार का भी हो ईश्वर का प्रतिमा या प्रतिपत्ति है। धर्म महान्य म साम्प्रदायिक प्रम सावर्गिक है। साम्प्रदायिक धर्मों ने भी मनुष्या का दो मनुष्यों म विमत कर दिया—यहूदी एवं जेटाइन ईसाई एवं ईसाई। इन्होंने निष्ठा म गननामा के प्रति मंथप एक पूजा का प्रणार दिया। इसी निष्ठा पर साम्प्रदायी भी छात्र कीटा प्राणा में विमत करने हैं—एक जो उनके प्राणे ममान प्रकाश में है दूसरे जो धर्मपटा में है। हम धर्म पराहित करना ही हागा और उनका साधना कर देना होगा—यह दृष्ट-धर्म्य और कुर है। जब मात्म पुत्रीका पूत्रीकीकी कृति की निष्ठा-करता है तब वह साधारण का भीति के मावर्गिक मान को निष्ठा करता है—धर्मपू पूराबाद मनुष्यों की मानवता रहित कर देता है उन्हे मनुष्यों म धर्मपू म कवल धार्मिक धर्मि के मर-रूप में बदल देता है। धार्मिक धर्मप की निष्ठा करने तथा ममाय

के समाजवादी शीर्ष की माग करने में मास्मवाद एक ठोके मान को ग्रहण करना है जो प्रत्येक के लिए बहिष्कृत है। यदि एक समाजवादी समाज मनुष्य का समाज एक का एक पुरा बना देता है तो मास्मवाद को हलकी भी निगम करनी पड़ेगी नहीं तो उनके पुरावाद की निन्दा करने का कारण भी तय हो जाएगा। मास्मवादियों के लिए यह गोपना कल्प है कि क्रान्तिवादी युवा हैं और मजदूरों के पक्ष में हैं। ये लोग मनुष्य के अस्तित्व को महत्व देते हैं। यह हमारी महत्वाकांक्षा है कि मनुष्य समाज को एक मानवीय जाति में बदल दे। पर जो बाद क्रान्तिवादी को पर्यन्त का विद्रोह बनाकर छोड़ देती है वह है मानव-जीवन की परिचय की अज्ञानी मजदूरों एक पक्ष करने की उनसे बौद्धिक एक जीवन मनुष्य को, तथा उनसे प्रत्येक की मार्क्सवादी महत्वाकांक्षा का अस्तित्व।

मास्मवादियों को अनुभव करना चाहिए कि मास्मवाद की रचनाएँ एक विचार ऐतिहासिक मनुष्य में निगी गई थीं और उनकी लापरवाही मजदूरों के लिए नहीं है। बुद्धि परिष्कृति और मनुष्य में व्यक्तित्व परिवर्तन हो गया है प्रजाती में भी तीव्र परिवर्तन व्यक्तित्व है। जब दोनों प्रजातियों में तीव्र परिवर्तन हो जायें—
 मास्मवाद में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मजदूरों हो जायेंगे और मास्मवाद मनुष्य में तथा राष्ट्र राष्ट्र के बीच ग्याप के लिए मजदूरों का नैपथ्य हो जायेंगे—तो बलमान मनुष्य समाज हो जायेंगे।

७ सवसतापार

जब धन का स्थान बढ़ता से लेती है तब वह बढ़ता बेचन आक्रामकता चाहती है। नतीजा की कामना के लिए मास्मवाद का कोई धर्म नहीं। पारिस्थितिक निष्ठा के साथ पारिस्थितिकतामय विद्वत्ता की बुद्धि विमान के धर्म को पानक कह कर हटा दिया जाता है। हमें मूल चाहिए और हम उन्हें तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक उन परम्पराओं का धारण न करें जो हम किमी पवित्र धर्मग्रन्थ या स्थापित चर्च द्वारा प्राप्त हुई हैं। सामाजिक पारिस्थितिक के युग में पारिस्थितिक धर्मवाद की प्रजाती की जाती है। पुण्यता का लोप हो गया है तथा धर्म की बीज रूप में है। मानव-जीवन का युद्ध भी प्राप्त बहिष्कृत नहीं है। मिला ईश्वरीय बायीं के जो तब भी बच रहेगी जब धर्म के मनुष्य पदार्थ बुद्धि हो जायेंगे और आकाश की पवित्रता की प्राप्ति मनुष्य लिया जायेंगे। हम मानविकता मान्ति और कहा का मजदूर हैं? वह के हम छोर पर जहा युद्ध और युद्ध की प्रपञ्चा। बग्गी-बग्गी तथा हाइड्रोजन बमों का कामना है जब कोई जाना नहीं है तब हम अपना बिद्वान एक ऐम राज्य पर जो स्वयं में है और एक ऐसी प्राप्ति पर जो बहा सुरक्षित रूप में से जाने का विद्वान सेता है केंद्रित करने का बाध्य है।

जब हम एक एकमेववादी मनुष्यवाद का ग्रहण करने हैं तब हम स्वतंत्र

घारमाघों को जन्म नहीं दे सकते बरन् कट्टरतापूर्ण स्त्री-पुरुषों को ही प्रदा कर सकते हैं। एक ऐसी शता के लिए यज्ञ जो स्वतंत्र घोष का वजन करती है, स्वयं धर्म का एक प्र-प्रबिश्वास में बाँस देती है। उदाहरणतः मामनों की नीजिए। उनका बिश्वास है कि पाममीरा न्यूयार्क के जोसफ स्मिथ के यहाँ एक दबडूत का प्रागमन हुआ। बेबडूत ने उन्हें मुनहमी तस्त्रियों का एक संट दिखाया और बताया कि कोमम्बस के पूर अमरीका के निवासी यहूदियों के बंध में पैदा हुए थे। इतना ही नहीं उन्होंने एक जोड़ा मुनहमे चरमे के सहारे उन तस्त्रियों को पढ़ भी दिया। इस चरमे ने उन मुन्दर हिब्रू लिपि को अरबी अक्षरों में बदल दिया। उसमें एक ही बार भगवद्वाची का प्रकाश हुआ और उसीम सम्पूर्ण जीवन की समस्याओं के पूर उत्तर, एक दल एवं एक नेता सब कुछ मिस पाते हैं।

जब हम बिबेक का गिरस्कार करके निष्ठा की मांग करते हैं तब उन अधि नामकों के हाथ में बसते हैं जो हमें बिश्वास करने के लिए निश्चित धर्म और प्राचरण-अहिता देन का दावा करते हैं। काल बार्थ ने १९३८ में प्रॉक्सफोर्ड में एक स्याख्याम दिया था। उसमें कहा था 'जमनी के ईसाई चर्च को प्रादेय दिया गया था कि जो कुछ १९३३ में हुआ उसे वह बैबी प्रकाश के रूप में मांग से और उसे भविष्य में उतनी ही गम्भीरता से पहण करे जितनी गम्भीरता से वह ईसा मसीह में ई-बर के प्राचरण की बात मानता और कहता रहा है।' 'यूकि एक सर्वाधिकारवादी धर्म न तो उदार हो सकता है न औकतांत्रिक इसलिए वह सरलता से राजनीतिक सर्वाधिकारवाद का महायक और बोस्त हो जाता है।' ये संन्यतावादी धर्म स्युनितपद स्वातन्त्र्य और निजो लुचाई के मुख्य की परवाह नहीं करते।

भगवद्गीता का प्राचरण और की प्राचरण-अहिता के प्राप्त के इन्कार करने के साथ होता है। उनका कहना है कि उनके प्राचरण का निगम उसीके द्वारा जाना चाहिए। अपना ही त्याग करने की प्रादा प्राचरण होने पर वह समाज का त्याग करने का आधार था। धर्म को कंस अन्वयतवग या सता के प्रादेय

१ १९४३ में कार्बेरा विविध देव्य ने लिखा था "म सम्मत्तु है कि धर्म को एक सर्वप्रदायी सत्य सब निभाव देते तो मांग ही सर्वप्रदायी अर्थात् के साथ नहीं होने को सत्य है। देविण कद प प्राचरण की बुनक तादृ अद्वितीय देव्य (१९४८) १ ४११। समझने के लिए मैं काल बार का काल का बन्धन या इस धर्मवनी की ओर इशारा है मेरे लिए का विश्व की है इतराण बुरी अति है। — 'द मायेव धार गद (१९४०) १ ६। लुकास अमराका के एक ईसाई कथरी ने ही १९४५ में इस बारे के साथ कृ कल्पन कर्णों की गिर में बनाया था : "माटेरेट्ट इतराण और सोल की प्रमुण। — दन्यार कर्णा 'दिव्य विद्विका (१९४४), मया १३ में कृ कल्पन कल्प' पर लेग देतिर।

पर काम नहीं करता था। उसे अपनी ईमानदारी की रक्षा करनी ही चाहिए और वह देगना चाहिए कि उसके निज उगरे अपने निज ही। मुखात्मकता में किसी ईमानदारी का मासरेग भुग भोग की ध्येया धरिता धरितामान होश है।

इन विषय पर धारुनित धमर धम लम्गाधरनी का ई तीरेग घाटि र्धन इतिवृत्ति है। यह धेन इतिवृत्तिर सग-सग रचना का धामर पूर्ण धात्रागतन का मुम प्रदान करता है। उनके स्वरूपता का बोध यह रहकर ह्य मेना है कि यह उनको धरिता के बाहर की बीज है। स्वरूपता एक धाम की भाति है इमनिल मनुष्य का उग दूगरे कथा पर स्वरर धमन होना चाहिए किनु यह उसे अपनी धामरता के बाधन नहीं करता चाहिए। धामरधरनी के धिा धामरा की स्वरूपता का त्याग ग्या-धरणी प्रमाभन है। गरेगतायार इमी ईगा बिगाय के निष्ठात पर धाधिन है। धर्मतिाध बिदाग धिान की धटा करन है। ये बिदाग नहीं करते। गर्भलतायारी धमी म स्वय ही उनके धाग का बीज मिहित होता है। कुछ लभय तरु के मानर बन से धम सगर धीर धनि-धाना की धाधना धन ही दूर कर के रिन्नु मे स्वापी परिधाम नहीं धेरा कर धरन। के धभी तरु हम मुरगा दे सकते हैं जब तरु हमारे धरिताध धम्य प्रमाध की धीर उग्युग नहीं होने।

धामरभाधारी धम धीर धनारमधर होनो परधर धनिधम धीरों पर रिधन है किन्नु धीन धधरिधरग के धिरार है। के स्वरुत मानर उतररणी धनिधेना की धधरिधर करने है। के स्वरुत प्रनुति (इनीतिधेतिर) का ममात कर देने है धीर मनुष्य को उतरनी धानरता से र्धिन करने की धेन्य करत ह। धरिधरिधरधर के धाधनित धनों म तो धिर धाधे ध धामिध ही धा गधरधान धानर-धरिधयो की धम धधो के धय में धरिधनित कर धने की धुलि है। जा उदीधन को धरुण करने है—बधुनतिधा जिहे मधधों के धाधन पर त्याग एक कल सहने के धिा धिधर धिया धाठा है।'

८ साय एव विन्वास

हमने धर्म के धिन धिरधों पर धिधर धिया है उनठे हमारी धिता दूर नहीं होती बयोकि धे हमें एक संधनित पून एक धाधनीतिक धग एक धम-धमप्रधय का धाधय धनार हमारे धय का धसा धीठ धैठ है धीर हम साधम प्रधान करन है। धधय एवं धिराधा से धिरधर एव धियारधर लधय धारा ही धनपर धिधय धाध

१ रिन्नु धेना धरिधर ; 'रिन्नु धेना धे धेनेधुधनी लध धी धेतिध।

२ इधधे धे धे लध लध धे लधधर की धाधरा धे तो लार् धेधर धे धरा धे कि धुधे धनध धे लरी लधर कि धेने धरि धधना धर्म धरतधे है तो धुधे धनना धर्म धधे धरतना धधिध।'

की जा सकती है। जब हम एक बीड़ के घन्तघट हाठे हैं तो मध्याह्न का पुरी तरह घोर स्वतन्त्र रूप में सामना करनेवाले मुक्त मानव नहीं रह जाते। हम एक एक युग में रह रहे हैं जो अपनी घनामता के प्रति तीव्र रूप से चेतन्य हैं और मनमानी क्षतिपूर्तिवा की घोर सभ्य हैं। जब हम चेतन्य (नर्सस इन डाउट) की सीमा का स्पष्ट करनवाले तीव्र धारमपरीक्षण में पीड़ित हाठे हैं तब अपनी प्रकृति को विवरता प्रदान करनेवाली किसी भी क्षति का स्वागत करने को तैयार हो जाते हैं। हमारे युग के लिए जो कोई किसी प्रकार का साधारण देना है हमारी पूजा के लिए मूर्ति प्रदान करता है उसीकी बात हम मुझने समझते हैं। कोई सामयिक विवृति इस सीमा तक नहीं जाती कि उसके अनुयायी न प्राप्त हो सकें। कोई काम इतना मूर्खतापूर्ण नहीं कि मनुष्य उसके लिए जीवन देने को तैयार न हो। हमारे युग का संतापकारी दुस्मय इनका अन्तर्भाव नहीं है, बरन् इनका विद्वान्त है—अन्तर्विद्वान्त के के प्रदुम्भ प्रकार विन्दु ग्रहण करने को तैयार है। अन्तर्विद्वान्त की प्रविद्वान्त की बात ही है। विद्वान्त का युग महा हमारे माथ है। उम विद्वान्त का केवल विषय-परिवर्तन होता है। हम एक घम छोड़ते हैं पर दूसरे को ग्रहण कर लेते हैं। नये घम कुछ ऐसी चीजों पर निर्मित हुए हैं जो मरम की जिज्ञासा की मोधा अर्थात् साधारणभूत हैं। यह है शिष्टा की विद्वान्त की धर्म की साक्षात्ता। हम इन साधारणता का स्वीकार करने में बाधे जिनकी मान्यता की करें पर हम कुछ निश्चितता का ऐसा दृष्टिकोण चाहते अन्तर्विद्वान्त है जो जीवन को कोई माध्याह्न के घोर उम एक विवर्णपूर्ण एक अन्तर्विद्वान्त सभ्य प्रदान करे। विन्दु य नई अन्तर्विद्वान्त तुच्छ एवं प्रादेशिक हैं तथा उम नये साधारण पंदा करती हैं जिनके कारण नये संकटों का साधारण्य होगा है तथा सनद मरी विद्वान्त-अन्तर्विद्वान्त की नई महर्षे पंदा होगी है।

जब मनुष्य वेदता की अन्तर्विद्वान्त में होता है तभी ईश्वर के सभ्य निवृत्त होता है। तभी तब तक नहीं हम अन्तर्विद्वान्त मर्मभेदी मानकी पुकार मुक्त देती है। वे प्रभु को उम में मरम हम पना नहीं उम्र वहाँ रणा है ?" हम कहां जाए ? किम ईश्वर का नैवद्य अन्तर्विद्वान्त ?" किमके पास साधारण्य जीवन की बाली है ? यह पाठ पुकार अन्तर्विद्वान्त अन्तर्विद्वान्तों के हाठों से नहीं निवृत्तगी बर्याकि वे ता अपनी राय के विषय में साधारण्य तथा पुनः विद्वान्तगील होते हैं। वे तो समझते हैं कि उम्रान्त ईश्वर को अन्तर्विद्वान्त बुजा दिया है। य ता दुःखी लोग ही हैं—वे जो सन्तुष्ट की पाटी न मुझे है तथा जिनका कोई महारा नहीं है। वे ही उम वेदता को अन्तर्विद्वान्त करते हैं जिनके कर्म अन्तर्विद्वान्त ईश्वर के लिए ईश्वर में साधारण्यपूर्ण सजाई जाता है।^१ हमसे से बड़ से बड़ लोग अन्तर्विद्वान्तगी निराशा से अन्तर्विद्वान्त रहे हैं।

१. अन्तर्विद्वान्त अन्तर्विद्वान्त।

२. दि वेदविद्वान्त अन्तर्विद्वान्त अन्तर्विद्वान्त अन्तर्विद्वान्त अन्तर्विद्वान्त (१९२२), पृष्ठ ५४। अन्तर्विद्वान्त अन्तर्विद्वान्त।

यह एक ऐसी संज्ञाचिह्नबोध व्यवस्था है जिससे मन्त्री धारणाएं प्राप्त होती हैं। ईश्वर के विशुद्ध ईश्वर की रक्षा करने के उद्देश्य से ईश्वर की चरमसीमा पर पहुँच जाने हैं।

यदि हम चाहते हैं कि अनिश्चितता की यह बाधात्मक स्थिति पराजयता में आकर न समाप्त हो तो हमें एक लक्ष्यमान एक बचपन एक धारणा की धारणा करना पड़ेगी ही। जिससे लोग हैं सबसे मन में उच्चतम-गुण है। एक एक नये प्रयोग की प्रतीक्षा में है। इससे पता चलता है कि कदाचित् हम एक नवीन जीवन की सीमा पर हैं। हम एक ऐसे धर्म-मार्ग की ओर हैं जो विशुद्ध प्रकार का हो मार्बेदितिक रूप में विहित हो चर्चित एवं प्रामाणिक हो—लेगा जिसमें साय के नुगत ज्ञान की गम्यता हो जिसमें एक जागरित सामाजिक भावना हो। यही साय की धार्मिक स्थिति की प्रमुख विशेषता है। विशुद्ध बनना बटिन हो सरता है किन्तु विशुद्ध की धारणात्मकता के कारण गम्य नहीं। हमें बाँधान संपर्कता एवं उन्नी मानवता के लिए एक बुद्धिमत्तम धर्म की योजना करनी ही होगी। एसे धर्म की जो मनुष्यमाने मनुष्य या विशुद्धिवाहक करे निष्कर्षों से अनुपम की मुक्तता का उपहार करनेवाला न हो—ईश्वर का एक नवीन धर्म जिसके नाम पर हम उन धार्मिक-धर्मक मन्त्रियों के विशुद्ध मन्त्र कर सकते हैं जो धर्म अनुपमों की धारणाओं पर धर्म प्रमुख स्थापित करने के लिए होइ कर रहे हैं।—

चीथा अध्याय यथार्थ की खोज में

१. ब्रह्मान्तिक दृष्टि

धर्म-विचारक ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। हम इह उपनिषद् में बौद्धमत में प्लेटो एवं अरस्तु में देख सकते हैं। गैस टामस गिबिनाम के पंच प्रमाण ही सुप्रसिद्ध ही हैं।^१ काष्ठ ने अपने ईश्वरीय विश्वास का आधार मानवीय धर्म-करण तथा हिमेल में मानवीय ज्ञान की प्रकृति पर रखा है। धर्म को हमारी सत्य प्रेरणा को अंतोप करता ही चाहिए। ईश्वर सत्य है। वह सत्यस्वरूप है। वह सत्य स्वभाव वाला है। गोबीजी ईश्वर सत्य है। एमा न कहकर 'सत्य ही ईश्वर है' यह कहा करते थे। यह ब्रह्मण्य तपोब्रह्म के उपनिषद्-याद पर एक टीका है। मच्छी और अज्ञानी चिन्तना स्वयं ईश्वरीय है। कुछ और देकर कहते हैं कि प्रमाण पर आधारित बिबेक ही सत्य के लिए हमारा एकमात्र पर्याय है। वे हमसे धनुरीय करते हैं कि किसी धर्मधर्म को पालन होने के कारण या अथक सत्य के प्रति सम्मान के कारण ही हम उसपर विश्वास न करें। प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए स्वयं विचार करना चाहिए और स्वयं ही अनुभव भी करना चाहिए। ईसा मसीह और देते हैं कि सत्य की प्रेरणा हमारे अस्तर् में है और वही हमें मुक्त करेगी।^२ जब ईसा हमें अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ ईश्वर को प्रेम करने को कहते हैं तब उनका ध्यान वही रहता है कि हम ईश्वर का अपनी प्रजा के साथ या हमारे अस्तित्व का प्रमाण प्रेम है प्यार करें। हमसे बिबेकमुक्त न कि आवातमन प्रेम की प्राप्ति की जाती है।

जहाँ ईश्वर की मानना है जहाँ स्वतन्त्रता है मुक्त होकर चिन्तन एवं प्राचरण करने की स्वतन्त्रता। सभी परिस्थितियों में सत्य समर्थ से अधिक मूल्यवान है। यदि सत्य हमारे सामने अद्भुत विचित्र रूप में आता है यदि अथक कारण हमारे माथ में कटिनाइयाँ पैदा होती हैं—देखी कटिनाइयाँ जो हमारे प्रियतम विश्वासों का रक्षण करने को हमें विवश कर देती हैं—तो भी अन्तिम परिणाम मानवता के लिए

१ एम. ए. गिबिनाम, 'अन्तिम दृष्टि' प्रेस मैरिटेन लिन 'ब्रह्म' एडिटेड, पृ. १।
२. 'ब्रह्म' १५। १७।

या ससार के योग के लिए कभी हानिकारक नहीं हो सकता। मनुष्य की तीव्रमात्रा सत्य के लिए समानान्त योग के रूप में रही है—बिखरतन योग प्राप्त एवं पुनः प्राप्त के लिए प्रयत्न। इसी प्रकार हम विकसित होते हैं और घाने अनुभव में वृद्धि करते हैं। चाहे हम वैज्ञानिक हों या धार्मिक सत्यान्वेषक के लिए पूर्णतः प्रतिभूत हैं। विज्ञान कोई भाषाबोध नहीं है न धर्म ही कोई मतवाद है। विज्ञान हमें जो सत्य देता है, वह धर्म में भी बहुत अधिक गहराई लाएगा।¹

यदि विज्ञान मस्तिष्क के ऊपर इतना तरह छा जाता है कि विज्ञानाघोर खोज का घपना कार्य ही छोड़ देता है तो वह सत्य की भाषणा के विपरीत है। यदि वह घपने अनुयायियों पर से स्वतन्त्र चिन्तन का बंधन हटा देता है और उन्हें कुमा घीक देता है तो फिर एक अक्षयिबिबास-भाव होकर रह जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग के लगभग विज्ञान ही उठता ही कट्टर हो गया वा जितना कोई भी धार्मिक मतवाद हो सकता है। उसने मान लिया वा कि विश्व एक उसके भीतर की प्रत्येक वस्तु एक विस्तृत संघ के रूप में है जिसमें की हर चीज ठोस भौतिक घघों के रूप में परिवर्तित हो सकती है। ऐसी धार्मिक व्याख्या से स्वभावतः मस्तिष्क एवं धारणा के मूर्खों की वृद्धि की सत्य संभावना दूर रह जाती है।

धार्मिक दृष्टिकोण विज्ञान का तथ्य नहीं वैज्ञानिक की खोज है। उदाहरण के लिए, साम्यवाद को ले। वह घपने की विज्ञान पर आधारित बतमाता है और घोषणा करता है कि कहीं कोई ईश्वर नहीं है। विज्ञान उसका इस बारे की पुष्टि नहीं करता। वह ईश्वर के अस्तित्व को वैध ही प्रमाणित या अप्रमाणित नहीं करता जैसे वह दूर्यास्त के सौन्दर्य वा हैमसेट की महत्ता का प्रमाणित या अप्रमाणित नहीं करता।

वैज्ञानिक ज्ञान-कसाव के दो पहलू होते हैं तथ्यों का आधिकार तथा दूसरे ज्ञान तथ्यों का दुबासा देते हुए उनकी व्याख्या करने के शैक्षिक साधने की निर्माण। तथ्य प्रामाणिक होते हैं जबकि व्याख्याएं अस्थायी होती हैं। फिर तथ्य मूर्खों का निर्णय नहीं है। जब हम सब मिलकर तथ्यों की व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं एवं उनके अर्थ तथा मूल्य पर निर्णयों की घोषणा करते हैं तब हम विज्ञान की सीधा के बाहर बसे जाते हैं। वैज्ञानिक मस्तिष्क गौण कारणों से सम्पुष्ट हो जाता है

१. एलमर्ट स्वीडर ने इसे बड़े शक्ति रूप में व्यक्त किया है "यदि विश्व को विवेक होकर अपनी भाषा करने दिया जाए तो उसे किसी भी बात के लिए तैयार करना पड़ेगा यदि एक ही शैक्षिक प्रभावकारक एक ही वस्तु सकते हैं। किन्तु हमारी क्रोश्या को चाहे अस्तित्व एक और निर्णय ही करायें वह शैक्षिक-सम्पत्ती प्रभावकारी निष्कर्षण से मुक्त करना पड़े ता ही वह उस स्थिति से छे अन्धा ही रहेगा किन्तु अर्थन बारे में निष्कार करने से धार-धार-सम्पत्त किन्ना जाए क्योंकि वह अस्तित्व कम से कम एक ही वस्तु है कि हम उसे कुछ कर रहे हैं कर्ण-सम्पत्त में स्पष्ट तो है। -"दिके वेस्ट रेसोरेणन जोड डिप्लिकिनेसन्" (१९७०) पृष्ठ १०४।

संसारवादी और दार्शनिक चिन्तन वारणों की मांग करते हैं। कारणों की धनस्य सामिका कोई व्याख्या प्रस्तुत नहीं करती।

दशम की शक्ति धर्म भी सब मिलाकर हमारे धनुमन् की व्याख्या करने का प्रयत्न-मात्र है। धनुमन् विविध प्रकारों का होता है। उसका सम्बन्ध बुद्धि जगत् से होता है। वह प्राकृतिक विज्ञान के आधार पर प्रकृति के अध्ययन से सम्बन्धित हो सकता है। वह व्यक्तियों-सम्बन्धी दुनिया तक सामाजिक विज्ञानों मानस शास्त्र तथा इतिहास द्वारा उनके विचारों भावनाओं आकांक्षाओं एवं निष्पत्तियों के अध्ययन तक सीमित हो सकता है। फिर उसका सम्बन्ध केवल मूर्तियों के उस जगत् से भी हो सकता है जिसका अध्ययन साहित्य दर्शन एवं धर्म द्वारा किया जाता है। हमें इन विविध प्रकार के धनुमन् की व्याख्या करके अपने पञ्च-दशम के लिए एक सम्बन्ध साधने का निर्माण करना चाहिए। प्रकृति धारणा एवं ईश्वर-सम्बन्धी हमारी धारणाएँ भी मर जाती हैं यदि उनकी जड़ें धनुमन् के धन्दुर पृष्ठ नहीं होतीं। धनुमन् की व्याख्या में हम विवेक एवं तर्क को प्रणालियों का उपयोग करते हैं। सत्य को पाने का यही एकमात्र मार्ग है। कोई प्रस्थापना या प्रतिज्ञा ऐसी नहीं जो धर्म के लिए तो ठीक और तर्क के लिए गलत हो। धर्म की धारणा के धनुमन् सत्य एवं ईश्वर के परस्पर-प्रतिबन्ध दिखाई पड़नेवाले विचार परस्पर सम्बन्ध या धनुमन् किए जा सकते हैं। धर्म-करण की धारणा की जितनी भी विषयगत हैं जिनमें सत्य ज्ञान की विषयता भी शामिल है उनका समाधान करने की आवश्यकता है। जब हम संसार को समझने में प्रथम से धीरे-धीरे उस प्राकृतिक वास्तव्यता की धरा पर जीते हैं जिनका विद्या-रूप हमारे ज्ञान की सीमा एवं नियंत्रण के परे था तब हमें संसार का अपने कल्पनाप्रसूत देव-देवियों से भरा दिया था—वे देव-देवी जो परिगुप्त एवं धनुमन् किए जा सकते थे। जन्म-रंग प्रकृति विषयक हमारे ज्ञान में बुद्धि होती गई, हम विज्ञान की अपनी सफलताओं पर गर्व हुआ और हमने मान लिया कि धर्म तब जो कुछ भी हो चुका है या होगा 'प्रथम शीघ्रिक्रम के धनुमन् से लेकर विज्ञान की प्रगति के लिए स्थापित धार्मिक-परिपक्व की धारणाई तक की सम्पूर्ण प्राकृतिक एवं धनिवार्य विकास-यात्रा की व्याख्या' विज्ञान कर देगा' जबकि प्रथम धरणा में सधाधता की सत्य को एक पहलु से ही प्राप्त एवं धारिततनीय पदार्थ मान लिया गया था और समझ जाता था कि जन्म-सधाधता धीरे-धीरे उसके द्वारा निष्पन्न वस्तुओं के प्रति धारणाएँ ही मानव का कर्तव्य है। दूसरी धरणा धारणा तो अपनी कामनाओं के धनुमन् सधाध-बोध को निष्पन्न करके जन्म-धरणा के धनुमन् धान के मानव के सामर्थ्य को

१ विज्ञान की प्रगति के लिए धरणाओं-धरणा के धरणा के धरणा में धरणा के धरणा का अध्ययन मात्र है।

स्वीकार किया गया। प्रथम धबस्वा में मनुष्य क धपने ऊपर नियंत्रण करने और प्रकृति को धात्मार्पण करने पर अधिक बल दिया गया। दूसरी धबस्वा में पदार्थ क प्राविधिक नियंत्रण पर अधिक बल दिया जाने लगा। पहली में ज्ञानप्राप्ति एवं धात्मनियंत्रण की धावधमकता मुख्य थी। दूसरी में ऐसे ज्ञान का धर्जन करने की धावधमकता प्रमुख हो गई जिसके द्वारा मनुष्य धपने पर्यावरण एवं परिस्थिति पर काबू पा सके।

यह पुरातन विश्वास धमी कुछ समय पहले तक प्रचलित था कि यदि वैज्ञानिक धनुसंधान को स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाए तो धंधविश्वास नष्ट हो जाएगा रहुस्य पर से पर्दा उठ जाएगा और मनुष्य में केवल धुनिया का धरनु धपना भी स्वामी बन जाएगा। किन्तु अब इस धारणा को वैज्ञानिक तक छोड़ चुके हैं। अब के वैज्ञानिक बड़ी मन्नता धीनता की भावना के साथ धपना काम करते हैं। उन्हें यह बोध है कि बगल के धारणधों एवं रहुस्यो के धाने बेधारा मानव एक धजानी प्राणी है जो न यह जानता है कि वह कहाँ से धामा है और न यह कि कहाँ जा रहा है। वैज्ञानिकों को निश्चय नहीं है कि वे कोई बात निश्चित रूप से जानते हैं। ज्ञान के क्षेत्र में प्रयति का हर नवम एक महत्तर-धसाठ-को उद्घाटित करता है। यह इन महत्त्वपूर्ण प्रधों का कोई उत्तर नहीं देता कि क्या धमित्व का कोई धर्ष है। जीवन का कोई धमिप्राय है। और क्या वस्तुधों की प्रकृति में ही धीधिय निहित है। धाध ने जो बह्यावध की नियमित ध्यवस्था में धडा रखना या धनुसध किया कि धाकृतिक धियम मुख्य या कर्तुध के धियम में प्राय मीन है। उसके धिधार से प्रत्यस धपल जैधे प्रकृति के नियमों में धागित है। जैसे ही धाध्यों का भी एक राज्य है जो एक धलधनीय नैतिक नियम के धनुधार ध्यवस्थित एवं धमबड है। लुध्विन धिटजेनस्टीन भी स्वीकार करता है कि पधार्थविज्ञान धमित्व या मनातन मूल्यों का प्रधर्जन करने में धममर्ष है। यह कहता है हम धनुसध करते हैं कि यदि सधुध संसध वैज्ञानिक प्रधनों के उत्तर वे दिए जाएं ता भी हमारी धीधस्त धम स्वाध धसूधय ही रह जाती है। 'धीधन विज्ञान से धधिक विस्तृत है और धान धीध खोज धिधधकधी है।'

केवल इसधिए कि हम तर्क में विश्वास करते हैं यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सामने धाने पर हम किसी रहुस्य को स्वीकार नहीं करना धाधिए।^१ हाँ इस रहुस्य का धर्जन करते समय ऐसा न होना धाधिए कि जिसे सकारण धिधज्ञान कहा जाता

१ 'ट्रिकलस धाधिको धिधधकधिम १, १२।

२ अ है सी मैकटेमार्ट 'एक धिया रहुस्यध है। जो हमध में ही धारध होध है और तर्धे उध सीमा तक धसने दूर रह पाया है किम सीम्य तक वह धधिकोच धरने को धाधिम नहीं प्रधुधिन कर सकता किन्तु धिया भी वह धधनी सीमा के धरे की धिनी धधु की धारधा के निमित्त ही कल्य है। —'धधीन धन धिधोधिधन धाधिलोधी' (१२ १) धध १२२।

है उसके घोर धार्मिक सत्य के बीच कोई संघर्ष उपस्थित हो। धार्मिक यथायता में विश्वास रखने के लिए ठाँकिक प्रमाण हम भले ही न दे सकें किन्तु उसे विवेक-सम्मत तो सिद्ध किया ही जा सकता है। सर्वगुण ज्ञान स्वयं हर्म विधि या विज्ञान के राज्य से प्राप्त, रहस्य या काम के राज्य में से जा सकता है।

जीवन का सबसे स्पष्ट तथ्य उसकी सततमयता अनित्यता है उसकी नाशमानता है। ससार की प्रत्येक वस्तु का अंत है—मितल घण्टा लुप्त हुआ परंपर, रचित चित्र बीरतापूज काय सब एक न एक दिन समाप्त हो जाते हैं। हमारे विचार एवं वाय हमारे यद्यत्वी कृत्य हमारी धार्मिक व्यवस्थाएँ हमारी राजनीतिक मस्थाएँ हमारी महान सम्मताएँ सब इतिहास के एक भग हैं और काम के नियम के अधीन हैं। हो सकता है कि जिस धरती पर हम रहते हैं वह भी एक दिन मृत्यु के बड़े एवं परिवर्तित हान पर, मानवीय अस्तित्वों के योग्य न रहे। सब वस्तुएं क्वाण्टर और काम के अधीन हैं। अस्तित्व एवं लक्षणगतरता वानों का एक-दूसरे से बदला जा सकता है।^१

हर तरह की भारतीय विचारधारा में काम आवागमन के प्रतीकरूप में मिमता है। जगत काम-अन्य और जग-भूत-बक के रूप में वर्णित है। जगत के लिए प्रश्न यह है कि क्या यह सर्वभरती काम यह ससार ही सब कुछ है या इस काम के बाहर भी कुछ है। यह समार, यह घटनाओं की प्रभाव यात्रा स्वयंपरित स्वयंभीवी और स्वयंसिद्ध है या इसमें परे एक इसम अस्तित्व इसके पीछे गढ़ा और इसे स्फूर्ति देने और सबको परंपर आबद्ध रखनेवाला कुछ और भी है?

इसके पहले कि हम इस प्रश्न का उत्तर देने का यत्न करें हमें इस समार के उपजम की प्रमुख बातों की ओर ध्यान देना होगा। सबसे स्पष्ट जो विचारणा हम इसमें पाते हैं वह इसकी मुक्तवस्थितता है। यह आगतिव उपजम प्रजेय व्यवस्था या धरायकता के रूप में नहीं है। यह कुछ निश्चित विधियों-नियमों द्वारा धार्मिक है। हम संयोजन कर सकते हैं और अधिक्य बता सकते हैं, अनुभव संयोग सकते हैं विरवमनीय ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और आबी मयों का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। प्रकृति की निश्चित व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं है, इसलिए हम उन विधि-नियमों को समझ सकते हैं जो जगत का नियमन करते हैं। यदि जगत् नियम वानुन-रहित होता यदि मृत्यु का अर्थ और बीज का उद्भव तथा विषय अनिश्चित होते तो संसार का अस्तित्व अस्तित्व होता और हमारा जीवन एक कुम्भज हो जाता। संसार प्रसंझित नहीं है। उसमें एक वानुन है एक माया है एक दृग है जिसके अनुसार

१ "वहाँ तक जानना का लक्षण है उसके दिन मृत-मृत्यु अस्तित्व का मृत्यु है। सभी रूप में वह मिथ्या है। अकार से दृग निश्चय होती है, अकार से दृग मिथ्या हो जाता है। फिर वह अस्तित्व उसे म देता कारण। — अम १ १ १७, १९।

^२ "यु जीव का अस्तित्व है। — होरेव ।

वस्तुएं पतिमान हैं। स्पूटन एवं कास्ट जैसे महान विचारक इस जागतिक व्यवस्था के सौन्दर्य से प्रभावित हुए थे।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राकृतिक प्रापदाएं भी, जिनके कारण कृमी-कृमी बड़ा सफ्ट उपस्थित हो जाता है कुछ नियमों की क्रियाशीलता के ही परिणाम हैं। यदि प्राकृतिक नियमों के क्रियान्वय के परिणाम को धन्यवाद दे देना ही जादुई बातें होती रहीं तो ज्ञान एवं धीरचित्तपूर्ण धारणन प्रसम्भव हो जाएगा। प्रकृति की प्रपत्नी एक मय है और वह मानव के जीवन के लिए भी प्रावश्यक है।

यह जगत् भ्रूवरणा एवं धारिता की पुनरुक्ति-मान नहीं है यह भविष्य की ओर प्रगतिशील है। जागतिक उपक्रम में हम धर्मिता की धनेक स्तर-मासिकाधो का उदय देखते हैं यह भी कहते हैं कि इनमें से हर एक धपने ही नियमों के धनीन धन रहा है, फिर भी विद्युती मासिका के धर्मो से प्रमति भी करता जा रहा है। तैत्तिरीय नामक एक प्रारम्भिक उपनिषद् में ब्रह्माण्ड के उपक्रम में सत् के धनीन स्तरों का धपन मिलता है—अन्न या पदार्थ (भूत) प्राण या जीवन, 'अन्तः' या जीवन ज्ञान या मानवीय प्रज्ञा और 'आत्म' या धार्मिक मोक्ष।^१ इनमें मूक मेव है। प्रत्येक स्तर के धपने नियमक सिद्धांत या कानून हैं जो उसीपर लागू होते हैं। उच्चतर स्तर के नियम निम्नस्तर के नियमों को निरस्त नहीं करते बल्कि उसमें कुछ और नया जोड़ते हैं जो मूल में उनस पूर्वक होता है। इन्द्रात्मक धादर्शवाद (हिनेम) या इन्द्रात्मक धौतिकवाद (मार्कम) तक प्रगति के तथ्य को स्वीकार करते हैं। इतिहास धमगामी धति है बटनाधो का धमन्त पुनरुत्थन नहीं। उपनिषद् के धनुसार जगत् का उदय मने प्राणिधो की रचना करता है जिनमें अन्तः एक ज्ञान मिलकर मानव की धिधि कर सक। जब ब्रह्मसोक (धारमराज्य) की स्थापना हो आयी तब जागतिक उपक्रम की विजय एवं सिद्धि हो आयी। इस ईश्वर राज्य इस ब्रह्मसोक का धास्वाधन हम ऊपरसु सुकराध एवं ईना जैसे इरिजन से मण है।

ईसाई धर्म-सिद्धांत भी इस संसार को ईश्वर के राज्य के लिए तैयारी के धप में देखता है। यह संसार मानव-धति के लिए पूर्णता प्राप्त करने की एक प्रसिधनधामा है। हर्बर्ट स्पेंसर तक को संसार के देवी सधप में विश्वास था। "धार्कस मानव का धन्तिम धिकाध निरिधत है—उतना ही निरिधत धितना कोई भी ऐसा निष्कर्ष जिसमें हम पूर्ण विश्वास रखते हों—जैसे यह कि सब धावमी मरते हैं। उनके लिए "प्रगति कोई धार्कसिक बटना नहीं है बल्कि एक

१. मानव मयक इन सीधियों का निर्धत करते हैं परमाधु मनु, सौधनीन धकई (नेनेमधन धीर) धीरीध धनुधरीध धीधनु और धीधनुधनध।

वाच्यकता है। जिसे हम बुराई एवं धनीतिकता या सदाचारहीनता कहते हैं
 गफा मोप हाना ही चाहिए। 'इतना निश्चित है कि मनुष्य को पूर्ण होना
 देना।' नैमुणम फलेनकचर हमें बताते हैं कि देग-नास (रोस-टाइम) यह
 ताबा जिसमे यह बड़ाण्ड निकलित हुआ है या बना है अपनी धान्तरिक
 वाच्यकता के कारण बेतमा के उच्च स्तरों को जन्म देता है। इसने मानव
 प्राणियों का विकास किया है और यही देवी मनुष्यों का विकास करेगा। प्लूट
 वृद्ध जो ईश्वर को परिपूर्ण आदर्श सामन्त्य के रूप में मानते हैं बड़ाण्ड
 का धमिप्राय ऐहिक बिद्व में मूस्योपसम्बि' बताते हैं।

कोई भी दार्शनिक प्रयत्न हो उसकी एक व्याख्या के अन्तर्गत विविध अर
 एवं अतन स्तरों का समावेश होना चाहिए। उसे जगत् के प्रगति क्रम के तथ्य
 उसकी व्याख्यितता उसके विकास पर ध्यान रखना चाहिए। अस्तित्व के जो गुण
 हैं—व्यवस्था विकास सामिप्रायता—वे सब एक दार्शनिक आधार चाहत हैं।

यह अस्तित्व है क्यों ? किसी भी वस्तु को सत्ता ही क्यों है ? यदि सब वस्तुएं
 बिल्कुल हो जाएं तब पूर्ण सून्यता रह जाएगी। यदि वह सून्यता व्यवस्था न करती
 या उसमें स्वयं अस्तित्व की संभावना न होती तो किसी भी वस्तु की सत्ता न
 होगी। सत्ता का अस्तित्व अपूर्ण एक अन्धकार है और जो कुछ भी अपूर्ण है वह
 स्वयं अपने-आप या अपने सहारे रह ही नहीं सकता क्योंकि जिस सीमा तक वह
 अपूर्ण है उस सीमा तक वह अस्तित्वरहित है। उपनिषदों में संसार के अपूर्ण
 अस्तित्व से सर्वोच्च एवं परिपूर्ण अस्तित्व की ओर में जातो है—उस पूर्वोत्तर की
 ओर जो सर्वत्र है ऊपर नीचे दूर हर दिशा में है जिसका केन्द्र सर्वत्र है छोटे
 में छोटे धनु में भी, वह जिसकी परिधि नहीं नहीं है क्योंकि वह सम्पूर्ण भागों के
 परे सर्वत्र फैला हुआ है। संसार के अस्तित्व का धर्म है—सत्ता की प्राथमिकता।
 इस तथ्य का कि अस्तित्व है और उनका आरम्भ है, धर्म ही यह है कि कोई तथी
 बोध है जिसने स्वयं अस्तित्व ग्रहण नहीं किया है। आधारभूत सिद्धांतपूर्णता
 का धारि रात्रि नहीं परिपूर्ण सत्ता है। सत्ता का धर्म प्रत्यक्ष मनुष्य नियम का
खाल-घोर-मुट-रहीरति है। वह धारममीन परमारमा है। वह अस्तित्व एवं
 अस्तित्व के परे एक सर्वोच्च सत्ता एक जागतिन मरत्य है। ईश्वर में सत्ता को
 जिस भ्रमा कि वहां जाकर के अपने बन्धुओं की सत्ता करें। भ्रमा में ईश्वर का
 पूजा यदि के मुझमें पूछिये कि उतना नाम क्या है तो मैं उनसे क्या कहूंगा ?
 ईश्वर में उत्तर दिया 'तुम उनसे कहामे 'मैं जा हूं वह हूं।'

१ 'अन्तः २ : १२-१४। मोर्रोरको के शिस्तानता का धर्म लगते दुब-धर
 देना कहते हैं : ईश्वर का सर्वथा ईश्वर के नाम 'इश्वर' से ही निकल है जिसका धर्म
 है : वह जो रहता है। २- अन्तः-१४ के अनुसार मर्रोरको के लोभे का धर्म 'अन्तः
 काद वृत्तिरिधि काद कले नाम २, १४ है।

हम यह तो नहीं जानते कि भूत-जगत् में जीवन का प्राणिमार्ग किस प्रकार हुआ या जीव में मन का प्रवेश कैसे हो गया। जब हमारे अनुभव इन्द्रियगम्य हैं तब हमें ज्ञान कैसे होता है? हमारी इन्द्रियां जगत् से जो कुछ प्राप्त करती हैं उनका हम एक धर्म एक व्याख्या कैसे करते हैं? मास्टर बोम्बर ने जो कुछ संघटित के लिए कहा है वह सम्पूर्ण सृष्टि के लिए सत्य है 'मैं नहीं जानता कि इसे छोड़ मानव को ऐसा कोई और भी बरदान मिला है कि तीन स्वर्गों से वह चाँये का नहीं बरन् चाकास के एक तारे का निर्माण कर देता है।'

यदि दर्शन विभिन्न स्थितियों का वर्णन न करके उनकी व्याख्या भी देने का यत्न करता है तो वह किसी उर्ध्वबुद्धि (नीमस*) की बात करता है (मानव मार्गन एव प्रसन्नबोधर) यद्यपि ह्यमिरमर् (स्मट्स) की ओर प्रवृत्त होता है। यह एक ऐसे वैकिक अभिकरण (इनिटरी एजेंसी) की ओर संकेत करता है जो अपने विविध व्यक्तियों में भी उन्हीं का त्याग रहता है। यह संघटना के विभिन्न स्तरों पर अपने को व्यक्त करता है और उसका समाहार प्राध्यात्मिक मुक्ति में जो आगतिक उपक्रम का लक्ष्य है होता है। यदि प्राथमिक सत्ता भी सर्वनाशकारी न हो तो हम जगत् की सक्रिय एवं सर्वनाशक प्रकृति की भी व्याख्या नहीं कर सकते। ब्यूट्टइंड ने कहा है "जिसे लोग ईश्वर—बुद्धिमत्त धर्म का परमेश्वर कहते हैं वह एक वास्तविक किन्तु पारलौकिक सत्ता है जिसके द्वारा केवल सर्वना की परिष्कृतता निर्णीत स्वतंत्रता में परिणत होती है।'

यदि हम व्यवस्था एवं प्रति या आगतिक सिद्धान्त जिसे यूनानी 'मोगोर्ध' कहते हैं क्रियाशील न हो तो आगतिक उपक्रम एक स्वहीन घराबकता में बदल जाए तथा जगत् एक निरन्तर विषम-मात्र रह जाए। इस बह्यसत्ता तथा आगतिक उपक्रम के बीच संबंधी सम्बन्धन बुझाविये या मध्यस्थ का काम करना है। एक कार्यशील जीवनमय ईश्वर की प्रतिज्ञा या परिकल्पना से ही आगतिक व्यवस्था एवं प्रयत्न की व्याख्या की जा सकती है। प्रकृति एवं इतिहास के समस्त उपक्रमम आदिमों के धर्मज्ञान का स्फुरण ज्ञानियों का ज्ञान कलाकार की प्रतिभा तथा क्रांतिर या विस्फी का कौशल तब घातमा के कर्तृत्व के कारण ही है। अन्वयवृत्तिता हमें बताती

जा पत्र साकर गब विद्या है वह अन्वयवृत्ति कर्तृत्व अन्वय का प्रयास देता है। मैं तो उसे जीवन-सम्पर्क प्रमाणात्पूर्वकरी गूचना मानता हूँ।

* अन्वय का वह सिद्धान्त जिसके कारण अन्वय के अन्वय लक्षण का आविर्भाव होता है तथा अन्वयवृत्ति की विशेषताओं की अन्वयि सम्बन्ध होती है। —अनुवादक

† जैनस्य स्वस्य इत्यं प्रत्यक्षितं वह वास्तविक सिद्धान्त नि प्रकृति विशेषतः विनास क्रम में निर्बंधकारी प्रत्यक्ष अन्वय का अन्वयु लेते हैं, म कि अन्वय निर्वाणक भवत।

—अनुवादक

है "जो भी विभूति घबरा ऐश्वर्य तथा सत्त्व एवं शीर्ष स युक्त है उन्हें मेरे ही तर्जान से उत्पन्न हुआ सम्झ ।" वा लोण करती पर ईश्वरीय राग्य का उद्घाटन करना चाहते हैं उन सबकी विभूतियां परमात्मा से ही उद्भूत होती हैं। इस जगत् के अस्तित्व का कारण सद् ही है इसका स्वभाव, जिसके कारण अत्यन्त प्रयति होती है, वित्त एवं प्राण्य है।

बहु सभाम कि इस संसार में बुराई और अधुणता का अस्तित्व क्या धार्मिक दृष्टिकोण के साथ मेम लाता है बिस्वासियों के लिए बड़ी चिन्ता और परेशानी का कारण रहा है। प्राकृतिक वस्तुओं में अधुणता का तत्त्व रहता है। यदि ऐसा न हो तो ईश्वर और उसकी सृष्टि में भेद करना सम्भव न होगा। अधुर्नता बतमान जगत् का एक पहलू है। हम यह नहीं कह सकते कि केवल सुस-सुविधा का जगत् ही ईश्वरीय शासन (प्रोबिडेंसियल गवर्नमेंट) के अनुकूल है। यदि मानव-जीवन का अभिप्राय बुराई (पाप) एक ब्यथा का प्रतिरोध करना तथा अनिश्चय एवं संसम पर निर्बंधन स्थापित करना है तो यह संसार उसके लिए अनुविधाजनक नहीं है। जीवन की अनिश्चयता ही उसे मुख्य सम्मान एवं शीर्ष्य प्रदान करती है। यदि इस जीवन का अभिप्राय नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का प्राकृतिक ही है तो दुःख एवं कठिनाइयों से बचना सम्भव नहीं है। बीदस ने एक पत्र में लिखा था "जुम देखते नहीं कि संकट एक ब्यथा की बुनियाद बुद्धि के अस्तित्व एवं उसे धारण करने के लिए कितनी जरूरी है।" शोक एवं कष्ट का प्रतीक त्रास ही मुक्ति का भी चिह्न है।

ईश्वर संसार को अपने नियंत्रण में रकता है। अन्त में परती को स्पृसता दूर ही आयेगी और ईश्वर का तात्पर्य पूरा होगा। मही हिन्दुओं का ब्रह्मलोक ईसाइयों का स्वर्ग राग्य और मुसलमानों का बिहिस्त है। ब्रह्मलोक इस संसार से अलग कोई दूसरा लोक नहीं है, वह केवल मुक्तिप्राप्त संसार है। जब सूफ़ी एर रबी ने कहा था कि बिहिस्त साधक शिष्य का कारागार है जबकि संसार विरवासी का कारागार है तब उनका तात्पर्य यही था कि बिहिस्त परम धर्मसत्ता सत्ता की धर्म व्यक्तियोग या सीमावर्णन है। यह निश्चयिता नता की एक आगठिक प्रतिष्ठाया एक मौलानिक धर्मसत्ता है। बिमबा धारि है उक्तता अंत धर्मसत्ता होगा, फिर चाहे वह कौटि-कौटि बयें ठाक रहे। इतिहास व्यापक विविध से प्राकृत है काम निरम है।

प्राणायाम राग्य का परलोक को इस संसार के राग्य से पुष्क करना गतत है। दोनों के बीच की पुष्कता अतिम है। इन्फू० धार० इन् के अनुसार ईसाइयत के भी कोई प्राण नहीं दिताती कि एक निश्चित नामावधि में अनुप्य धर्मसत्ता ही

१ अतिविश्रामार्थ शीर्ष्यनिर्णय का ।

पूर्ण हो जाएगा।' एडविन बेवन हम सोचों से कहते हैं कि यह कल्पना करने से बचो कि हम सोचों के लिए कभी इतिहास की प्रवृत्ति में ईस्वीय राज्य की निकटता प्राप्त करना सम्भव होगा। प्रगतिशील निकटता की धारणा उम्मीदवादी सही की सामान्य बिकार-भारता के साथ धार्मिक 'प्रारंभिक वर्ष' में इस प्रकार की निकटता या उपसादन का बिचार नहीं था। 'ईसाईधर्म में केवल ईस्वीय स्वर्गमय भाशा की प्रतिज्यार्यता है। ऐसा कोई भावनासत नहीं किया जा सकता कि इतिहास की समाप्ति होने के पहले बरती की वस्तुएं पहले से अधिक बख्शी हो जाएगी।^१ सदा से ईसाई प्रयत्न यही रहा है कि मानव-समाज को ईस्वीय सत्य के साक्ष्य में ला दिया जाए। बरि यह संसार ईस्वीय धर्मिप्राय का इस्तेमाल (धर्मिभ्यक्ति) है तो क्यों-क्यों समय बीतता जाए, वह इस्तेमाल वह धर्मिभ्यक्ति धर्मिप्रायिक व्यापक होती बानी चाहिए। संत पास एक ऐसे प्रगतिशील बिकास की प्रवृत्ति की धारणा करते हैं जिसका अन्त बेचना एक संकट के हाथ सृष्टि के तात्पर्य की पूर्ति में हो।^२ इंस भी इतना मानते हैं कि 'ऐसी अन्तर्हित हेतुकता हो सकती है जो मानव-जाति के जीवन को उस पूर्ण बिकास की धोर से ला रही हो जिस तक धर्मि पहुंच नहीं हो पाई है।' सब मिमाकर, उनकी सिकायत यथार्थता पर प्रपति की धारणा मागू करने के बिकर है। यथार्थता या सत्यता के रोचों के अन्तर्गत ही प्रगति समय एक संभवनीय है।

यद्यपि प्रोफेसर अर्नस्ट टोबनबी सम्मताओं की बतुंस गति के सिद्धान्त को मानते हैं परन्तु उनका सुझाव है कि सम्मताया का हास एवं बिलगहन धर्म के स्तर पर महान वस्तुओं के लिए सीधियों का काम दे सकता है।^३ ईसाई बीड एवं मुसलमान अपने-अपने बिसवासों द्वारा मानव-जाति के धर्मसंस्कार की धारणा से कार्य करते हैं। ये लोय तथा वे बर्तन-सिद्धान्त जो मुजवारमक बिकास के ऊर्ध्व स्तर की एक के बाध एक मानिका में बिसवास रखते हैं इतिहास की प्रगति को स्वीकार करते हैं। इस आगतिक उपक्रम का एक धर्मिप्राय है। जो कुछ बह है हम उसकी अंकी पा सकते हैं जिस बुरस भास्ति से हम बिरे हुए हैं उसका धर्म समझ सकते हैं।

जब हम आबतिक सिरे से कार्य धारम्भ करते हैं तो एक ऐसी परम सता की परिकल्पना तक पहुंचते हैं जो अपने स्वभाव में सत् बित् स्वातंत्र्य सक्ति धीर मिच है। ब्रह्म धर्मीय सम्मताओं का धाभवस्थान है धीर मुजवारमक पय में

१ 'दि ब्रह्मिणिक धर्मि प्रोफेस (१९२)।

२ 'दि किंगडम ऑफ द ग्रेट डिस्ट्री' (१९१०) अन्तर्गत अन्वेषणमाता गुड २९।

३ 'कारिब्लिस २९ ४-२०। 'रोमन' २२ २२। 'कोलोसिंस २ ११।

लेखिका ४। ४-१९ भी है।

४ 'डिविजिनेशन ऑफ द ग्रेट (१४०) २४ २४। ४ २२ का गुटनोर भी दे।

इसमें से एक सम्भावना को साधना के लिए स्वतंत्र रूप से पुनः लिया जाता है। सर्वज्ञ की धर्मिता-धर्म के स्वभाव के बाहर नहीं है। यह उसमें कहीं बाहर से प्रवेश नहीं करती। यह सत् में ही है उसीके अन्दर प्रकृत है। जब हम सर्वतारमक पक्ष पर बस बैठे हैं तब उस परम सत्ता या परब्रह्म को ईश्वर कहा जाता है। ब्रह्म एवं ईश्वर दोनों एक हैं। ब्रह्म धर्मिक सत् एवं सम्भावना के सदन में घाता है और ईश्वर सजन की स्वतन्त्रता के धर्म में प्रयोग किया जाता है। इस जगत् पर जगदाधिपति (हिरण्यगर्भ) का प्राधिपत्य है और वह ब्रह्म का ही प्रकाश (मनीफेस्टेशन) है। जगत् एक ऐसा प्रवृत्त है जिसका मांस या लीन एकेश्वरभावना है। प्रवृत्त-वृत्त ईश्वर प्रवृत्त-धारी ईश्वर से अधिक व्यापक है। परम सत्ता ईश्वर एवं हिरण्यगर्भ या जगदाधिपति को प्रलय-धर्म नहीं समझना चाहिए। वे एक ही परम सत्ता के दर्शन के विविध प्रकार हैं। केन्द्रक धर्मिक धर्म सब वस्तुओं को सम्बद्ध एवं शय बनाता है। निश्चित ब्रह्म कोई कल्पना भावना-भाव नहीं है। वह कोई ब्रह्मत्व नहीं है बल्कि सम्पूर्ण विविधता का स्रोत है। वह अत्यन्त योग रूप में सत् है और अपने अन्दर सत् के प्रत्येक प्रकाश को लिए हुए है। जिस जगत् में हम रहते हैं वह परिवर्तन के अधीन है। यह संसार अस्तित्व का स्रोत तथा माय एक सम्मन (विचलित) का क्षेत्र है। यह वह स्मरण भी है जहाँ हमें जीवन का प्रथम शरीर का प्रवृत्त मिलता है। जब तब हम ज्ञान के धर्मों तट तक नहीं पहुँचा तब तब हमें धार में ही रहना होगा। इस संसार की सभी वस्तुएँ यद्यपि धर्म एवं परिवर्तन-धीन हैं फिर भी उनमें सत्तापत्ता का स्वरूप है क्योंकि सत्यमें सत् निहित है। हम इस जगत् से तनातन रूप से रह सकते हैं क्योंकि यह ब्रह्म के ही प्रकाश का एक रूप है।

अस्तित्व के इस जगत् के रूप पर विचार विचार करने से ही सात होता है कि हम सत्य धर्मों से ऊँची एक सत्ता प्रवृत्त है जिसके मुक्त महिमा और धर्म ही

१ सुप्रभा ६.१० अन्ति १४ १८ : क्योंकि वह सत्ता (ईश्वर) मुक्तम वरा है।

२ ईश्वर सत्ता (साक्षात्) केन्द्र के ऐतिहासिक अस्तित्व की भाँसा के परे आता है वह सत्ता के आरम्भ तक पहुँचा है। अन्त १ १-११।

३ देवता विचलित जगत् (११२१) पृष्ठ ४८-४९ ; 'दि विद्यामयी प्राक् सर्व-धर्मों साक्षात् (११२१) पृष्ठ ४९-५०।

४ ईसाई धर्म (विचलित) विद्या एक धर्म के रूप का प्रतीक है जिसमें धर्मिकता है।

५ मुक्तता धर्मिक रूप रूप के रूप : "इस स्मरण का कोई धर्म निम्न प्रवेश नहीं कर सकता है जिसमें धर्म सत्ता का विचारमय हो। कहीं भी कोई धर्म से सत्य परे धर्मिक धर्म सत्ता नहीं है जो जगत् के नियंत्रक हो। कोई धर्मिक धर्म विचलित ही विद्या ही धर्मिक रूप प्रवृत्त है। और कोई धर्मिक विद्या ही धर्म ही धर्मिक धर्मिक ही है। फिर जहाँ भी धर्म धर्मिक धर्मिक रूप का धर्म अस्तित्व कर सत्ता है वही धर्म सत्ता का धर्मिक धर्मिक धर्मिक है। — 'अधिमो धर्मिक विचलित (११२१), पृष्ठ ४९०।

नहीं बरन् प्रेम और समझ ही हैं।

निर्विकल्प ब्रह्मसत्ता का केवल संकेत किया जा सकता है उसकी रूपरामा मात्र की जा सकती है परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ईश्वर एक परम स्वरूप में माना जाता है। निरल्प ही वह अपने द्वारा उत्पन्न की गई वस्तुओं से बड़ा है। वह स्वयंस्वरूपी (पञ्चनल) है पर उस धर्म में नहीं जिस धर्म में हम स्वयंस्वरूप की निरल्प (परतन्त्रिणी) की व्याख्या करते हैं। उसमें मनुष्यों में पाए जानेवाले सम्पूर्ण सद्गुण हैं किन्तु एक दूसरे धर्म में। वह भला है निर्विकल्पक है पर उस तरह का भला एवं निर्विकल्पक नहीं जैसे हम हैं।^१ हम ईश्वर के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग कर सकते हैं परन्तु उसकी शक्तियाँ एक ही और समान हैं।^२

२ मानवीय संकट

वह जगत् नहीं है जो वैज्ञानिक वर्गों की सहायता से हमारी शक्तियाँ हमें दिखाती हैं। हमें केवल प्रभु के संतरंग का ही नहीं बल्कि मानव के अन्तर्भाव का भी ज्ञान होना चाहिए। उपनिषद् की शिक्षा 'आत्मा-को-जानो' (आत्मान विद्धि) मूनागिण्डों का आदेश अपने को जानो सब-आत्मज्ञान की महत्ता प्रदर्शित करते हैं। प्रारम्भ से ही धर्म-विचारकों ने व्यक्ति के रूप (वाह्यरूप) उसकी गोपन शक्तियों का पता लगाने की चेष्टा की और उसकी अस्पष्ट शक्तियों का अनुसरण करने का यत्न किया। मनुष्य स्वयं अपने लिए एक रहस्य है। सुकण्ठ ने इसे अनुभव किया और ओटो ने अपनी रचना 'फ्रेडरिच' में अस्पष्ट प्रभावशाली रूप से इसे व्यक्त किया। मनुष्य सदा उससे अधिक है जिसका वह अपने बारे में सोच पाता है। जब वह अपने को एक पदार्थ के रूप में देखता है तब वह अनुभव करने जाता है, वस्तु है जो अपने को जानता है। इस प्रकार मनुष्य सदा अपने से ऊपर जाता है। आत्मा विचारों की रूपरामा धर्म की शक्तियों तथा कष्ट एवं आनन्द के अनुभवों के परे जाती है। फिर भी वह सोचना एक भ्रम-मात्र है कि मानव-व्यक्ति अपने को ठीक-ठीक उस रूप में जान-समाक सकता है वैसे वह सब कुछ है। ओटो उन अस्पष्टशक्तियों का समाक उठाता है जिसका विश्वास था कि वे शक्तियों की शक्ति ऊपर से मानव-जीवन का दर्शन कर सकते हैं।^३

मनुष्य एक भौतिक जीव से अधिक है। मानसशास्त्र वैदिकी वा विस्तार-मात्र नहीं है। मानव प्रकृति का एक भाग ऐसा है जो अस्तित्व नहीं है, यह प्रकृत

१ सामिन्त कहता है कि ईश्वर ने हमें अवधारणा दी, वह वह वह है। कि ईश्वर ने हमें देने को शक्ति दी तथा वह अल्प है।^४

२. महर्षिब्रह्मसंहिता-प्रकरणम्। अध्याय, ३ २२।

३. ओटोपिन्ट।

निष्ठ (मान-साध्यात्मिक) पदमू ही मनुष्य को इस प्रकृति-जगत् में प्रप्रतिम बनाता है। मनुष्य केवल नैतिक बृत्ति का प्राणी नहीं है न वह मस्तिष्क का एक कण्ड मान है। वह वैदिकी मानसशास्त्र या समाजविज्ञान के विषय के रूप में जो कुछ यतता है वही तक समाप्त नहीं हो जाता।

धार्मिक चेतना की बृद्धि के लिए जो विविध सिद्धान्त प्रचारित किए जाते हैं—धार्मिक एंड्रजालिन तथा समाजशास्त्रीय के सब इस विषय में एकमत हैं कि धर्म मनुष्य के अर्थ एवं ऐकान्तिकता पर विजय पाने का एक उपाय है। पर हमें यह भय है क्यों? ऐकान्तिकता की प्रकल्पना की यह भावना क्यों है? क्या यह भयवस्तु व्यक्ति ही जागतिक उपक्रम का अन्त है या उसकी कोई और नियति है?

जहाँ तक भारतीय विचारकों का सम्बन्ध है धर्म का प्रदान मनुष्य की बौद्धिक प्रकृति धरने को जानने की उसकी विषय प्रक्रिया तथा जिस संसार में वह रहता है उसमें सम्बन्ध है। अतः धर्म अथवा मनुष्य को और प्राणियों से भिन्नता प्रदान करना है। ऐतना अथवा द्वारा नैतिक उत्तरदायित्व तथा पहुंचाती है। मनुष्य धर्मिणा से पीडित है। धर्म धर्मिणा से काम का जन्म होता है। मनुष्य पीडित या पतित अवस्था में है। जगत् धर्म को पशुस्तर से धीरे धीरे विकसित किया है और धरने धर्म ऐसी धार्मिकता का विकास कर लिया है या धर्ममन्त्र निराकरण एवं पतित है। कुछ कहते हैं—जीवन दुःख है। हम धर्म धर्म का धर्मपतता द्वारा प्राप्त विज्ञान में रहते हैं।

(धार्मिक लोचन) पतन का प्रतीकरण भी इसी समय को प्रकट करता है। मनुष्य ज्ञान-रूप का धर्म धरता है। परिणाम उच्चता पतन है। मनुष्य की विद्या में धार्मिक ज्ञान धरने की ओर एक उद्देश्य है किन्तु उसे पतन इसलिए कहा गया है कि वह मानव जीवन में एक दरार, एक अन्तर पैदा करता है उसके प्राकृतिक धर्म में एक रोग एक अन्वेषण आता है। पाप-गुण के ज्ञान-बुद्ध का धर्म धरने के बाद धार्मिक लोचन को पशुही यथार्थता के एक लक्ष्य रिस्ते में प्रकट करने का ज्ञान हुआ उसी धर्म के अन्वेषण हो गए। के अन्वेषण इसलिए हुए कि विद्या या लोचन ज्ञान के अन्तर्गत और उत्तरदायित्व ज्ञान दिया नहीं के उच्चता प्रति करने में समर्थ न हों। उसकी अवस्था को पतन की अवस्था कहा गया है क्योंकि वे एक ऐसी लोचन का अनुभव कर प्रकाश की लोचन कर रहे थे जिसकी एक धर्ममन्त्र अन्त-आन उन्हें मिली थी। 'मृष्टि का धर्ममन्त्र (जेनेसिस) की कथा को धार्मिक धर्म में नहीं ग्रहण करना चाहिए। यह एक अन्वेषण कथा या प्रतीक है जिसमें पतन के पूर्व एक धर्म की धार्मिक की अवस्था का विनाश दिनाया गया है। प्रकटकारणा में मानवीय जीवन के लिए ईश्वर की धार्मिकता है, हमारे में मानव के

आदेश मन द्वारा उस प्राकृषा के विच्छिन्न हो जाने के कारण उसके वास्तविक जीवन की झंकी है।

प्रत्येक जीवधारी अपने ढंग पर पूर्ण है अपने जीवन भक्त के अन्दर वह अपने को पूर्ण कर लेता है। निस्सन्देह वह मृत्यु के अधीन है परन्तु उसे इसका पता नहीं। यह (मृत्यु का) विचार ही मनुष्य में भय एवं एकाकीपन की भावना पैदा करता है। यह भावना उसे उसकी अपर्याप्तता का निरसन कराती है और विकास के लिए उसकी आवश्यकता को अज्ञात कराती है। भौतिक भेतना का उदय उसकी पूर्णता एवं निर्दोषता की प्राथमिक अवस्था की समाप्ति की सूचना देता है। मनुष्य अज्ञान की भावना से पीड़ित है। वह विचित्र और परेशान होकर पुष्पा है मुझे इस मृत्यु से कौन बचाएगा ? जीवन की अनिश्चितता और आत्मरक्षा की प्रेरणा में संघर्ष होता है। भौतिक जगत् में जो बढ़ता जा मुर्छा है, जब जगत् में जो आत्मरक्षा है मानवस्तर पर आकर वही निरन्तर बने रहने की कामना का रूप बन लेती है। सभी प्राणी आत्मरक्षण या जीवन-वृद्धि की ओर प्रवृत्त हैं। जो कुछ उन्हें मरने काता है उसका विरोध वे प्राणपण से करते हैं। खाल यह है मनुष्य मृत्यु और अज्ञानता या अस्तित्वहीनता का अन्त कर देगा या अज्ञानता और अस्तित्वहीनता मनुष्य का अन्त कर देगी ?

मरण-भय के निराकरण की चेष्टा में ही मानव ने प्रत्येक युग में ऐसे सूत्रों एवं हेतुमासों का आविष्कार किया जो उन दूरस्थ लोकों से सम्बन्धित हैं जहाँ मृतात्माएं सदा निवास करती हैं। प्रागैतिहासिक 'मानवद्वारा' मानव भी अपने मृतको को बचाने करता था। उसके अन्तिम निर्वाण की धारणा उसके लिए अत्यन्त ही थी। मृतक मृतक नहीं है। जगत् के परे कोई स्थान है जहाँ मृतक रहते हैं। वे अन्तिम और अज्ञान का अनुभव करेंगे उन्हें अपनी साव-सज्जा करनी होगी अपनी रक्षा करनी होगी। इसलिए लोग रात रात के लिए रात आनन्दन एवं अन्त मृतक के साथ रहे जाते हैं। जब हमारे प्रियजन हमसे से लिए जाते हैं हम उनकी स्मृतियों को अपने हृदय में सजीकर रखते हैं और विश्वास करते हैं कि वे दूसरे किसी जगत् में भी रहे हैं। हम मानते हैं कि मृत्यु किसी दूसरी दुनिया में पुनर्जन्म है।

जेटो के लिए दर्शन मनुष्य-व्यक्तिगत है। हीरेवर के लिए अज्ञानविद्या इस

१ "मानव केवल एक नरक या नरकज-वैशा, जमान में दुर्लभता है किन्तु वह निरन्तर अज्ञान अज्ञान है। उसे कुचलने के लिए अज्ञान अज्ञान के अन्त मरण करने की आवश्यकता नहीं है। एक व्यक्ति जल की एक बूँद उसे जलने के लिए कराती है। किन्तु अज्ञान उसे कुचल दे तो ही मारनेवाली शक्ति से वह बच ही रहेगा क्योंकि वह अज्ञान है कि वह मर रहा है और उस अज्ञान का जल का अर्थ अज्ञान है जो अज्ञान को अज्ञान के अन्त मरण है किन्तु अज्ञान को अज्ञान अज्ञान को जल नहीं है।"—देवदत्त वैदिक १६५।

स्वयामित संन-मात्र है तो हमारे प्राचरण में कोई गुन कोई गरिमा नहीं है। जब हमें गमती करने की स्वतन्त्रता हो फिर भी हम गमती न करें ठीक तरह काम करे तब हमारे लिए प्रससा की बात है।

मनुष्य के लिए, जीने का धर्म सम्भव को अस्तित्व प्रदान करना है। प्रत्येक क्षण हम मरिष्य हैं जो सम्भव का क्षेत्र है चुनते हुए अपना निर्माण करते हैं। जब हम सर्वकारक रूप में जीते हैं तब हम असत् की शक्तियों को बध में कर लेते हैं और अपने अन्दर के सत् की पुष्टि करते हैं। स्वतन्त्र चुनाव वास्तव में मुक्ति है। यह भूतकाम का प्रसंग नहीं है। यह एक उद्घात है विकास नहीं। मनुष्य का अस्तित्व उद्घात है क्योंकि उसे स्वतन्त्रता है। अस्तित्व रखने का धर्म है—भीड़ से बाहर निकलकर सड़ा होना आप अपने में होना अपना निर्माण करने और फिर से निर्माण करने के निश्चित तात्पर्य की पूर्ति। मनुष्य की कोई प्रकृति नहीं है एक इतिहास बकर है। धर्म के विचार से मानव प्राणी में अन्त बस्तुओं से तीव्र अन्तर है। बस्तु उत्पत्ती ही है जो वे हैं। वे अपने आपमें पूर्ण हैं। उसकी भाषा में एक बस्तु अपने-आपमें बड़ है जब केवल मनुष्य धारणा की धोर परिमाण है। टामस एक्विनास के अनुसार उसमें एक उद्देश्य की मर्यादा है।

स्वातंत्र्यपूर्ण महत्वाकांक्षा और अनासक्त प्रेम दोनों का उद्गम मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा ही है। मरिष्य मनुष्य के अस्तित्व का सच्चा कानून प्रेम अर्थात् जीवमान से धर्मबन्ध का सम्बन्ध स्थापित करना ही है किन्तु वह प्रायः इस नियम के विरुद्ध विद्रोह करता है। एक उद्घात धारणापुष्टि जो उसे धारणाबन्ध की धोर में जाती है स्वतन्त्रता के दुरुपयोग की कृति जो अपना ही नाश कर लेती है उसपर सवार हो जाती है। स्वतन्त्रता के दुरुपयोग की सम्भावना एक तत्व बन जाती है। स्वतन्त्रता का उपयोग वह स्वेच्छाचारिता विकसित करने में करता है। वह स्वेच्छाचारिता कुराई को अन्त बंती है। अन्त होने का धर्म है सम्पूर्ण कुराई की सामर्थ्य रखना किन्तु सामर्थ्य रखकर भी कोई कुराई न करना। कुराई या पाप स्वतन्त्रता का आवश्यक परिणाम नहीं है। यह उसके दुरुपयोग का परिणाम है। बोध हमारे देवताओं या नरकों में नहीं है स्वयं हमारे अपने अन्दर है। हम उत्तरदायी प्राणी हैं जो संन कर सकते हैं इच्छा होने पर अन्त या उचित की चुन सकते हैं और गमन या पाप को अस्वीकार कर सकते हैं। हम बाह्य शक्तियों के जो हमारे धरती पर नियन्त्रण रखती हैं और हमारी धारणा का धारण करती हैं विकार नहीं है।

युरिपीडीस के ट्रोइस (१८१-१७) के अनुसार, जब हेलेन ऐफ्रोडीते के हाथ में विषय विकार के रूप में होने के कारण अपने प्राचरण को उचित बताती है हेन्यूबा उसकी बातों को अमान्य कर देता है और जोषित करता है कि पेरिस के सीन्दर्य के कारण और ट्रॉय में बीजक एवं विनाशिता का बीजक बिताने की

सम्भावना के कारण हेनेन न स्वच्छा न मरे साम जाना पसन्द किया था। हेब्रुवा हेनेन से कहता है 'साइप्रिस ने नहीं तुम्हारे धपन हृदय ने तुम्ह परिस के सामने मत कर दिया था।

मानव का भक्त-बुरे का भान है। वह जिस सीमा तक मानवीय हाता है उस सीमा तक उसे मलाई या बुराई पुष्प या वाप करना ही पड़ेगा। यदि वह धपनी स्वतन्त्रता का उपयोग किए बिना बहुता फिरता है स्वयंभामित संन की भाति कार्य करता है तो वह मनुष्य नहीं रह जाता। सामान्य निरिषत क्रम को धारण समर्पण करने की घोषणा कुछ करना भी प्रच्छा है क्योंकि उस अवस्था में हम धपनी मनुष्यता का प्रमाण उपस्थित करते हैं।

किर्रोगाड के अनुधार स्वतन्त्रता का तथ्य इस चिन्ता इस मय को जन्म देता है कि कहीं हम धपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग न करें। स्वतन्त्रता का तथ्य यद्यपि मनुष्य को पशुओं के ऊपर स्थान देता है तथापि उसके साथ ही वह उसे चिन्ता या घातका से भी पून कर देता है। उगे पतन की सम्भावना की चेतना बनी रहनी है क्योंकि धपनी धारणा में वह जानता है कि कुछ उसरी प्रकृति या स्वभाव में तथा उस स्वभाव की रचना करनेवाली शक्ति में धमम्भउताए मीबुद है। विर्रोगाडें 'मही धमम्भउतामो ना धमगठियों को निरागा घोर मृत्यू-मुखी प्रस्वस्पता' कहता है। सार्न के लिए मनुष्य बही है जिसका वह मकस्य करता है जो कुछ वह धपन को बनाता है उसके प्रतिरिक्त वह घोर कुछ गहा है। जब साज काना है मानव पर धार उसका मस्तितन है तब वह प्रतिपादन करता है कि मानव की कोई तातिनक प्रकृति नहीं है। वह जो कुछ है वही धपने का बनाता है परन्तु उसे तोड गही पाना। मनुष्य वही है जो कुछ वह धपने को बनाता है। यही तात्त्विक बीड धर्म है। जब धर्तन बदान्त एव सनातन धरग्विर्ननीय धारणा की भाष कहना है ता उपमा धर्म सर्वात्मा स होता है जो निरिष्य है। ईयतिरक धारणा में ता निरय परिवर्नन हो रहा है। मनुष्य न एसा कुछ भी नहीं है जो मनुष्यहृन न हा।

साध मानवीय स्वतन्त्रता के तथ्य का हवासा देना है घोर उसपर निरागा के पान की रचना करता है। जब हम इस दुनिया में घाते हैं तो बुनाब करन के लिए विषय हाते है स्वतन्त्र होने में हम दग्धत है। माने हर तरह के निरक्षयशा (वेदधरिनिरम) का विरोध करते हैं घोर दुगवी पुष्प करते है कि मानव हम धप में पूर्ण स्वतन्त्र है कि उसका प्रत्यक काम पुष्पन मौषित है। वह निर्मी प्रयो जन पर निर्भर नहीं करता न किसी धनीन से मम्भउ है। यह स्वयं पर भविष्य न प्रयोध करन न धपनी एवमान गार्थवता पा जाता है। मनुष्य स्वयं ही धपना निपन-कानून है। उनसे स्वतन्त्र रहने को बुना मनी वह तो स्वतन्त्र होने छाने को निर्याउड था घोर है। हम मग्गना इमानिण हामी है कि निरय करना पडन है। साज के अनुधार यह धरगगा ठके घोर भायी हो जाती है जब यह अनुम

होता है कि हममें से हरएक केवल अपने लिए नहीं बल्कि सबके लिए खुदा बनकर रहता है। धारणा धकेली नहीं है बरन् दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों के बाध में बंधी है। जीवित के विचार से हम इस संसार में संसृजन-गिरत धारणाएँ (सेल्फ़ इज कम्प्यूनिकेशन) हैं। साध के मत से हमारी पसन्द वहीं तक महत्त्वपूर्ण है जहाँ तक वह शक्ति नहीं है बल्कि जीवित रहकर हमारे अस्तित्व का ही धंग बन जाती है। हमें कोई ऐसा खुदा बनना चाहिए जिस हम उन दूसरी धारणाओं के लिए उचित में सम्मिलित हों जो हमारी जैसी ही स्थितियों में हों या हा सक्ती हों। इन सबको पढ़कर हमें काष्ठ के सिद्धान्त की याद आ जाती है कि हमें कार्य इस रूप में करना चाहिए मानो हमारा प्रत्येक कर्म सब मनुष्यों के लिए अनिवार्य एक सार्वभौमिक नियम का आधार हो।

मनुष्य बौद्धिक रूप से धारणा-भावना से और नैतिक रूप में धारणा से पीड़ित है। धारणाविरोध के क्षणों में वह अपने अतीत की परीक्षा करता है उसका मन मर जाता है वह अपने बारे में अविश्वस्त होकर कभी इधर कभी उधर भटकता है। वह कटु तथा बहुत अस्वस्थ हो उठता है। रहस्य की याचना उसे डराती है उस भगता है कि वह बहुत दुर्बल अयोग्य अशिक्षित अज्ञानी बुद्ध एवं अपवित्र हो गया है। यह बुद्धी प्राणी जिसका इन्द्रिय पुष्ट अस्वस्थ से क्षीण एवं अशिक्षित है, अमानक रूप से धकेला होकर बाहरी शक्तियों से नहीं अपने ही साथ लड़ रहा है। यह विभावित अशिक्षित विधीर्न धर्म से अशिक्षित अपने साथ संवर्धित प्राणी निराशा के बोध से बन जाता है। इस विभावन से बड़ा और कोई दुःख नहीं है।

वेदिक के अर्थ सुविहित है "यह मनुष्य कैसी विविध कल्पना है! कैसा नाशील्य! कैसा दानव! कैसी विश्रुतलता! कैसा परस्पर-विरोध! कैसा विमर्श! सब वस्तुओं का निर्वाह विचारपति! कैसा कापुश्य! अतीत का कीड़ा सत्य का धारणा, अनिश्चितता एवं धर्म का गर्व अथवा का गौरव एवं मत्त।"

मानव की धारणाधरता बुद्धि-धर्म का विवेक स्वतन्त्रता एवं विस्था, जो अस्तु के अर्थ हैं ये सब मिलकर उसे धारणाधरता सुरक्षा एवं निश्चितता, सामन्त्र्य एवं साहस की जो अस्तु पर मनु के विवेक के परिणाम हैं, वाचना करने के लिए बाध्य करते हैं। अस्तु का ज्ञान भव धारणा एवं असाधन्त्र्यस्य पैदा करता है और वे अस्वस्थ जो मानव धरता के स्तर के अन्तर्गत हैं अस्तु के पक्ष में प्रमाणरूप हैं। यह अस्तु अस्तु द्वारा विहित होने को धारणा है। धर्म की व्यापक अशिक्षिता-अशिक्षिता के लिए अस्तु एक अशिक्षित जीवन की खोज—इस

सबसे प्रकट होता है कि मनुष्य को चेतना के ही मार्ग से घाये बढ़ना है। उसे ईत अधिक चेतना की सीमाओं के पार जाना ही पड़ेगा। ईस्वर द्वारा भुसा दिए जाने की भावना स्वयं ईस्वर की उपस्थिति की गवाही है। इस संसार की सदिग्धता उस पार के किसी मोड़ की घोर इंगित करती है। काम के अस्तंगत वास्तव जीवन की प्राकांक्षा है।

ध्यात्मचित बुद्धि की प्राणियों एवं स्वतन्त्रता के दुरुपयोग के कारण पतन होता है। उधार का मार्ग बुद्धि के परे जो प्रेरणा है उस तक पहुँचना और स्वतन्त्रता का उचित उपयोग करना है। प्रेम के फामूल का अपने प्राण वास्तव करने में ही स्वतन्त्रता का उचित उपयोग होता है। एक ऐसा यथार्थ है जो तर्क के बापे प कही गहरा है। यह मानव के अस्तित्व के मूल में है और इमीके कारण मनुष्य प्रकृति का प्रतिनिधय कर जाता है। हम मुमुक्षु हैं साधक हैं तीक्ष्णायत्री हैं जिनका इस धरती पर कोई स्थायी निवास या नयरी नहीं है और जिस नयरी में जाना है उसने सिध हम निरन्तर खम रहे हैं। यथायता के यथाय के कारण ही हमारे अन्दर अशांति पैदा होती है। उपनिषद् की वाणी है

असतो मा सद्गमय ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

मृत्योर्मा अमृतं गमय ।

अर्थात् अज्ञान से मुझे ज्ञान की ओर से चल अथकार से मुझे प्रकाश की ओर से चल मृत्यु से मुझे अमृत की ओर से चल।^१ ईगाई स्तान् रचयिता (गामिस्त्र) कहते हैं मैं अपने अन्तरगत से तुम्हें पुकारता हू। यह गीतज्ञान यह अशांति ही मानव-जीवन को इतना हिलचल्य बनाता है। एवहार्ट का कथन है ध्यामा की पूर्णता उस जीवन से अलग में निहित है जो पूर्णजीवन का अग घोर उसीम अन्विषिष्ट है। हे परमेश्वर ! हम तुमसे किय करतें हैं कि हमें हम अन्विष्ट जीवन में निकलने और उस संतुलन जीवन को पाने में हमारी सहायता कर।^२

मानवीय ध्यामा (सेरुक्त) जल्य ध्यामा (मैरुक्त) नहीं है। यह शुद्धचित्त ध्यामा है—ध्यामा का जो हाता चाहिए और जो बह हो सक्ती है। मदनध्यामा हम ध्यामा के प्राय सभाकारण एक ध्यामा ध्यामात्मिक ध्यामा है। यह ध्यामा विकसित होकर ध्यामात्मिक ध्यामा में परिवर्तित हो सक्ती है। मनुष्य के अग वैज्ञानिक ज्ञान का विषय नहीं है। यह मनुष्य निम्न है। यह शुद्धचित्त की मूर्तता एक अन्तर्भावना में प्राय पैदा है।^३ जिन्होंने के अनुसार ज्ञानध्यामा (मन्त्र)

१ कुराएरवक इतिर १ १ १०।

२ 'दर'स अनेता अनुशा १। पुत्र २००।

३ एरुक्त अथक एरुक्त-विषय (१ १०) में इतिरपरेरस निरुक्त है कि इरुक्त अथक एरुक्त निम्न का अने अरुक्त म अनेरुक्त का अनेरुक्त में इरुक्त है। उनसे उरुक्त अथक एरुक्त अथक

प्रत्यक्षता और निराशा से मुक्त होकर तब स्वात्म्य एवं पूर्णता-ज्ञान करती है जब 'बहु धरणी ही पूर्णत्वा से सम्बन्ध स्थापित कर उस धरि में पारदर्शक रूप से धरिष्ठित हो जाती है जिसने उसका निर्माण किया था'। स्वतन्त्रता के बिना व्यक्तित्व के पुनरुत्थन की संभावना नहीं है। स्वतन्त्रता के प्रति मनुष्य की इस चेतना में एक ऐसी संगति है जिसकी उमेदा वैज्ञानिक तर्कों द्वारा नहीं की जा सकती। स्वतन्त्रता की यह चेतना काम एवं प्रयत्न के अगु का प्रतिफल बन कर ज्ञानवासी प्राध्यात्मिक यथार्थता के साथ निश्चित रूप से सम्बन्ध है।

मानवीय प्रकृति में अपार क्षमताएं या प्रमत्तिप्रवृत्ताएं हैं, जबकि आगतिक उपभोग का कोई पूर्वनिश्चित मध्य नहीं है। स्वतन्त्र बुनाव करने की शक्ति हमें मनुष्य के लिए प्राप्ति प्रदान करती है। हम संसार की पुनर्रचना कर सकते हैं। हमारे चरित्र में जो शोष या मानस में जो त्रुटियां हैं उन्हें हम दूर कर सकते हैं। यदि हम बौद्धा करने का यत्न करेंगे तो अगु की शक्तियां हमारी सहायता करेंगी। हम धरणी चेतना में मानव-विकास की प्रक्रिया का संभालन कर सकते हैं। प्रकृति मानव-व्यक्ति में ही धरणी पूरता प्राप्त करती है क्योंकि वही सर्वनात्मक प्रक्रिया का निर्माता है। बहु अगु का अर्थ प्रतिमिति है जिसमें प्रकृति की अचेतन सर्वना चेतन सर्वना बन जाती है। अन्तर्विरोधों का अर्थ यह है कि वह विध्वंसकारी शक्तियों का सामना कर सकता है और अन्तर्विरोध प्राप्त कर शक्ति पा सकता है। मानव प्राणी एक ऐसे अर्थव्यवस्था में बहुत समय तक नहीं रह सकते जो उन्हें उनकी व्यथापूर्ण कामनाओं का बंधी बनाकर रखता है। विरोध कमसे एक अवस्था है कोई मजिब नहीं है अन्तिम पंतव्य नहीं है। यह है, किन्तु गल्ट होने पराजित होने के लिए है। यह प्राजा एवं उपमन्त्रि के बीच हल न हो सही लीचतान का प्रतीक है।

भारतीय विचारधारा हमें अपने को बन्धनमुक्त करने का धारैय देती है। हमें संसार से असांनिधपूर्व काम-सीमित जीवन से मोक्ष या धारैय जीवन में जाना है। जब तक हम उस अर्थव्यवस्था को प्राप्त नहीं करते हमें अर्थव्यवस्था में रहने। कर्म के नियम से धारैय संसार-सिद्धांत हम बात पर बल देता है कि प्रत्येक प्राणी को अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था में रहने। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों एवं प्रवृत्तियों का परिणाम है और अपने संकल्प-बल द्वारा वह

अर्थव्यवस्था को जानने है।' सोना हिन्दुधर्म ने अर्थ देखा "हम जो सब कुछ जानते हैं अर्थव्यवस्था का अर्थ है कि हम अपने को जानते हैं। यदि हमें अपने अर्थव्यवस्था में प्राप्त हुआ होय तो हम सब जान प्राप्त करने में अभी सद्यः न होते।" अर्थव्यवस्था पर अर्थव्यवस्था के अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था "आप क्या सोचते हैं कि आप क्या है? अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था है। अर्थव्यवस्था "क्यों? अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था "अर्थव्यवस्था कि हम अर्थव्यवस्था है। अर्थव्यवस्था के द्वारा हम अर्थव्यवस्था से अर्थव्यवस्था करते हैं।

इन कर्मों एवं प्रवृत्तियों का परिशोधन कर सकता है।

जब तक हम अपनी यात्रा के घन्ट या मजिम पर नहीं पहुँचते तब तक हम कर्म के ज्ञान से बचे हैं जिसका अर्थ यह है कि हमारी आकांक्षा एवं कर्म हमारी प्रवृत्ति का नियंत्रण करते हैं। हमारी वर्तमान अवस्था हमारे घटीठ का परिणाम है और अब हम जो कुछ करेंगे वह हमारे भविष्य का निर्धारण करेगा। मृत्यु एवं पुनर्जन्म इन कर्म में बाधक नहीं। अपनी वर्तमान स्थिति के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं हमें ईद्वर या अपने पासका या वर्तमान समाज-व्यवस्था को दाय देने की आवश्यकता नहीं है।^१ जैसे हम जो कुछ घाज है उसक लिए स्वयं जिम्मेदार हैं जैसे ही भविष्य में जो हूँगे उसे स्वयं ही निमित्त कर सकते हैं। हम अपनी वर्तमान अवस्था में सड़ने के लिए नहीं हैं। यदि हममें साहस एवं निश्चय है तो हम अपने भविष्य को एक मज साज म काम कर सकते हैं। कर्म नियतिवाद या भाग्यवाद नहीं है।^२ यदि हम अपनी आकांक्षाओं में सच्चे और अपने यत्नों में परके हैं तो हमसे कोई घन्टर नहीं पड़ता कि हम सफल होते हैं या नहीं। जो कुछ भी प्रवृत्ति हम करते हैं वह मूसमहीन नहीं है। बाह्य परिणाम जी भी हों घान्तरिक उन्नति तो होती ही है।

भविष्य की सामग्री अनिश्चित है। हम महला मूस्य मय मौन्द्य या फिर इनके प्रतिभूम बनतुं पैदा कर सकते हैं। इसकी जिम्मेदारी ममुष्य की अपनी है इसीलिए मानवीय स्वातन्त्र्य प्रकृति की सीमा के परे किसी वस्तु को सत्यता को लागू करता है। यह प्रकृति किजूल या अर्पणीन नहीं हो सकती क्योंकि यह मूस्यों की रचना को संभव बनाती है। संसार में एक नैतिक व्यवस्था है और प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी है। उसकी प्रवृत्ति और सत्यावरण का तब तक बराबर विकास होता जाएगा जब तक वह ममुष्य पूषठा नहीं प्राप्त कर सता। अपने ज्ञान एवं प्रकृति के विकास के लिए अवसरों की गृहता का यह निश्चय हिमू जैज एवं बौद्ध धर्मों के केन्द्रीय सिद्धांश में स एक है। इसकी परम परमात्मियों जैसे केस्ट एवं टीटन मोर्मों अनेक यहूदी एवं मुसलमान

१) महाभारत का कहना है कि हमें बचक देनवला कोई करती जज का न्यायार्थ नहीं है हमारी स-भारता ही है।

ज परम पर ज्ञानु अर्या ने बज उरवो।

अथवा संसमितो देज यमस्य चरोने विज् १।

२) कुछ कहते हैं : "जो पुरोहितो ! यदि कोई बहना है कि मनुष्य को जन्म कर्मों का अनुष्ठार ही जज जाने का अधिकार है तब तो कोई नैतिक उन्नय रह ही नहीं जात न दृग क दृग जन्म के निध अस्त ही बज जात है। पर यदि कोई बहना है कि मनुष्य को उपर कर्मों का अनुष्ठार बुराकार निस्तार है तब उस ज्ञान में अमर्कन संसार है और दृग देवता जन्म का सफल भी है। — अंगुष्ठाधिकार, ३ ११ १।

सूक्तियों कतिपय प्राथमिक ईसाई यर्षोपदेशकों तथा बाद के नास्तिकों में से भी अनुयायी प्राप्त हुए। पाइसागोरस इप्येडोक्सीड जेटी प्साटिलस ग्रीर सैविग प्रमेक जीवनों में से होकर व्यक्ति के क्रमिक विकास में विश्वास रखते थे। काष्ट तर्क करता है—शक्ति पूर्व युगों एवं मानव के बीच सामंजस्य की स्थापना का मार्ग एक जीवन में सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए हम असीम प्रगतिपूर्वता के ध्येय को एक के बाद एक घाये बढ़ावेवासे क्रमों के द्वारा सिद्ध कर सकते हैं।

घटनाओं की घाबस्मिक्ता एवं मृत्यु-विन्ता से उत्पन्न घराशा भावना आत्मा को शोष एवं पाप करने की विन्मेदापी से उत्पन्न घाघका जीवन की रिक्तता एवं निरर्थकता की भावना से उत्पन्न घघामिण एवं घघामजस्य से मुक्त कर देती है। पतन की भावना मनुष्य में उन ईश्वरीय तत्त्व की छापी है जो उनके प्रबुद्ध चेतन में पूर्णतः व्यक्त होने के लिए शोष कर रहा है। घघनी सन् स्थिति से उसके दूर हट जाने को उसकी घघिणा को दूर करना होगा और उसकी जगह विद्या की स्थापना करनी होगी। यह विमुक्त बौद्धिक कार्य नहीं है। हममें जो ईश्वर-तत्त्व है उसके प्रति बिबोह सबसे बड़ा पाप है। मनुष्य घजान में है और घजान में ही बाप की उत्पत्ति होती है।

यद्यपि आधुनिक प्रविद्या के मध्यमम से हम एक परम ब्रह्म की साधना तक पहुँचते हैं मानवीय अनुभव के विस्लेषण से ईश्वर मानव के निष्पत्त या जाता है। यदि ईश्वर और मानवीय आत्मा दोनों पुर्मत मिश्र होते तो कोई तत्त्वपूर्ण विचार या मध्यस्थता ईश्वर की सत्यता तक हमें न ले जा पाती। मानवों के लिए ईश्वर के प्रति चेतना उतनी ही मौलिक बेन है जितनी आत्मचेतना है। जिस प्रकार आत्मचेतना की श्रेणियाँ हैं वैसे ही ईश्वर के प्रति चेतना की भी श्रेणियाँ हैं। घघिकाय शोषों में यह सुनिश्च एवं धास्त होती है। केवल प्रबुद्ध आत्माओं में ही यह पूर्णतः व्यक्त होती है। ✓

३ घर्म सतयानुभव के रूप में

जब हम सतार के और मानवात्मा के प्रत्यक्ष अनुभव-सम्बन्धी शोकों पर विचार करते हैं तब हम एसी परम सता की पारणा की ओर जाने को बाध्य होते हैं जो पूज या निरपाधि सत्य एवं मुक्त विद्या है और जो मानव की अस्तित्वात्मक विधास करती है। जब तक हम बस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ दोनों प्रकार के सहाहुरणों से प्राप्त शोकों के अनुसार तर्क करते हैं तब तक यह कहा जा सकता है कि परम सता चिन्तन की एक आबस्मिक्ता और एक उपदस्थाना-भाव है फिर चाहे वह चिन्तनी ही संगत हो। अस्तित्त्व सत्य की प्रकृति के विचार की स्पष्ट अभिव्यक्ति उसकी अनुभूति ने विस्तृत जिन है। चाहे अपना स्वागत चिन्तना ही सत्यपूर्व हो एक विचार या आरणा तब तक मानस में अघरिचित या अजानबी-तो रहती है जब तक

उपर हमारे निजी अनुभव को स्वीकृति की प्राप्ति नहीं हो पाती। केवल तर्कों के सहारे हम ईश्वर के अस्तित्व को इस रूप में नहीं प्रदर्शित कर सकते कि उससे मुमुक्षु या यत्नामु को संतोष हो। तर्कों केवल बिचार का संकेत देते हैं एवं उसकी अन्तर्बस्तु का निरूपण करते हैं। और मानव के आन्तरिक मितस्य में उसके कार्य समाप्त हो बचन करते हैं। किन्तु एक बड़ी प्राचीन एवं व्यापक परम्परा है कि हम परम सत्ता को प्रत्यक्ष पहचान सकते हैं। काल एवं दूरी से विभक्त कितने ही लोगों ने परम सत्ता के अनुभव का व्यक्तिगत प्रमाण दिया है जो हमें विनम्र तथा गिष्ट बनाता है और बहुत दूर ले जाता है। इस प्रत्यक्ष अनुभूति को ही टामस एक्विनास ने 'कान्नीटियो डेई एक्सपरिमेन्सिस धर्मान् अनुभव प्राप्ति-मन्त्रा है।

प्रत्येक वस्तु का ज्ञान हमें अनुभव से ही होता है। यहाँ तक कि गणित जैसा अमूर्त विज्ञान भी कृत्रिम नियमितताओं के अनुभव पर आधारित है। धर्म-व्यवहार का आधार धर्मानुभव ही है। ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण हमें धर्म का आत्मबोध या संभवित अनुभव ही है। यदि ज्ञान या विश्वसनीय मात अनुभव ही है तो हमें अपनी ईश्वर भावनाओं को तब तक ज्ञान-रहित ही मानना पड़ेगा जब तक कि ईश्वरानुभव तक न पहुँचती हों।

एक पुराने संस्कृत श्लोक में कहा गया है कि ईश्वर की वास्तविकता का ज्ञान पूरा कथन परोक्षज्ञान है और ईश्वर की वास्तविकता का अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान है।^१ बौद्धाचार्यों के 'अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ) धर्मनी दिव्यता के सम्बन्ध में ईशा के वाक्य 'मैं सत्य हूँ' धर्म-हस्ताज के अन्तर्गत सबमें एक पारिवारिक मादुर्य है। टामस एक्विनास 'अविश्वस्यता द्वारा प्राप्त ज्ञान की बात करते हैं। जिसो को वैदिक गुण-जैसे माहम या धर्म-सम्बन्धी बातों का निरण करने के दो मार्ग हैं। कोई इन बातों का सैदान्तिक वैचारिक या धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने की कोशिशें रहित हो सकता है जबकि दूसरे में उसके अस्तित्व एवं आकांक्षा की धर्मनी धर्मन के कारण स्वयं में गुण उपरिचय होते हैं। उसमें वे गुण पूरा हो उठते हैं और धर्मनी ही सत्ता में उनका उन गुणों से अन्तर्भूत हो जाता है। हम ईश्वरीय ज्ञान का ज्ञान धर्मनास्त्र द्वारा प्राप्त कर सकते हैं और उसका ज्ञान निजी अनुभव द्वारा भी प्राप्त कर सकते हैं।^२ जैसाकि सूर्यो ज्योतिर्मिमम ने कहा था—
 ज्ञान मध्य का ज्ञान ही प्राप्त नहीं करत उनका अनुभव करते हैं। हियेन के प्रति क्रिस्टोफोर्ड के विरोध का कारण हियेन द्वारा प्रतिपादित मध्य की इस धारणा में था कि वह असाध्यनिष्ठ संगति (आम्बेसिस्टिक बनिनिस्टी) का दावा करनेवाली एक विज्ञान बस्तुनाम्बर प्रणाली है। क्रिस्टोफोर्ड के मध्य में मातम का बौद्धिक प्रमाण से

१ अ. १.५५ नि. १२. १२. १२. १२.

२ अ. १.५५ नि. १२. १२. १२. १२.

३ अ. १.५५ नि. १२. १२. १२. १२.

महीं पाया जा सकता है बरिक्त जीवन में उसकी धारणा एवं अनुभव से ही वह प्राप्त हो सकता है। तार्किक मध्यस्थता या साधन नहीं बल्कि अस्तमूर्ध होना ही धार्मिक सत्य है। सत्य अस्तित्वमूलक जीवनमूलक है। इसे जानने के लिए हम उसीके अस्तगत रहना पड़गा। इसे हमारे अस्तित्व का ही अद्य वैयक्तिक गहराई का दोष बन जाना चाहिए। जब किट्टेगार्ड कहते हैं कि धारमनिष्ठता (सम्प्रेस्टिबिटी) सत्य है तब उनका यह मतमन नहीं हीना कि मनुष्य ही सब वस्तुओं का माप है। उनका धर्मिप्राय इतना ही है कि जब तक साधक निजी रूप से सत्य को नहीं प्राप्त कर लेता तब तक सत्य सत्य नहीं है।

धार्मिक अनुसंधान शान्ति कर्ता को धार्मिक सत्य में धाम लेने पर बल देता है,—इसमें ज्ञान के विषय का स्पर्श एवं आस्वाद्य होना चाहिए। हम सत्य को देखते हैं, अनुभव करते हैं एवं उसका स्वाद लेते हैं। यह स्वाद सत्ता का सुरस्य चरित्र प्राप्त करना है। यह भागीदारी द्वारा स्वयं के महीतीकरण द्वारा अनुभव प्राप्त करना है। हम इसे सर्वमात्रण पकड़ने की चेष्टा करते हैं। ईसा प्रथम बेबा रोस (कमाडमेट) की व्याख्या इस प्रकार करते हैं 'ओ इबराहम मुनो ! हमारा प्रभु परमेश्वर एक ही है तुम अपने प्रभु ईश्वर को अपने समस्त हृदय से अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण से अपने सम्पूर्ण मन और सम्पूर्ण शक्ति में प्यार करो।' सत्य अर्थात्ता का बहूँ दर्शन है जो किसीके समस्त अस्तित्व को समुष्ट कर देता है। वह पूर्ण मानव द्वारा ही प्रकृत किया जाता है।

वह प्रत्यक्षानुभूति मानवता जितनी ही पुरानी है और किसी एक जाति या धर्म में सीमित नहीं है। इस प्रकार के अनुभव की सूचना केवल धार्मिक एवं धार्मिक जगत् में ही नहीं कला एवं प्रकृति-साहित्य में भी प्राप्त होती है। किसी महान् प्रेम में सर्वनाशक कला में वार्षिक प्रयास में धार्मिक ध्यान एवं तीव्र वैश्या के क्षणों में सत्य सौन्दर्य और धर्म के सामने हम परिवर्तनशील जगत् के अपोरेवार स्पर्श से ऊपर उठकर अचेतन एवं निरवता के अनुभव में प्रवेश करते हैं। धार्मिक विद्वान् के इन क्षणों में जब विषय और विषयी वस्तुनिष्ठ एवं धार्मिक एक अचेतनावस्था में विलीन होकर एक ही जाते हैं तब हम प्रेम एवं भुजा के परे एक ऐसी बुनियाद में पहुँच जाते हैं जहाँ पार्थिव अनुभवों की सीमा घुबली पड़ जाती है और कास स्थिर होकर बढ़ा रह जाता है। पार्थिव परलोकियों के पार प्रकाश का एक जगत् है जहाँ पहुँचकर अस्तित्व के उच्च प्रस्तों का समाधान हो जाता है और हृदय की यत्रनाए समाप्त हो जाती है। इस सत्यता का अनुभव करना इसमें रहता ही मोक्ष प्रथमा साधक जीवन है। यह सीमावद्धता धार्मिकता अस्थिरता अविद्या एवं अज्ञान से मुक्ति है। यह मानव तब पार्थिव स्वभावता की स्थिति में

रहने के लिए पुनर्जन्म ग्रहण करता है।

मोटा निर्वाण या ईश्वरीय राज्य की कल्पना हमारे वर्तमान अस्तित्व के बाद का या उससे बड़ी दूर की नहीं है। स्वर्ग का राज्य मृत्यु के बाद का विभ्रामस्वप्न नहीं है। म बहू बार्द ऐगा पदार्थ है जो किसी दिन भ्रमी पर उतरेगा। यह ता धनता का परिवर्तन एक आंतरिक विकास एक तीव्र स्पातर है। आध्यात्मिक मुक्ति बहु धावित है जिसे हम ससार के परे हो जाते हैं फिर भी उसे भेष्ट रूप से सकते हैं। यहा और धमी हम गारबत जीवन प्राप्य कर सकते हैं।

धपनी प्राकृत दुष्टि के कारण आधुनिक अस्तित्व ऐसे स्पातर एक नबीनी कारण क उवाहरणों का संगय एक अविस्वास के साथ देखता है। किन्तु पुनर्जन्म एवं नबीनीकरण अधिप्राकृतिक (सुपरनेचुरल) या अध्यात्मिक नहीं है। यह इस मिथ्या या विवादा की तांत्रिक परिणति है कि इस ससार की व्यवस्था को बदलकर उगके अदर प्रवाग करनेवासी व्यार्थ का एक और जम भी है। यह हम संसार की व्यवस्था के भीतर ही उद्यका गोपन एवं मर्यादीकरण करने उद्यका सञ्चालन करने एवं उम प्रकाशपूर्ण बनाने के लिए सर्वेव कार्यरत है।

अनुभव गुरन्त को सहज स्फूर्ति पर आधारित होता है पर इससे यह निष्पन्न तो नहीं निकलता कि यह धर्म है। यह महज स्फूर्ति तर्क एवं विचार द्वारा समर्थित है वे उमका विरोध नहीं करते। ज्ञान एवं विज्ञान (विज्ञान) साथ-साथ चलते हैं। वेगा भयबद्गीता कहती है—हमारा सवम 'ज्ञान' विज्ञानप्रहितम् है। उम निषद के साथ ध्यात के परिणाम हैं फिर भी वे तर्क युद्धरूप म उपरिमत किए गए हैं। उपनिषदों अनुसंधान या सीमाया पर जोर देती हैं।

अविनाय को बुद्धि एवं सहज स्फूर्ति कामता एव यत्न सहज प्रकृति एवं संवेग का एक निश्चय माननेवासी धारणा अममूनक है। ऐसी धमग अलग धामनाएं (पंचत्वीज) नहीं है। वे सब अद्वैत भेदियों द्वारा एक-दुसरे से विनी हूँ हैं। हम विचार-सोच में बुद्धि एक गहन प्रेरणा का भद कर सकते हैं किन्तु बाह्य में उम एक-दुसरे से पुष्क नहीं कर सकते। सब प्रकार के ज्ञान में हमारा सम्पूर्ण अविनाय काम करता है। उमकी विभिन्न धारणाओं विभिन्न प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में कार्यशील होती है। जब वेगा करते हैं कि वेबत पूजन यथाप न। पूर्ण ज्ञान हो गयता है तब उमके अन्त का अधिप्राय यही होता है कि व्यार्थ का ज्ञान प्राप्न करने में वेबत बुद्धि नहीं करन् मनुष्य अविनाय काम करता है। जब हम भौतिक वस्तुओं के परिवर्तन जम या आध्यात्मिक जगत् क अभाव को जानता पाते हैं तब हमारे अस्तित्व को विभिन्न धारणाओं का उपयोग किया जाता है। विज्ञान यन्त्राओं के प्राकृतिक जम को रसता है जब अन्त एवं यम हमग अन्तर्भावना को बात करते हैं।

बुद्धि एवं धर्म अन्तर्लि का सम्बन्ध वेगा ही है वेगा धम का धमी

समाप्त नहीं कर सकते। बोधार्थों के प्रकटमात्र छोड़ दिए जाने पर मस्तिष्क की प्रतिघम्य विद्रुमता मानसिक संतुलन को बाधित पहुँचा सकती है। बहिर्दृष्टता ध्यानस्थानिरेक प्रत्याप उक्तवना—ये सब प्राय्यात्मिक अनुभव के लिए अनिवार्य नहीं है। ये छप श्रोतों से उद्भूत हो सकते हैं। वास्तविक ब्रह्मदान कर्मण और धुमक नहीं बरम् संसाधन नृति है।

प्राय्यात्मिक अनुभूति में रचनारमक तत्त्व उसकी मनोबैज्ञानिक सह-सामग्री नहीं है बल्कि वह प्राय्यात्मिक परिवर्तन है जो जाति, भ्रान्त्य, जीवन्त सतर्कता तथा प्रमत्त वेदना इत्यादि अंत-करण क फलों में, उपसद्विषयों में धपने को व्यक्त करता है। स्वयं धपने और सत्य के प्रतिम श्रोतों के बीच धाराज-प्रदान का एक उच्च सम्बन्ध स्थापित हो जाने के साथ एक नये प्रकार के जीवन का विकास होता है। इस अनुभव का एक क्रियारमक मूस्य है क्योंकि यह धारणा की महुराई में पड़ी शक्तियों—बुद्धि भावना और संकल्प को संघचित कर देता है और सम्पूर्ण व्यक्तित्व को एकत्व प्रदान करता है। सामान्य स्त्री-पुरुषों में मस्तिष्क एवं धरित्र की मूलन विधेयताएँ प्रकट हो जाती हैं। ऐसी विधेयताएँ जो धपने धन्वर ईदबरीय ज्योति का प्रकानित करती हैं।

एक ऐसी शक्ति है या पकड़ती है 'मेरे असात मस्तिष्कों को ऐसी धारा धीन बहनामाओं को जो जसत यथादा बोध प्राप्त कर भेजो है जितना टगरी बुद्धि कभी भी पहल कर सकती है।' ✓

पाँचवां अध्याय आध्यात्मिक जीवन और जीवित धर्म

समस्त धर्म ऐसे श्रुतियों वा दृष्टियों के निजी अनुभवों पर आधारित हैं जिन्हें परि-
बतन एवं आवागमन की इस दुनिया की परिधि में धीरे-धीरे उसके बाहर भी एक असीम
आध्यात्मिक सत्ता की उपस्थिति का प्रत्यक्ष बोध था। परम सत्ता अथवा परमेश्वर
के साथ एकत्व की मिलाप की निजी अनुभूति मानव-जाति के समस्त धर्मों की एक
सामान्य विशेषता रही है और उसकी मूलमा कमी नहीं दूती।

१ हिन्दूधर्म

प्राचीन काल से ही भारतवासी ईश्वर के प्रत्यक्ष अनुभव के रूप में धर्म मानना
से प्रत्यक्ष प्रमाणित रहे हैं। विद्या, पुष्टि और बोध ही उपनिषद् का मन्त्र है। यह
एक नये प्रकार का चिन्तन है जिसमें सम्पूर्ण मानव न कि केवल उसकी बुद्धि का
योग है। ब्रह्मानुभव प्रत्यक्ष एवं किन्मात्मक रूप से सत्य में भाग लेना है। वह अपनी
सत्ता की बहुराई में अतीन्द्रिय सत्त्व के साथ पूर्ण अभेदत्व की पुष्टि है। इस अभेदत्व
या एकत्व का ज्ञान चेतना के ऊर्ध्वतम स्तरों पर सहज स्फूर्ति से होता है। यह अनु-
भव स्वतः प्रमाण है स्वमसिद्ध है।

उपनिषदों अन्तरात्मा एवं परमात्मा अथवा ब्रह्म की एकता की पुष्टि करती
हैं। "यदि एक मनुष्य दूसरे देव की पूजा-उपासना करता है वह मोचते हुए कि वह
एक है और उपास्यदेव दूसरा है तब वह सत्त्व को जानता ही नहीं। फिर कहा
गया है "जो सबमें रहता है और सबके अन्दर है जिसे सब प्राणी नहीं जानते
पर सब प्राणी ही जिसकी देह है वही तुम्हारी आत्मा है तुम्हारे अन्दर का सासन्
करनेवासी अमर आत्मा।

यदि मनुष्य अपने अन्दर के अमर को नहीं पहचान पाता तो वह कर्म के
आबसक्तता के अधीन हो जाता है। वह एक कठमुठसी बन जाता है जिसे प्रकृत
अशक्तियों इधर-उधर घुँसती रहती हैं। वह कुछ नहीं करता किन्तु उसे कुछ न
कुछ होता रहता है। मनुष्य एक अद्वितीय जीव है। अज्ञानता का बोध एक ऐसे पदार्थ
के स्वाभाविक ही अनुभूति के कारण होता है जो सम्पूर्ण परिवर्तनों तथा अनुकरण

मूर्तियों में से हैं।

हिन्दूधर्म का सत्य मानव-जाति को नहीं बच देता है। मानव-प्रकृति का साम्यारिक्क रूपान्तरण करता है। धर्म बस्तुतः पुनर्जन्म, 'त्रितीय जन्म' है। यह द्वितीय जन्म-ग्रहण प्रत्यक्ष मानव ही सम्बन्धित है। इसका मतलब मुझ ही जाना गया बोध है जन्मद्वार स्तर पर पहुँचना है। मनुष्य काल एवं निश्चयता के दो स्तरों पर बसा है। दोनों के बीच का अंतर गुणात्मक है। काल का सन्धारमक विस्तार निश्चयता का उद्वेग नहीं कर सकता। 'भास्वयुत' कुतेन' अपनिषद् का बचन है। किसी भी परिमाण में ही बँसवार का धनुजब हमें शास्वत की पंकी नहीं करा सकता। हमारी चिन्तना को काल के परे, सत्य के एक दूसरे ही स्तर पर ले जाना होगा।

योगसूत्र में साम्यारिक्क जीवन-हासल के लिए श्रद्धा तथा ध्यान प्रादि के स्थान का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

हिन्दू, बौद्ध और सिख ईसाई एवं इस्लाम धर्मादि भारतीय धर्मों के पूरे इतिहास में जीवन के नवीकरण तथा प्रातीक्षिप्य चेतना की प्राप्ति पर उद्योगे व्याधा खोर किया है जिसका साकार ईश्वर की उपासना पर—वद्यपि प्रास्तिक धर्मों में अतका भी बड़ा महत्त्व है। आज भी बहुतेरे जन ऐसी चेतना प्राप्त कर लेने का लक्ष्य सामने रखते हैं जिसमें बस्तुपरक एवं प्रात्मपरक दोनों एक प्रयेदावस्था में विलीन हो जाते हैं। प्रात्य-विज्ञान प्रवस्था में व्यक्तिगत भावना को ऐसा धनुजब होता है जैसे प्रात्य की सत्ता उपस्थिति ने उद्यपर प्राकमण करके उसे बाधे घोर से धपने प्रन्धर हुआ निमा है घोर बहु इत धनुमुति के नाच उठता है कि जिसे उभा से खोज रहा या बड़ी भाव मिल गया है।

२ ताम्रोभाव

ताम्रो-स्ने (छ्पी सताब्दी ई० पू०) से भी पहले चीनी भाष 'ताम्रो' का ऐसी धरम सत्ता के रूप में मानते थे जो स्वर्ण की सीमा के परे तथा उद्यसे भी ऊँची थी और काल के धारम्भ तथा व्यक्त ईश्वर के पूर्व भी जिसका धपना प्रास्तित्व था। यह निरव धपरिवर्तनशील सर्वव्यापक सिद्धान्त है। सम्पूर्ण विकास जिसकी प्राति स्थिति है। यह धमस्त अस्तित्व का प्रादि कारण है। यही स्वर्ण काटा एवं सृष्टि दोनों में धपने को व्यक्त करता है। यह सम्पूर्ण धूम प्रपंच का मूल है। यह बहु सिद्धान्त है जिसके सहारे सम्पूर्ण प्रकृति व्यबस्थित एवं प्रास्तित्व होती है। ताम्रो बहु प्रादिशोत है जिसका सब बस्तुएं उद्भूत होती हैं। यह बहु लक्ष्य है जिसमें घोर सब बस्तुएं प्राबधित हैं।

इस सिद्धान्त का वर्णन किसी नाम के द्वारा नहीं किया जा सकता। यह एक धर्म—'ताम्रो' है। इस निर्वेधारमक नकारात्मक धर्मों द्वारा इसके बारे में कुछ

कह सकते हैं जैसे यह कि वह संघर्षरहित गन्धर्षरहित पदाघर्षरहित या प्रभौतिक है। इस तापो से उस महाचकित का जन्म होता है जो जगत् का भौतिक कारण है। उससे वा श्यामिक राज्य प्राविर्भूत होते हैं—योग एव यिन, नृर श्रीर माडा प्रजा एव प्रामा। फिर इन्द्रसुख्य (आकाश) पृथ्वी और मनुष्य का जन्म होता है तथा इनकी पारम्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं से फिर प्रायः जीव जन्म पाते हैं।

तापो मनुष्य में वर्तमान है, यद्यपि वह सामान्यतः अभ्यस्त है। यदि हम पुनः प्रपनी चान्ति एवं स्थिरता प्राप्त करनी है तो तापो की शोच में निरुक्त पड़ना चाहिए।

श्रीमती राय 'तापो त्रेह-भिन्नु' हम उस शून्यता एवं कामना के निर्वाण की स्थिति प्राप्त करने का महत्त्व बताता है। केवल इसी तरह तापो प्राप्त किया जा सकता है। साधो-स्ये कहते हैं "जो कोई पार्थिव कामनाओं से मत्वा के लिए रहित हो गया है केवल वही तापो के आध्यात्मिक सार-रत्न को प्राप्त कर सकता है। पुरु आरमारण्य इमकी आरस्यज गत है। हम सम्पूर्ण पूर्वाग्रहों पूर्वाधारणाओं को छोड़ना होगा बौद्धिक चेतना को एक घोर रत्न देना होगा घोर बिचार एवं भावना के प्रवेश द्वार को तापो के प्रवेश के लिए खोल देना होगा। यह वही आवश्यक है जिसे तेषु वा मुक्ति की प्रवर्धन कहते हैं।

तापोधर्मो प्राकारा का मध्य तापो से पञ्च प्राप्त करना है—बहु भवस्या निममे मनुष्य संसार के विधि-नियमों द्वारा लगाई सीमाओं से मुक्त होकर तापो का अनुकूल बाह्य बन जाता है। जब यह एकल विद्य हो जाता है हम स्थिरता और चान्ति प्राप्त कर लेते हैं। लो-दिया कहते हैं "जो मनुष्य तापो से सार्व प्रत्य स्थापित कर लेता है वह बाह्य पदाओं से भी पवित्र स्वर्ण की स्थिति में प्रवेश कर जाता है और उनमें से कोई भी उसे हानि पहुँचाने या उसके मार्ग में बाधा डालने में समर्थ नहीं होता।

कारतविक गुण शान्त म तापो की स्वप्रभुत अधिप्यति है न कि भौतिक आदेशों का अधिप्य पानन। गुण भर्षान् गुण तमी स्वतः गित पदत है जब गुण तापो उत्पन्न रहता है।

श्रीमती को तापो की गुण शक्ति प्राप्त है इसलिए प्रत्येक को दूरियों क प्रति महानुभूति का आधार बनना ही चाहिए। 'भय के प्रति मैं भना हाऊगा पर जो दुरे है उनके प्रति भी भना ही उँगा क्योंकि इसमें उन सबको भी मैं भना बना लूँगा।"

ऐन बौद्धधर्म में ध्यान पर बहुत जोर दिया गया है। शील के तापो एवं बौद्ध धर्मों में अनेक रहस्यवादी संत हो गए हैं।

३. यहूदी धर्म

हिब्रू भाषा या पर्शियाई भाषा के ईश्वर-वाणी ईस्राएलीय या वेदमयी चेतना में सुनाई देती है। मिनी अनुभव के कारण वास्तवीय वचन जीवित सत्य बन जाते हैं। गिरि श्रुय पर बैठे मूसा एवं गुफास्वित्त एमिआह का ईश्वर प्रणिधान इसके उदाहरण हैं। निर्गमन-सत्य (एक घाँट गन्धोइस—इज़ील) के तृतीय अध्याय में हम बताया गया है कि 'सत्य ईश्वर या ईश्वर का परिष्ठा मूसा के सामने एक मन्त्री के बीच से प्रमिदित्वा के रूप में प्रकट हुआ। मूसा ने देखा कि मन्त्री कम रही है किन्तु वह जली नहीं। तब मूसा ने कहा 'मैं एक घोर ह्मकर इस महान दस्य को हेतुगा कि मन्त्री क्यों नहीं बनती। तब गभु ने उनके काठी के बीच से पुकारकर बुलाया घोर कला सहरदार इपर न बडो घपने पीरो से जुने घलग कर हो नयोकि जहा मुम लडे हो बड पवित्र भूमि है। तब मूसा ने घपना मुह धिया गिया क्वाकि उरो ईश्वर की घोर देखने में भय लगता था। इसाया ने ईश्वर का जिस प्रकार वर्णन किया उससे परम सत्ता को सर्वप्रभावशक्तता प्रकट होती है घोर इमें भयबद्दीना के विवरण की याद या जाती है। यह जगत् ईश्वर का प्रवाचित प्रकाश है। ईश्वर के लिए धानवात्मा में जो घनूप्य व्यास है वह ईसाई स्तोत्रकार (सामिस्त) के इस उद्गार में प्रकट हुई है 'स्वर्ग में भग्न तुम्हारे सिवा घोर क्या है? इस धरिती पर सिवा तुम्हारे कोई ऐसा नहीं है जिसको कामना में कर्क। 'अहा! मैंने तुम्हें सञ्चर प्रेम के साथ बाहा है घोर इसीलिए तुम्हारी प्रेमपूर्ण इया के महारे मैंने तुम्हें घपने पास लीच लिया है।'^१

जब प्लेटो एवं घरस्तू ने इन्वो के साथ यहूदीधर्म के उत्पन्नता का अध्ययन किया गया तब उससे यहूदी घोर मूतानी विचारधाराओं के एक घनूप्य तमन्वय का प्राविर्भाव हुआ जिसके प्रमुख ग्रन्थ पीसो की पुस्तकें 'साबोमन का विवेक घोर यूसुफिसम द्वारा सुरक्षित धरिस्टोभ्यूसम की स्फुट रचनाएँ हैं। धरिस्टोभ्यूसम ईश्वर-सम्बन्धी यहूदी सिद्धांत को पुष्टि करता है कि वह एकसाय ही अनुभववादीत घोर घन्ठायीमी है। वह जगत् से बडा है उमसे जिन है फिर भी घपन बोप से विवेक से बड जगत् में कायशीम है। यह जगत् अभीसे मिक्ला है किन्तु उममें घलय इसका कोई घस्तिग्व नहीं है। ईश्वर घपन स्वभा में है किन्तु फिर भी 'यह घरता। उतका जगत्प्रभव है।

पवित्र ईश्वर घपवित्र मनुष्यों के सम्पर्क में नहीं या सरुता किन्तु उरुके धरिस्टे या सन्तै हैं। धरिस्टे ईश्वर से उद्भूत है, वे देव से निकले मस है। प्रजा को

१ ११।

२ 'भय' ०२ २२।

३ 'वेरेमिया' ३१ : ६।

(रीजन) है जिसमें पिता-माता दोनों के गुण मिलते हैं।^१ अथ सात सिद्धांत ये हैं क्या न्याय सौम्य विजय कीति आधार एवं राजत्व। 'बोहार प्रार्थना की पहली प्राप्पारिमकता तथा भौतिक अथर्व में परिवर्तन सामे की पक्ति पर बल देता है। मध्ययुगीन यहूदी पाण्डित्य के प्रमुख व्याख्याता रमन थे। वे सब नियेयामक मार्ग पर ही जोर देते हैं। इस सम्बन्ध में स्पिनोज़ा का 'मीतिपात्रक (एचिकन) नामिक बीजन के लिए अत्यन्त महत्त्व की वस्तु है।

४ पुनानी धर्म

प्राचीन पुनानी धर्म में दो प्रकार की विचारधाराएं मिलती हैं—होमरीय (होमरिक) एवं रहस्यवादी (मिस्टिक)। इस्लामीयनीय धर्म में वर्तनकर्ता ही सर्वोच्च वीक्षित व्यक्ति है। यह स्वयं सब बातें बैलता है और अपनी ही पाखों से देखे प्रमाणों के कारण अपनी बुद्धि के विषय में विद्वस्त होता है। वीक्षित व्यक्ति कोई बात नहीं चीघटा वरन् ममुचित तैयारी के बाद एक अनुभव से गुजरता है। इस्लाम के विषय में कोई धर्मसिद्धान्त नहीं है। कवि सोफोक्लीस एवं विचारक पौसीनोटस परलोक के मुक्त को केवल उन्ही लोगों के लिए सीमित मानते हैं जो इस्लाम के रहस्य-ज्ञान के लिए वीक्षित किए गए हैं। सित्तरो यह मत प्रकट करता है कि एवेंस ने इस्लाम के रहस्यों से घण्टी और किसी बात की उद्घाटना नहीं की—यह बात बीजन को व्यवस्थित तथा सम्म बनाने एवं मरु में भाषा प्रदान करने लोगों के साथ है।

आयोनीसीय रहस्यों के साथ तीस इपॉग्राफ तथा कई बंगाली रीतियों के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु जब वे धार्मिक के नाम के साथ संयुक्त हो जाते हैं तब उनका एक महत्त्वपूर्ण पक्ष (पहलू) प्रकट होता है। धार्मिक समाजों में सामान्यतः आयोनिडस की उपासना प्रचलित थी यद्यपि कभी-कभी और बेबता भी उसका स्वान से लेते थे। जो ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अकथित रहते थे तथा मानसिक शांति एवं परिस्थिति के घाघातों के बीच प्राणा और विश्वास पूर्ण स्वान प्राप्त करना चाहते थे वे ही रहस्यात्मक धर्मों की ओर आकर्षित होते थे।

फेटी एवं फाटिस में दोनों आराएं मिल जाती हैं। जेडी के लिए बीजन का लक्ष्य है "ईश्वर उद्घु होना।" "धन्नी धर्मधीनता ईश्वर का लावी कार्य कर्ता बन जाता है।" पालीन एविस्टिस तथा अनुयं बर्नपदिस (कोयं बास्केत) में हमें वीजा एवं ससर्म (कम्पुनियन) की रीतियों पर रहस्यात्मक धर्मों के प्रभाव

१ वे तीसरी संस्करण के प्रथम, प्रथम वर्ष अथर्व का इति से मिलते हुए हैं।

२ 'डी सेगोवस' १४।

३ 'वर्को'।

दृष्टिगत होते हैं। धार्मिक तथा दार्शनिक रहस्यों के प्रत्येक बोधक तत्त्व ईसाइयों के श्रेयवादी (नास्टिक) सम्प्रदायों द्वारा ग्रहण कर लिए गए हैं।

प्लाटिनस (२०१-२०० ई०) कहता है कि उसका सिद्धांत नया नहीं है। 'महं धर्म-सिद्धान्त मधीन नहीं है, अत्यन्त प्राचीन काल से लोग इसको मानते रहे हैं यद्यपि स्पष्ट रूप से इसे कभी विकसित नहीं किया गया। हम केवल प्राचीन ऋषियों के बुभाविवे होन की इच्छा रखते हैं तथा स्वयं पेटो का प्रमाण देकर महं सिद्धांत चाहते हैं कि उन भागों की बही राय ही जो हमारी है।' पौरकाइती के अनुसार जब तक प्लाटिनस उसके सम्पर्क में रहा उस धर्मांध मचार धर्मतरा पर (प्लाटिनस को) ईदबयानुभव हुआ। उसके मित चिन्तितक युस्टोनियस ने उसक इन अन्तिम शब्दों को सुना था "इसके पहले कि मेरे अन्दर मित ई-बरीय तत्त्व निकलकर अन्त में निहित ई-बरीय तत्त्व में मिलकर एक हो जाए, मनुष्यही प्रतीसा कर रहा था।"

परम सत्ता अस्तित्व के जीवन के पर है। महं जीव के परे आमरितावस्था में रहती है। हम इसे गुन नहीं कह सकते महं तो पूर्णत्व है। यह सुन्दर नहीं मी-म है। प्लाटिनस ईदबयानुभव ईदबयानुभव में भरकरता है। जिस ईदबयानुभव की हय उपासना करते हैं वह धर्मिष्पनि है प्रकाश है धर्मिष्पनिकर्ता प्रकाशकर्ता नहीं। धर्मिष्पनि के प्रकाश (रेवेमेगन) के शीत को अन्दर नहीं किया जा सकता। बुद्धि का मन्व्य वह परम अके-बर है अन्वय का इच्छा का लक्ष्य गुन या मनाई है प्रेम एवं प्रयास का लक्ष्य मी-म है। जैसा कि इन्वयु० धार इज कहते हैं "परम (एपमोस्पूट) हाता हो चाहिए—महं ग्याम का तक का निष्पय है वह होगा ही—महं नीति का मदाचरय का निष्पय है वह है—यह धर्म-निष्पय धारता का धर्मिष्पय है।" हम परम सत्ता की इमीमिण जान सकते हैं कि हम स्वयं भी धर्मो गहराई में नहीं गरय हैं। हम परमात्मा (अस्तित्व स्पिरिट) को धर्मगत तर्क द्वारा नहीं करन् किसी ऐम धार्मिक मर्मण द्वारा जिसके बारे में हम का म तर्क कर सकते हैं उन मर्मण नहीं देकर पाते हैं। हमें विदबयानुभव ही होगा कि जब धारता धर्मिष्पय एक प्रकाश का अन्वय पाती है तब उनमें लक्ष्य होगा है। हमें विदबयानुभव ही पड़ेगा कि जब ईदबयानुभव मर्मणगदाता के मूह में माता है और उनमें जीवन देता है तब वह उनमें अन्वय है धारता का मन्वय धर्म उन ग्यामि का लक्ष्य करता और निमी कूने प्रकाश के द्वारा नहीं जती प्रकाश के द्वारा जमे

१ निष्पय १:१५।

२ इन्वयानुभव १:१-११। = १०।

३ वही १:१०-१५।

४ 'लक्ष्यकर्ता' का मन्वय इन्वयानुभव १:१५-१६। 'निष्पय' का मन्वय इन्वयानुभव १:१६-१७।

पकड़ रखता है—ठीक उसी तरह जैसे हम गूरु को उसके ही प्रकाश में प्रतिरिक्त सम्य किसी प्रकार द्वारा नहीं देख सकते । 'यह ध्यानन्द-बिज्ञानता की स्थिति एक बहुत गूह्य दृश्य है और प्रायःस्विकृत विक्रम के दिग्दर्शक पर पहुँचकर ही प्राप्त होती है । पाण्डित्यी प्रायःस्विकृत और प्रायःस्विकृत में प्साटिमम के पश्चात् नव-प्लेटों का' को विवक्षित किया ।

५ अरधुस्त्री धर्म

यद्यपि अरधुस्त्रीधर्मो (पारधुस्त्री) की सग्या बोझी है किन्तु अरधुस्त्री की भाषाओं में निहित विचार धर्मो एवं सपत्नी-महत्ता में सार्वभौतिक हैं । कहा जाता है कि स्वयं अरधुस्त्री ने बरतीमाता की इस प्रार्थना पर अग्न्य प्रकृत किया था कि पाप के निवृत्त एक निर्मूलन में वे मानव-जाति की सहायता करे । अरधुस्त्री महत्ता कहते हैं कि बही 'एकमात्र ऐसे वे जो हमारी सभ्यता के प्राणियों का पालन करते थे । कहा जाता है कि जब अरधुस्त्री अरधु-मरवा के विधि नियमों पर ध्यान सम्य के तब हीतान ऐषो-मैग्यु ने इस धर्म पर उग्र समस्त अगत् का एकाधिपत्य प्रदान करने का प्रलोभन दिया कि अरधु-मरवा में उलझी का निष्ठा है उसे वे तिसाँ प्रसिद्ध हैं । अरधुस्त्री ने प्रसिद्ध इसी 'अरधु-धर्म' का पाठ पुरु किया और पापारमा भाव बढ़ा हुआ । यह क्या एक ऐसे प्रायःस्विकृत सफट की बात कहती है जिससे मिथ्या के विपक्ष सत्य एक सौचित्य का मार्ग चुनने पर अरधुस्त्री को मुबारना पड़ा था । मनुष्य की प्रकृति में ही ईश्वर है । बुराई की, पाप की अविद्यता मनुष्य के बाहर नहीं प्रत्यक्ष ही है । जब कहा जाता है कि मनुष्य को पापारमाओं प्रेतात्माओं में प्रविष्ट कर रखा है तब इसका अर्थ यही होता है कि वह कुप्येत्तार्यों एवं दुर्बिचारों के प्रभाव में है । अतः यह इन प्रभावों के अनुकूल हो जाता है इसलिए उसका विनाश कर जाता है । बुरी अविद्यता स्वप्न ही प्रथिमान एकमात्र सत्य के बाह्य रूपों को समझने में अज्ञान—इन सबका सामूहिक रूप से ही हीतान या पापारमा कहा जाता है । अरधुस्त्री ने हीतान को पराजित कर दिया इसका प्रायःस्विकृत ही है कि न इन शक्तियों के धर्म भुंके नहीं । उनके प्रायःस्विकृत से प्रकट होता है कि मनुष्य स्वयं अपने माग्य का निवृत्त है । पापारमा का जिस 'प्रोल्ड टेस्गमेण्ट' (पुरानी धर्म-पुस्तक) के प्रायःस्विकृत संस्करणों में हीतान कहा गया है उत्तर 'तलिन' अवेस्ता के ऐषो-मैग्यु से बढ़ा सादृश्य है ।

अरधु-मरवा परमेस्वर है वह वेतन और अज्ञ का स्वामी तथा वह ईश्वर है जिससे पुरुष एक प्रकृति दोनों का उद्भव हुआ है । उसके साथ ही पवित्र धर्म है जो पिता-पदा व माता-पदा की तीन-तीन किरणों से सम्बद्ध है । वे वस्तुतः परम गता

के धर्म या उद्योगे मिश्रित एक हैं। 'भ्रमा' पहली शक्ति है। यह ईश्वर के उस संकल्प का प्रतिनिधित्व करती है जिससे जगत् की योजना की। यह सत्य एव प्रथम शक्ति का प्रतिनिधि है। दूसरी है वाह-मना जो परम सत्ता या परमेश्वर के प्रथम का प्रतीक है। तीसरी है क्षात्र जो परमेश्वर की सृजन-शक्ति का प्रतिनिधि है। चौथी 'धर्मोत्ती परम का मातृत्व-पक्ष—धर्म एव महान् शक्ति का प्रतीक है। यह धर्मोत्पत्तिवासी भावना है। 'होस्वतात बहु धारदा है जो प्रत्येक मानव में वर्तमान है—धार्मिक विचार का स्वर। अन्तिम 'धर्मोत्पत्ति धर्मोत्पत्ति का स्वर है। ये यहाँ उल्लिखित पुरुष सत्ताएँ नहीं हैं बल्कि परमेश्वर का धर्मोत्पत्ति हैं।

अरुण धर्मोत्पत्ति करते हैं कि इस परमेश्वर में मिलकर एक हो जाना ही सर्वोच्च धारदा है और इस एक पदार्थ का मार्ग भ्रमा है जिसमें हम मस्तिष्क द्वारा एवं धारदा की पवित्रता प्राप्त कर सकते हैं। 'भ्रमा द्वारा हमें तुम्हारी शक्ति प्राप्त हो हमें तुम्हारे निकट आ सकें और तुममें पूर्णतः निमग्न हो जाएं। "केवल एक ही मार्ग है—भ्रमा का मार्ग। और सब मार्ग मिथ्या हैं।" (यसना ६० १२ ७१, ११)।

भ्रमेष्टा की भ्रमा और वैदिक शक्त एक ही शक्ति के दो रूप हैं और भारतीय धर्मों एवं ईशानियों के पुरुष होने के पहले ही इसके अस्तित्व धर्म का उनमें पूरक विकास हुआ था। सर्वोच्च तत्त्व अहुर-अरदा धर्मोत्पत्तिवासी विद्वानों ने अनुमान, जो उसकी इच्छा व्यक्त करते हैं कार्य करता है। भ्रमा के नियमों के अनुसार प्रजापति उपक्रम धर्मोत्पत्ति की धोर प्रगति कर रहा है। सन्तान ही भ्रमा की सर्वोच्च प्रजा का समझते हैं और जगत् की भावना के अनुसार काम करते हैं। वेधम परमेश्वर के प्रथम से किए गए काम हो हमें धामन् देते हैं कि स्वाध्याय किए गए काम। स्वाध्यायित कर्म ही वह काम है जिससे धर्मोत्पत्ति मानव प्राणी अपने धार्मिक ब्रह्मण्य को प्राप्त करते हैं और संसार की प्रगति में सहायक होते हैं।

अरुण धर्म में जो प्रथम है वह धर्म-जगत् का भी धर्म धर्म में से होता है। प्रायः मान की २ १२ १४ तथा २१ इन धार नियमों को अहुर अरुण की मानाहार नहीं करने। कुछ ही ऐसे हैं जो धर्म के गुरे धारदा मर्दाने में किसी प्रकार का धर्म नहीं ग्रहण करते।

अरुण धर्म का धार्मिक है कि जो उनको निराशा का धर्मोत्पत्ति करने उन्हें धार्मिक जीवन प्राप्त होगा। यह एक रक्षक है जिसके मुमुक्षु का धामन् रगत है। धर्म-धाम अर्थात्-धार्मिक का अर्थ धार्मिक उपक्रम का धर्म तत्त्व धर्मोत्पत्ति। इसके धर्म धार्मिक की धर्मोत्पत्ति का पूरक धारदा हुआ प्रारम्भ और धर्म की धार्मिक धर्मोत्पत्ति का धर्मोत्पत्ति का धर्मोत्पत्ति हो जाएगा। धर्मोत्पत्ति का धर्मोत्पत्ति धर्मोत्पत्ति

प्राप्त करना है—ठीक उसी तरह जैसे हम सूर्य को उसके ही प्रकाश के प्रतिरिक्त प्रकाश बिना प्रकाश द्वारा नहीं देख सकते। 'यह ध्यान-वित्तमता की स्थिति एवं बहुमुख्य रूप है और ध्यायारम्भ विद्या के निगर पर पहुँचकर ही प्राप्त होती है। पाण्ड्याद्री ध्यायारम्भकतः और प्रोजनस मे व्याप्तिस क परचात् नय-मेटो बाद को रिक्तित प्रिया।

३. अरधुस्त्री धर्म

यद्यपि अरधुस्त्रियो (पारसिया) की संस्था याज्ञा है किन्तु अरधुस्त्र की गाथाओं में निहित विचार पुन्नीर एव अपनी महत्ता में सार्वसिद्ध है। कहा जाता है कि स्वयं अरधुस्त्र ने अरणीमाता की इस प्राप्ति पर जन्म ग्रहण किया था कि पाप के नियन्त्रण एवं निर्मूलन में वे मानव-जाति की सहायता करें। अरधुस्त्र मन्त्र कहते हैं कि वही 'ऊरुमात्र एव य जो हमारी सम्पूर्ण ध्यायारम्भों का पालन करते थे। कहा जाता है कि जब अरधुस्त्र अरधु-मन्त्रा के विधि-नियमों पर ध्यान मग्न थे तब अरधुस्त्र ने इस एत पर उन्हें समस्त जगत् का एकापिपर्य प्रदान करने का प्रलोभन दिया कि अरधु-मन्त्र में उनकी का निष्ठा है उरो के तिला जमि ब है। अरधुस्त्र ने प्रसिद्ध स्तोत्र 'अरधु-ज्ये' का पाठ शुरू किया और पापात्मा भाग सड़ा हुआ। यह क्या एव ऐसे ध्यायारम्भक सकट की बात कहती है जिसने मिथ्या के विरुद्ध उत्पन्न एव प्रीतिर्य का भाग जूने पर अरधुस्त्र को गुजरना पड़ा था। मनुष्य की प्रकृति में ही ईश्वर है। बुराई की, पाप की शक्तियाँ मनुष्य के बाहर नहीं आती हैं। जब कहा जाता है कि मनुष्य को पापात्माओं प्रेतात्माओं में अभिमान कर रहा है तब इसका अर्थ यही होता है कि वह दुष्चरणाओं एवं दुर्बलाओं के प्रभाव में है। यदि वह उन प्रभावों के अनुबन्ध हो जाता है इसलिए उसका विद्याम स्रज जाता है। बुरी शक्तियाँ स्वप्न रूप में ध्यायारम्भ एव ध्यायारम्भों का बाध बना को समझने में सक्षम—इन सबका सामूहिक रूप में ही अरधुस्त्र या पापात्मा कहा जाता है। अरधुस्त्र ने अरधुस्त्र को पराजित कर दिया इसका प्रायय यही है कि वे इन शक्तियों के धारण नहीं। उनके ध्यायारम्भ से प्रकट होता है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का नियन्त्रण है। पापात्मा का जिसे 'प्रोस्टेटे' (पुस्तानी धर्म-पुस्तक) के ध्यायारम्भक संस्करणों में अरधुस्त्र कहा गया है उत्तर कानिक प्रवेस्ता के ईश्वर-मन्त्र से बड़ा साधुस्य है।

अरधु-मन्त्रा परमेस्वर है वह अरधुस्त्र और जगत् का रक्षामी तथा वह ईश्वर है जिससे उत्पन्न एव प्रकृति शक्तियों का उद्भव हुआ है। उसके साथ ही अरधुस्त्र परम ध्यायारम्भ को पिता-पता ब माला-पत्र की तीम-तीम विरयो में सम्बद्ध है। य अरधुस्त्र परम ध्यायारम्भ

है कि जगत् का पुनर्जन्म एवं उद्धार होकर रहेगा। यहूत-मन्या को मानने और उसके विधि-नियम धरती के अनुसार धारण करने के लिए साधक को प्रार्थना एवं ध्यान द्वारा अपनी प्रकृति को पूर्णता तक पहुँचाना होता। जब हम मध्य तक पहुँच जायेंगे तब शान्ति एवं ऐश्वर्य की विधि हो जायगी।

६ बीजधर्म

बुद्ध कोई नवीन मार्ग बताने का दावा नहीं करते। "मैंने प्राचीन मार्ग को देखा है—उस पुरातन पथ को जिसपर पिछले प्रबुद्ध जगत् चल चुके हैं। मैं उसी पथ का अनुसरण कर रहा हूँ।" बुद्ध ने बोधि प्रवचन शाल की बात कही है। यह पूर्व प्रवेक्षण सत्य के साथ गुरुत्व का अतिरिक्त सहज प्रेरणाजनित सम्बन्ध है। यह केवल वैज्ञानिक ज्ञान नहीं है। यह वह ज्ञान है जो कामना की बड़ों को शांत करता है और बीज की प्रकृति पर प्रकाश का केन्द्रित होने का परिणाम है। यह साधकानी का एक सकार्य है मोक्षोपनिषद्।

मूर्त जगत् में धारणा नहीं मिलती। प्रत्येक वस्तु को ज्ञान का विषय है बनता है धर्मात्मभाव है। परन्तु वस्तुनिष्ठ जगत् में दूर तक या कामना के प्रभाव से मुक्त शान्त एवं बुद्ध से परे भी एक स्थिति है।^१ हम बाह्य धारणाओं से उभे नहीं पा सकते।^२ अज्ञानावस्था में मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति को भुल जाता है और जो वह नहीं है वही अपने को समझने लगता है। इन सम्पूर्ण दुःख जगत् के परे जो सत्य है उसे उच्चको ज्ञान ही चाहिए। "ऐसे बनो कि धारणा तुम्हारा बीजक बन जाए—धारणा ही तुम्हारा एकमात्र धारण हो बिधि (वी) ही तुम्हारा बीजक एवं एकमात्र धारण हो।"^३

अज्ञान प्रकाश की कोई ऐसी स्थिति नहीं है जिसमें कोई वस्तु प्रकाशित होने के लिए न हो वह कोई ऐसा दर्शन नहीं जिसमें कोई प्रतिबिम्ब न पड़े। यह तो ऐसी चेतना है जो वस्तुनिष्ठता-आत्मनिष्ठता (भावनेक-सम्बन्ध) के धेरे को पार कर जाती है। और जितने मात्रक्य उपनिषद् गुरीय कहती है। वह धारकस्मिता से मुक्ति की प्रवस्था है। बीजधर्मों में प्रथम एक धर्मात् (धनुत्तम) धारण एवं समातन का तथा उभे और जानेवाले मार्ग का संबंध धारणा है। निर्वाण का पथ नैतिक पथ है। उपनिषद् की ही भाव-धारा के अनुकूल बुद्ध भी केवल रीति धारण का कर्मकाण्ड का विरोध करते हैं तथा धर्मात्तनुधामन पर चार देते हैं। 'अदि केवल बीज या धर्म-विशेष पहुँचने से लोग द्वेष शपादि गन्त हो पाते तब

१ अनुसन्धिका २, ११।

२ ज्ञानोपनिषद्—अनुसन्धिका २।

३ यथा उपनिषद् उपनिषद्—अनुसन्धिका २२८।

४ अनुसन्धिका, २, ११।

तो बच्चे के जन्मते ही उसके स्नेही एवं कुटुम्बीयम उसे भोगा पहनने को बाध्य करते और कहते—'घामो धो माय्यवासी । घामो भोगा पहिन सो क्योंकि इसे पहनते ही सोनी घपना सोम तथा बिट्टेपी घपना ट्रेप छोड़ दैये ।'

उपनिषद् की भावना के अनुकूल ही बुद्ध हमसे अपने को काल की सीमा से मुक्त होने को कहते हैं । अपने को कामनाओं से मुक्त करके हम ऐसा कर सकते हैं । यदि हम तपः या साधना की प्रवृत्ति को भोजन देने से इन्कार कर दें तो बुद्ध के प्रभाव में घाम स्वयं बुझ जायगी । निर्वाण मोक्ष सोम, वासना से मुक्त होने का ही नाम है । यह विनाश नहीं है । यह वास्तव स्थित घनत्व घानन्द की स्थिति है । बुद्धि, स्वाधीनता एवं धारमस्फूर्ति बुद्धि की स्पष्टता तथा स्मिर घानन्द की वृत्ति पर जोर देते हैं ।

निर्वाण की प्रवृत्ति पर कस्यमा के छोड़े बौद्धों से बुद्ध के इन्कार का यह धर्म नहीं कि वह कुछ नहीं है बल्कि यह है कि वह परिभाषा से परे है । तर्क का धारण लेकर बुद्ध ने कुछ तार्किकीय प्रश्नों का जिन्हें उन्होंने निरर्थक समझा उत्तर देने से इन्कार कर दिया । उन्होंने साबिकारिता (सर्कारिटी) के या प्रमाणधर्मों के सिद्धान्त को प्रामाण्य कर दिया क्योंकि किसी दूसरे के धर्मिकार या प्रमाण के कारण मान्य सत्य का जो निजी यत्न से सिद्ध या प्रमाणित न हुआ हो कोई महत्त्व नहीं है ।

महायान बौद्धधर्म में उपासक एवं परमेश्वर का सम्बन्ध निष्ठा एवं प्रायना पर आधारित है । उपासक को बीबी या ईश्वरीय बुद्ध से पञ्चवर्षन कृपा एवं सहायता प्राप्त होती है । समी प्रकार के बौद्धधर्म में बिचारों की एकाग्रता एवं ध्यान की प्रवृत्ति पर बल दिया गया है ।

७ ईसाईधर्म

ईसा का निजी अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान का एक महान् उदाहरण है । उनके कार्य एवं बचन ईश्वर से साम्य उनके सम्बन्ध की तीव्र भावना से भरे हुए हैं । बचनी हुई संय-संय तथा यन्ममेय की यात्रा के पूर्व इनका क्वाण्टरिल धाकार एवं बुद्ध, विचार उनके निजी अनुभव की छाया की एक सहरे धार्मिक परिवर्तन के घटक है । जब ईसा बैप्टिस्ट मंत्र ज्ञान के विषय में कहते हैं कि यद्यपि वे मानकों से सबसे महान् हैं किन्तु स्वयं के पन्थ योगों में वे सबसे धूर्त भी घरती के बड़े से बड़े घादमी से बड़ा है तब उनका घाणय घरी ज्ञान है कि जिम्मे सत्य को स्वयं देखा है वह अपने बड़ा है जो अपने विषय सत्य करता है पर जिसे प्रथम-धर्म-ज्ञान नहीं है । हम बौद्ध दृष्टिकोण को पार करके घोर ऊपर उठना होगा घीर धर्म-धर्म धर्मिणामात्रिण तथा धार्मिक धर्मार्थनामा का अनुभव करना होगा ।

ईसा एक घनत्वमुक्त नबीनीकरण एक धान्तरिक परिवर्तन की मांग करते हैं। स्वर्ग का राज्य धान्तरिक में स्थित कोई स्थान-विशेष नहीं है बरन् वह एक मानसिक स्थिति है। वह राज्य यही झूठी समझ बर्तमान है। "पश्चात्ताप कर, स्वर्ग का राज्य सामने रखा है। सत्य की उपलब्धि से ही स्वातंत्र्य वा मुक्ति का मार्ग प्रकट होता है। ईसा धान्तरिक पूर्णता प्राप्त करने मानव का संभवनीय विकास करने की बात कहते हैं। जब वे हमें पश्चात्ताप करने को कहते हैं तब उनका प्रथम प्रायः प्रायश्चित्त या दुःख-प्रकाश से नहीं होता बरन् एक साम्प्रतिक कृति से होता है। अंग्रेजी का 'रिपेटेस' शब्द जिस यूनानी शब्द 'मेटा-नोइया' का अनुबाध है उसका अर्थ है—अपनी चेतना को सामान्य प्रायश्चित्तों से परे उठा ले जाना। यह धान्तरिक परिवर्तन है। जब ईसा कहते हैं कि 'अपने को बरस दे धीरे लघु सिद्धियों के रूप में हो जा' तब उनका मतलब यही होता है कि हमें बस्तु-जगत् से इन्द्रियों की निर्यात की स्थिति से बाधना चाहिए। मुँह को पुनः अर्पित होना ही चाहिए। हम अपने मित्रों एवं पुत्रों के बंधन से छूटकर धारमरूप में लौट जाना चाहिए। 'जब तक तू अनुशासन नहीं करता स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता। हमें अपनी निम्नप्रकृति को दबाते हुए इन्द्रियनिग्रह एवं धारम नियंत्रण द्वारा जीवन के उच्चतर स्तर तक पहुँचना होगा।

"तुम्हें फिर ऊपर से पैदा होना होगा।" यह प्राकृतिक दैहिक प्रथम नहीं है यह एक धार्मिक पुनर्जन्म है। मनुष्य की सम्पूर्ण प्रकृति का उचित पुनर्जागरण ही मुक्ति का धर्मिप्राय है। कानून या विधि धार्मिक है। संत पास मिलते हैं 'इससे मैं स्वयं मन में ईश्वरीय नियम का पालन करता हूँ किन्तु मांस से ईश्वर के पाप के कानून का।' "क्योंकि मैं घनत्व-रूप मानव का अनुकरण कर ईश्वर के नियम-कानून में आकाश का अनुभव करता हूँ।"

जो मुक्त हो जाता है वह विधि-विधान से ऊपर उठ जाता है। "विधाम (सर्वथ) मनुष्य के लिए बना है, मनुष्य विधाम के लिए नहीं।" प्रेम ही विधि विधान की परिष्कृति है।

धर्म रहस्य नुस्त्र से धिप्य को प्राप्त होता है। ईसा में यह धार्मिक प्रथा की वर दूतकी निष्ठा से सर्वसाधारण को, बिना किसी अंतरभाव के, नहीं देते थे। "जो पवित्र है उसे कुत्तों को मत दे दो न अपने मोटी बूकरों के सामने फेंको नहीं तो वे उसे अपने पाँवों से कुचल बाँगे धीरे फिर उमटकर तुम्हें ही धाड़ बाँगे।"

१ 'देव' १ : १।

२ 'रोम' ७ : १४-१५।

३ 'मार्क' २ : २७।

४ 'इसा बोध' वर मिलान करने के लिये संत वेदिक चर्चा करते हैं 'यह पुनर्जन्म रहस्यपूर्ण कल्पना की जो इन्होंने समय तक कभी नहीं की थी तथा एक मुक्त नगरिता की, अन्तः

ध्यानभूत प्रार्थना तथा तपस्याचरण के द्वारा धात्मा की पुनरुत्थना ही उच्च धर्म है। ईसा का तास वर्ष का मौन तथा धामोस दिन तक मरुभूमि में मौन धार्म्यात्मिक स्थिति की तयारी-मात्र है। ईसा मानव-युवक पर वे ईश्वर पुत्र भी थे। उनका मसन स्वर्गीय एवं धार्मिक दाना स्तरा पर था। मनुष्य के रूप में वे हरक प्रसोभन में पड़। अन्तिम क्षण तब क प्रमुष्य रह। "मरे प्रभु! तुम मुझे क्यों मृत मा हो?" वे तीव्र वेदना भावते रहे। ईसा मनुष्यों क सामने एक उदाहरण क क्योंकि उन्हेन धार्मिक इच्छा सदाया एवं प्रसोभनों मे सजते हुए धपन का ऊपर उठाया। धार्मिक विकास की सीढ़ी पर चढ़ते हुए उन्हे न जानै कितना कष्ट उठाना पडा।

धर्मकार कोई एतिहासिक घटना नहीं जो दो हजार पूर घटी हा। जो कोई भी धपनी नियति को पूर करने के धर्म क होता है उम सबके जीवन मे यह घटना बार-बार पटित हाती है। मीरटर एवहार्न धर्म का सधम मानव की धात्मा में ईश्वर का जन्म बठाता है। ईश्वर का सधम बडा धभिप्राय जन्म है। वह तब तक सम्पुष्ट नहीं हाभा जब तक कि हमारे बीच उसके पुन का जन्म क हो जाए। धात्मा भी तब तक सम्पुष्ट नहीं हागी जब तक यह पत्र जन्म नहीं क मता। 'यहां जन्म का धर्म ईश्वरामिष्यति, ईश्वरमिच्छि है।

जब कहा जाता है कि मानव-युवक फिर धाणता तब हमका धभिप्राय यही होता है कि जब मलय पान्तर मष्ट हो जाएगा जब धात्मा के उच्च स्तरा क जगत् के सम्बन्ध का विच्छेद हो जाएगा जब वह हिमा एवं भीतिकता क पतित हा जाएगा तब सत्य को एक नये रूप में प्रकट ज्ञाना पड़गा। एन ही प्रताग्रिय मलय विभिन्न स्थितियों के अनुसूच हाजे के गिण किचित परिवर्तित रूप में धाना है। कभी वह एन पथ पर जोर देता है कभी दूसरे पर। जब विषयक धरतम्यगतता का जमाना धाना है जब सत्यगीमता गिधिस पड जाती है तब सत्यात्मा का हमारे बीच धाना ही पन्ता है। प्रत्येक ईश्वरामिष्यति मानव-युवक का ही पन्तपमम है। वह ईश्वर का परमात्मा का मानव-रूप प्रहण करके, मानवीय

जन्म हमारे पूर्व क नियम विरुध क करने धार और हम को उबट म्नेन का मुल्यता मे विरुधम को हुए धार तक उनका धपन करन का रहे है। वे लोग सननन के कि हमारे कर्बन रक्षणे के लिए उचित मन्त्रन एवं धार्मिक ज्ञान सदा मे मौन का स्थिती धारकटा है। और एक धनता को ज्ञान मे ऐसी गूढ कने हां जिनका धिधन करला निम्न का ट क मालने के लिए विहित नहीं है निधिता का देना बिक-कम्पन नहीं का। संत टेमीक क अनुमाट "मुनेन क वन प्रजु का देककचनन कादाओ के लिए ही शंकर है और हम ईश्वर क मन्त्र मन्त्र तथा धार प्रजु कने का का शयकटा है उनक धरिधन यह प्रजुता का धेकन धार्मिक और प्रजु मनी है।'

समोमनों को ठुकराते हुए, अपने को ऊपर उठाना पुनः स्वयंस्वा-कायम करना तथा मानवीय विकास के अचकित मार्ग का उद्घाटन करना है। ये अतिव्यक्तियाँ वे अन्ततः मानव-प्रज्ञा को निम्न स्तर से उच्च स्तर पर ले जाने में सहायक होती हैं।

संत पाल को ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान या तभी उन्होंने कहा 'यद्यपि हम एक दर्शन में अंधला-सा बेल रहे हैं परन्तु धामने-सामने हैं। अनेक पदों में संत पाल ने ईश्वरीय उपस्थिति के अनुभव का वर्णन किया है।' उनमें मानवात्मा एवं परमात्मा के घट-सम्बन्धों की बड़ी सजीव चेतना थी। 'ईसा में समाविष्ट होकर जीना ही' उनका सङ्घस्य था। हम ईश्वरीय स्वभाव में घाय सेते हैं। यदि हम अपने को फिर से जीवित कर सेते हैं और फिर से ऐसा जीवित जीते हैं जिसमें ईश्वर की अतिव्यक्ति होती है तो समझे हम बच गए। संत पाल की सम्पूर्ण शिक्षा सुरक्ष की घाबेष्टनकारी ईश्वरीय उपस्थिति पर निर्भर है जिसमें हम जीते हैं चमते फिरते हैं और अपना अस्तित्व सुरक्षित रखते हैं। संत पाल ईसाइयों से अपना मन हृदय बरसने को कहते हैं 'अपने में बही मानस बनाओ जो ईसामसीह में था। "यदि कोई भावभी ईसा में प्रवर्तित है तो समझे वहाँ एक नई सृष्टि हुई है। बेसोने कि सब कुछ नया हो गया है। बेबहुताय प्राप्त करने के पूर्व संत पाल ने तीन साल मस्त्वन्न में बिठाए। हम संत पाल की एवं धर्म ईसाई रचनाओं में बीबी मूलक पाने स्वयं देखने और 'होनी बोस्ट' (परमात्मा) द्वारा बरबात पाने के प्रसंग मिलते हैं।

संत पाल के समय में जो रहस्यात्मक प्राच्य जर्म रोमन साम्राज्य पर आक्रमण कर रहे थे उनके प्रभावों के संकेत भी मिलते हैं। संत पाल ने 'असामर्थ्य ईसामसीह सम्बन्धी अपने सामान्य उपदेशों एवं संत बीबी ज्ञान में विवेक किया है जिसे ईश्वर ने कालारंभ के पहले ही हमारे कल्याण एवं भेष के लिए रचा बहु ज्ञान जो मुष्ट है और जो केवल परिपक्व लोगों के लिए है बहु ज्ञान जो हम लोगों के सामने खसे व्यक्त करता है 'जिसे किसी धर्म ने देखा नहीं किसी ज्ञान ने सुना नहीं न किसी मानवहृदय ने बिचकी उद्घाटना की है।' संत पाल के लिए ईसा के सेबक 'ईश्वर के रहस्यों के प्रबंधक हैं।'

संत पाल ज्येठो से अत्यधिक प्रभावित हैं। उनके लिए वो संसार है—सच्चा एवं मयार्थ जगत् जो ऊपर है तथा अंधकार एवं छाया का जगत्। ईसा सारवत रूप से ईश्वर के हैं और उनमें सत्य एक निरव्य जीवित प्रतिपद्यित है। ईसा इस संसार में आत्मभवत् के स्वभाव एवं ईश्वरीय व्योति को व्यक्त करते हैं। पाल के

१ 'ग्लोसिफन' १ १२ १६: २ * ४ १: २ कारिभिंस १: १५ ४ ३, १२
२-४ 'रोमंस' = १ १६। कर्तिरिंस' १: १४-२१।

* १ कारिभिंस १: १।

१ १ कारिभिंस ४: १।

लिए ईसा ब्रह्माण्ड में घनभूत ईश्वरीय ज्ञान है। ईसा का नाय समस्त ब्रह्माण्ड के लिए महत्त्व रखता है। 'नोमोस' का सिद्धांत भी इस बात पर जोर देता है कि सम्पूर्ण जगत् अपनी परिस्थिति को प्राप्त करता है और ईसा के द्वारा अपनी पूर्णता को सीट रहा है।^१ वे सदुक्त्य ईश्वर का प्रतिरूप (इमेज) हैं सम्पूर्ण सृष्टि में प्रथमजात हैं सम्पूर्ण वस्तुएं उनके द्वारा और उनके लिए ही उत्पन्न हुई हैं।^२ जापतिक उपक्रम सर्वत्र एवं विजय का उपक्रम है। प्रतिभूत पक्षियों पर विजय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की विजय है। और यह विजय एक नूतन सम्बन्ध ईश्वर एवं जगत् के बीच सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध को जन्म देती है।

सिन्डररिया के धर्मतत्त्ववादी क्लोमेष्ट (२१५ ई०) एवं घोरीजेन (२२१ ई०) ने स्वयं ईसाईयम को रहस्य धर्म धरवा 'सप्या संवाद' (मास्टिसिम) कहने में द्विचक्रिवाहट नहीं की, यद्यपि बाद में वे धर्मश्रोही और नास्तिक घोषित किए जाकर तिरस्कृत हुए।^३ क्लोमे से क्लोमेष्ट ने यह विचार से लिया कि ईश्वर की पोज प्रपचार में करनी चाहिए। जिप्टा एवं भावमग्नता के द्वारा ही उस तक पहुंचा जा सकता है। 'विस्मयन द्वारा प्राद्विज्ञान की घोर जाते हुए (यहूदाई पीड़ाई सम्बाई एवं स्थिति को दूर कर एक पक्षयुक्त छोड़ते हुए तथा पात्र में पक्षों को भावपूर्ण में बदलते हुए) यदि हम ईसा की अपारता में घपने की निमग्न कर दे तो उससे हम पवित्रता के कारण उनकी विद्यासता की घोर बढ़ते जाएंगे और किसी धंग से सबपक्षिमान ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे—यह ज्ञान तो मही कि वह क्या है पर यह ज्ञान कि वह क्या नहीं है।"^४

घोरीजेन बार-बार ध्यान का हवाला देता है और इन्द्रिय तथा मन के ऊपर उद्वार एव धनिबंधनीय मूलक पाने की बात करता है। उसने बड़ी तपस्या का जीवन बिताया या और उसका दावा था कि कोई भी इन्द्रिय-निग्रह एवं यम नियम-पालन द्वारा ईश्वर एवं धार्म्यात्मिक बदार्थों का ससर्ग प्राप्त कर सकता है।

बीबी पलागरी में धारम्यात्मिकी व मठ-बास के विकास के साथ मृति के बिना प्रार्थना एवं ध्यान को महत्त्व दिया गया। इस धार्म्यात्मिक में जनक मठ एंथोनी कमी-नारी तारी-नारी रात धार्म्यात्मिकी की व्यवस्था में रहने से और उम्होने भी प्रार्थना के मध्य के विषय में यह दिव्य तथा धर्ममाननी निर्बंध दिया "बहु प्रार्थना पूर्ण नहीं है जिसमें मनुष्य धपने की और अपनी प्रार्थना को समझने का

१ मुपता कोविट, ति'लीव कर्मिपर १।

२ कोनाटिबम १: १२-१३।

३ हेगल १ स' दविन। 'रिजिनिषरम एरिदुष्ट हु मारर हिलासस (१९७०) पृष्ठ १२१।

४ 'गुंटा म' १ २१५ २२१।

५ बीबी ५ ११।

होगा रहता है।^१

संत घानस्याइन का यह कथन कि तुने हमें अपने लिए पैदा किया है और हमारा हृदय तब तक प्रसन्न रहेगा जब तक तरे अन्दर उठे विभाम नहीं मिलता बड़ा प्रसिद्ध है। उनके धर्म का हृदय उनके धर्म का तत्त्व उनके निजी अनुभव से मानकान्ता एवं ईश्वर के प्रत्यक्ष सम्बन्ध से निकला है। वे प्रायः रहस्यात्मक अत्युच्चिष्ठ का हवाला देते हैं। धरे! अभी हमने एक धार्तरिक मातुर्भ का धान्य लूटा। महा! अब अपने प्रतिष्ठा के चित्त पर पहुँचकर एक क्षणिक भ्रमक में कुछ ऐसा देखा है जो अपरिबर्तनीय है।^२

पतुर्भ शताब्दी में बेबायड में अनेक ध्यानों का पता लगता है। रोम के पतन के पश्चात् सत बेनेडिक्ट (५४३ ई.) तथा उनके द्वारा प्रार्थना एवं धर्मकार्य में इबारों धियों को प्राप्त होनेवाले धर्म्यास के उठा लिए जाने के कारण ईसाई धर्म लूब पतया। सत बेनेडिक्ट ध्यानात्मक प्रार्थना के लिए संसार-व्याय धाहा पामन मीन एवं बिनप्रता पर खोर बैठे हैं बिनके कारण धर्म्यासी पूर्व उबारता की स्थिति तक पहुँच जाया।^३

सूडो डायोनीसियस (पाँचवीं सती का धर्म) तथा सत बेगोरी महाम् (छठी सती का धर्म) दोनों का मध्ययुग पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। अपने धर्म मिस्टिकस धियोसोबी (रहस्यात्मक बहानिष्ठा) में सूडो डायोनीसियस धार्शनिक एवं रहस्यात्मक दृष्टिकोण में भेद करता है। धार्शनिक दृष्टिकोण हमें एक मिटाकार भावकप विचार देता है रहस्यात्मक दृष्टिकोण आत्मा की बुद्धि के स्तर के ऊपर ले जाकर आराध्य से एक कर देता है। रहस्यात्मक ऊर्ध्वपति का 'मध्ययुग रहस्यात्मक मीन के अधिधीष्ठ (सुपर-सुडेंट) धर्मकार में प्रवेश' बहकर बर्धन किया गया है।

ध्यानात्म्यास के सम्बन्ध में सूडो डायोनीसियस ने निम्नलिखित उलाह दी थी बिसका पालन सम्पूर्ण मध्ययुग में किया जाता रहा "धीर तु प्यारे टिमोथी रहस्यात्मक ध्यान के एकाग्र धर्म्यास में अपनी बैठना धीर अपनी बुद्धि-धिया दोनों को पीछे छोड़ दे इसी प्रकार इन्द्रियों तथा बुद्धि द्वारा ज्ञान सब वस्तुओं को भी भूल जा। धीर भी जी धीर हैं या नहीं हैं उनका ध्यान छोड़कर ध्यान अपने की मधासक्ति उसके साथ छोड़ ले जो सब प्राणियों एवं सब ज्ञान के परे है क्योंकि वह किमुद धर्म में मुक्त एवं परमेश्वर है। तप तु सबसे धनाकृत होकर धीर सब धर्मों से भूँकर ही धर्मकार की धिरस की धीर प्रेरित किया जाया।"^४

१ 'केसिल 'कोसेल' ३ : ११।

२ 'जॉन टॉम' ४१ : १०।

३ 'रिब' ७।

४ 'क्रिश्चियन धियोसोबी' १।

संत ग्रेगोरी महान सायस्टाइन से बहुत प्रभावित हैं। उनके लिए कर्मधीन जीवन से ध्यानावस्थित जीवन कहीं ऊँचा है। ईसा का जीवन ऐसे दोनों जीवनो के सामन्तकर्म का उदाहरण है जहाँ कर्मपारा मानस की साक्ति एवं स्थिरता में बाधक नहीं है। ध्यानावस्थित जीवन की शक्तों में साक्ति, स्थिरता, मनासक्ति, निरतिशय साध्यनिर्गमना तथा ईश्वर एवं परब्रह्मी के प्रति प्रेम है।

कर्मों के संत बन्द (बाइबेली शब्दों) का साध्यात्मिक धर्म-साधना के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। वे कहते हैं मैं स्वीकार करता हूँ कि ईश्वरवाणी मेरे पास आई है बार-बार आई है, किन्तु उसके प्रियतम के बार-बार मेरी आत्मा में प्रवेश करने के बावजूद मुझे कभी उनके ध्यान का होंग नहीं रहा है। मैंने अनुभव किया है कि वे उत्पत्ति हैं मुझे पार है कि वे मेरे साथ रहे कभी-कभी मुझे पूर्वमनेत भी हुआ है कि वे आँसू परन्तु कभी उनके ध्यान और जाने की चेतना मुझे नहीं रही है। यह बतान के बाद कि वह इन्द्रियों के द्वार से नहीं आता, वे कहते हैं बहु बिम्बव एवं शक्ति से पूरा है और क्योंकि उसने मुझमें प्रवेश किया मेरी निद्रित आत्मा का गतिनील कर दिया तथा मेरे हृदय को, जो अज्ञता की स्थिति में था और पत्थर की भाँति कठिन था उद्बुद्ध कोमल और प्रेरणात्मक कर दिया।^१

संत विक्टर क रिचर्ड (११७३) बाद एवं संकल्पित साध्यात्मिक मार्ग तथा उस ध्यानात्मक साध्यात्म में भेद करते हैं जहाँ बिल प्रगती सीमा के बाहर मना जाता है और मध्य की निरावरकर्म में वेगता है।

तेरहवीं शती में साध्यात्मिक धर्म की एक महान महूर का उमड़ना देता। संत बेनाबेनुरा (१२७४) कहते हैं मैं इतना तो मानता हूँ कि मन्त्रबन्धु को इस प्रकार ईश्वर पर केंद्रित एवं स्थिर किया जा सकता है कि वह उनके सिवा और कुछ भी देख न पाये फिर भी वह उस प्रकाश की महिमा को देख या ग्रहण न कर सकेगा बल्कि उद्वेग एवं अज्ञान में जा पड़ेगा। शीघ्र, जैसाकि टायनीनियस कहता है उस ज्ञान में वह सब बस्तुओं में छुटकर ऊर्ध्वस्थिति में पहुँच जाएगा। टायनीनियस इसे 'ज्ञानपूरा मज्ञान' कहता है। इस प्रकार के ज्ञान के लिए स्नेह को प्रयत्नित कर दिया जाता है। यह बात उन सीमा को मनी भाँति बिन्दु है जिन्हें ध्यानयोग्यता का कुछ सामान है। मेरी सम्मति में ज्ञान की इस प्रणाली का अनुमरण प्रत्येक साध्यात्मिक को इसी जीवन में करना चाहिए।^२ "यदि तुम पूर्ण हो कि यह कर्म होना है तो बिडला को नहीं प्रभु का धनपह प्राप्त करने की बुद्धि की नहीं मंत्राल की अध्ययन एवं समझ की नहीं प्रायना में रोने

१. मन्त्र बन्धु रिचार्ड इतिहास ७८ १, १, ७।

२. साध्यात्मिक इतिहास, १: ७१ १ १।

की चेष्टा करो।^१

डोमीनिकन फ्रांसिस बर्नार्डस मैमस (१२८०) धर्मार्थ मन को सब निष्कामासों तथा चिन्तों से रहित एवं मन्त्र कर देने पर प्रेरित होता है। उसके मत से ऐसा होने पर ही मन को ईश्वर में शान्ति एवं स्थिरता प्राप्त होती है। संत टामस एक्विनास (१२७४) ईश्वर के मंगल स्वर्गीय दर्शन में विश्वास करते हैं। उनके विचार से इस तरह ईश्वर का दर्शन उसीके सहारे किया जा सकता है। श्रुत वा बुद्ध पराई भी नहीं है और देखने का साधन भी नहीं है। आशीर्वादप्राप्त लोग ऐसी साधना में भाग लेते हैं जिसमें ईश्वर बिना किसी माध्यम के अपने को जनाता है। ये लोग ईश्वर के साथ संयुक्त अभिमान हो जाते हैं क्योंकि ईश्वर के लिए किया कर्म ही पवित्र कर्म है।

'सुम्मा कौट्टा जेटाहस्स के बोधे भाग के धारण मे संत टामस एक्विनास ईश्वरीय विषयों-सम्बन्धी तीन प्रकार के मानवीय ज्ञान की खर्चा करते हैं। इनमें प्रथम तो वह ज्ञान है जो तर्क के बुद्धि के प्राकृतिक प्रकाश से प्राप्त है। इसमें तर्क प्राणियों के साधन से अन्तर ईश्वर तक जाता है। दूसरा 'ईश्वरीय वाणी या उसके ही प्रकाश या अभिव्यक्ति के रूप में अवतरित होता है। तीसरा ऐसे ही मानव-मन के लिए सम्भव है 'जो प्रभु द्वारा प्रकाशित या व्यक्त बातों के प्रति सहज प्रेरणा की पूर्णता को पहुँच चुके हों। संत थॉमस एक्विनास का अनुसरण करते हुए टामस एक्विनास ने स्वीकार किया कि मंगल दर्शन मूसा एवं संत पाल को प्राप्त हुआ था। यह दर्शन ही वह श्रेष्ठ है जिसके लिए मानव का निर्माण हुआ है। यही उसका पुरस्कार है। स्वयं संत टामस एक्विनास को ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हुआ था तभी तो उन्होंने विद्वान् रेजीनाल्ड से कहा था कि उन्होंने जो कुछ जान तक निश्चय है वह सब ईश्वर-दर्शन की विभूतियों के समस्त भिन्नभूत स्वरूप है।

बारहवीं शती में फ्लोरिया के जोसोम ने मनुष्य की कहानी को तीन क्षेत्रों में देखा। पहली श्रेणी पिता की जिबि (सों) के सम्बन्ध की है जहाँ हमें केवल सुनना और उसका पालन करना है। दूसरी पुत्र की है। यहाँ हम तर्क एवं धारणा भी करते हैं। परम्परा की व्याख्या होती है। प्रमाण का विस्तार किया जाता है। तीसरी श्रेणी आत्मा की अन्तर्भावना की है जिसमें हम प्रार्थना करते हैं, मन्त्र पाते हैं, ध्यान करते हैं और अन्तर्स्थापित प्राप्त करते हैं।^२

वर्ष (१२६२-१३२१) में हमें मध्यकालिक विद्वान् की सबसे परिपूर्ण अभिव्यक्ति मिलता है। 'विवाहन कामेडी' बर्नार्डो की प्रकृति का चित्र है। इसे 'कामेडी' इसीलिए कहा गया है कि यह सुखाप्त है। किन्तु मुक्ति का पथ पत्य एवं प्रावृत्त

१ 'इतिवृत्तिवर्णन'।

२ 'इतिवृत्त, अन्तर्य दर्शन वि श्रेष्ठत उत्प्रेषण' (१६४८), पृ. १०९।

के लक्ष्य से होकर मुजरता है। ईस्वर तक पहुँचने की यात्रा तीन धर्मियों में पूरा हुई है—(१) बुद्धि एवं तर्क का स्वाभाविक प्रकाश जो मार्ग के उस भाग से प्रभावहीन होता है जहाँ कबिल पददर्शक है—मरक के द्वार से परिघोषनवास (पगोटरी) के दिखर तक (२) अनुग्रह की कृपा की प्रमोद जो पददर्शी कीर्ति की मूर्ति के रूप में धाय परिघोषनवास के दिखर से दूसरे स्वर्गस्थ दिखर तक ले जाती है और वहाँ स्वर्ग के महान पाठम-पुण्य में प्रपत्ता स्थान ग्रहण करने के लिए रात को छोड़ देती है और (३) वह मया प्रमोद जो सत बर्नड की प्रार्थना पर धनतरण धारण करती है और पवित्र के लिए सुसम होती है तथा अन्तिम दर्शन प्राप्त करने के लिए ऊपर की ओर गतिमान होती है।

इनके प्रतिरूप और भी महान रहस्यवादी हुए—संत हिल्डेगार्ड (११७६) मेघटाइन्ड्स-डम (तिरहूबी घरी) फासिनो की एजेसा (१३०६) मार्बिच की जमियन (१४१२) इनकी रचनाओं का धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। सीना की मंडलैपराइन (जीवहूबी घरी) छ बर्य की धामु में ही एक दिन एकमात्र बिदन-उदारक की स्वर्गीय भयक पाकर प्रकृत हो उठी थीं। इस अनुभव ने बाद के उनके सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित किया और उन्हें ध्यानन्दोन्माद एक वैराग्य के मार्ग पर डाल दिया।

इसमें भी हमें मार्बरी केम्प (१२१०) हैम्पोल के रिचर्ड राते (१३४६) वास्टर हिल्डन (१३६९) जैसे रहस्यवादी मिलते हैं। हिल्डन मार्बुनिया के निवासी थे और रोमे से बहुत धार्मिक प्रभावित थे। इनका ग्रन्थ 'द स्केप ऑफ परफेक्शन' बहुत प्रसिद्ध है इसी प्रकार 'वमाइड ऑफ धननीइंग' भी ध्यानपुन प्रार्थना के लिए एक प्रसिद्ध पुस्तिका है।

धमनी में मीस्टर एनहाट (१३२७) जिन्होंने पूरा समय एवं लक्ष्य के साथ निरन्तर रहन की 'तपस्वी' की स्थापना की हैनरी मूसा (१३६९) महान धर्मोद्देशक टामर (१३६९) एवं उसके गिम्प राइडरोंक प्रसिद्ध हुए हैं। मगमग १३२० में 'विद्योतात्रिया जर्मैनिवा' (जमन ब्रह्मजान) निवर्ती जमने बहा के पद जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला। यह एवं टामर-ए-केम्पिन की 'इमीटेयान ऑफ वाइस' (ईसा की प्रतिवृत्ति) पुस्तक मध्ययुगीन रहस्यवाद के महान काम्य है। सुपर ने 'विद्योतात्रिया जर्मैनिवा' का अध्ययन किया था तथा धर्मोद्देश के जमने बिब रणों से ज्ञान हुआ है कि वैयक्तिक मुक्ति का माय धर्म के लक्ष्यार्थ से धार्मिक

१ "कहाट में इन्तेनीसीय भाग, जो प्रारंभ पर करी द्वारा प्रकृत मर-कल्पना की लभों से और जो कुछ हाँ गरी की लक्ष्य विभाग पर लुभ गरी है वह कर्तव्य निष्ठा का अन्तिम लक्ष्य को पर पर दर्श है तथा अपने मध्ययुगीन लक्ष्य का विभाग करने हेतु पर लुभ रिया है जो वैशाल के हुए अन्तेन्द से लुभ हुए लगी पर लुभ। —विद्योत्तर ब्रह्मजान वैशाल एनेज (१३६९), पृष्ठ १ *।

प्रत्यक्ष दृष्टि का उपयोग है। परासेस्सस की मृत्यु १२४२ ई० में हुई। उस भी सम्पूर्ण निर्गम में व्याप्त बिम्बजीवन (परमात्मा) का प्रत्यक्ष अनुभव था। उसके विचार से मनुष्य इस जीवन का एक अभिप्रेत अंग है।

जैकब बोहमे (१५७५-१६२४) कहते हैं कि उन्हें अपने जीवन में तीन बार ऐसे घबराहट आए जब वे प्राणत्यागमात्र की स्थिति में निमग्न हो गए। यह स्थिति कई-कई दिनों तक चलती रही जिसमें उन्हें ऐसा अनुभव होता था मानो वे ईश्वरी प्रीति से बिर गए हैं। दूसरे घबराहट पर तो उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो प्रकृति उनके सामने प्रकट हो गई हो और वे सब वस्तुओं के हृदय में केन्द्र में घाराम से बँठे हों। तीसरे अनुभव के विषय में बोहमे ने लिखा 'मेरे लिए फाटक खुल गया तथा चौलाई बंधे के अन्धर मैंने जो कुछ देखा और जाना वह उससे कहीं अधिक था। बिसे बोहमे 'उत्तममिस्त्रीरियम मैलम' या मुक्ति-महायज्ञ कहकर पुकारते हैं वही सम्पूर्ण अस्तित्व का आधार है और वह काम एवं अकाम के परे है। यह प्राणिनीयता है। अभिप्रेत या अभिप्रकाशन (मैनीफेस्टेशन) के लिए हमें परस्पर-अतिकूल तत्त्वों एवं उनके संघर्षरत होने की आवश्यकता पड़ती है।

पैस्कर की मृत्यु के बाद उसकी वास्कुट के घस्तर में सिखा एक अमंगलक मिला जिसमें कुछ अस्पष्ट आइया थी। इस आइया में एक अकाल अक्ष बना था और उसके अतुल्य दिग्गमिच्छित कुछ अक्ष लिखे थे 'मिषी अनुभव की स्मृति बनाए रखने के लिए'

१६३५ के शुक्र वष में सोमवार, २३ नवम्बर को जो संत क्लीमेंट पोप मार्टिनर तथा दूसरे शहीदों का दिन है

संत क्लियोपोमस मार्टिनर एवं दूसरों की यह सभ्या। सभ्या के साथे बह बने से मध्य रात्रि के प्राय षंटे बाद तक

प्राय

अब्राहम के ईश्वर ईजाक के ईश्वर जैकब के ईश्वर। तत्त्वज्ञानियों और विद्वानों के गही।

निश्चय। प्राणत्व। विश्वास। भावोद्देग। दर्शन। प्राणत्व।

अबत् तथा ईश्वर-बाह्य समस्त बातों की विस्मृति।

अबत् मे तुम्हे नहीं आता था किन्तु मैंने तुम्हे जान लिया है।

प्राणत्व। प्राणत्व। प्राणत्व। प्राणत्व के प्राण।

हे मेरे ईश्वर। क्या तुम मुझे छोड़कर बने आओगे ?

ईश्वर। अब मैं तुमसे कभी बुरा न होऊँ।'

१. डोम जुनार्ड क्लेर एवं 'विध्वंस मिथिस्थित' (१९२२) पृष्ठ १३।

कार्मेल' (कार्मेल गिरि पर धारोहण) में उन्होंने ध्यानयोग के जीवन के तप-परा का विवेचन किया है। वे पूर्ण संन्यास एवं ध्यात्मनिरति की मांग करते हैं। जिसे वे इम्ग्रियों की निशा कहते हैं वह धात्मा को ऐंग्रिय मन्ति से दूर से जाती है तब एकाग्र एवं धान्ति की इच्छा उत्पन्न करती है। ऐसी अवस्था में धात्मा बिना किसी विशेष ज्ञान को धारण किए ही अपने का ईश्वर के हाथों में छोड़ देती है। इम्ग्रियों की निशा के बाद धन्तरात्मा की स्पिरिट की निशा घाटी है जिसमें ईश्वर धात्मा के ऊर्ध्व को विनीत परिशुद्ध तथा परिपुष्ट करता है और उस पूर्ण ऐक्य या मिशन के लिए उसे तैयार करता है जिसका वर्धन अरस के संत जॉन ने 'दि स्पिरिच्युअस क्रैस्टिकस' (अध्यात्मगीत) तथा 'दि मिडिय एमेन घाफ लव' (प्रेम की सजीव ज्योतिर्दृष्टि) नामक रचनाओं में किया है।

सन्ते के संत फ्रांसिस (११२२) ने ध्यात्मिक प्रार्थना का प्रस्ताव बचन किया है। मोमिनो (१६२६) एवं मराम वायोन (१७१७) दोनों मीनबार्ड के विषय में भयावह घसंतुजन में पढ़ गए और उन्होंने ध्यानयोगियों तथा रहस्यवाचियों की कल्पना के पीछे शीशानेवासे नमस्कोरिमाग अस्थस्थ व्यक्तियों के रूप में ग्रहण कर लिया।

परिवाचक बनेकर † ज्ञान उत्सर्जन ने अपनी 'बापटी' में लिखा है "एक ऐसा विद्वान्त या तत्त्व है जो पवित्र है और मानव-हृदय में रक्त दिया गया है। विभिन्न स्थानों एवं कालों में इसके विभिन्न नाम रहे हैं। इतने पर भी पवित्र है और ईश्वर से उद्भूत है। वह बंभीर एवं अन्तर्मुखी है। किसी धर्म प्रभासी में सीमित नहीं है न किसी धर्म-प्रभासी से बहिष्कृत है। इतमें हृदय पूर्ण सचाई में रहता है। धर्मके भी अन्तर यह बड़ पकड़ता है एवं विकसित-प्रसन्नित होता है बाह्य के किसी बात के हों वे परस्पर बन्धु हो जाते हैं।"

रसियों की धार्मिक भावना भी रहस्यात्मक रंग की है तथा क्वी निरर्थों में विष प्रकार की उपासना का विकास हुआ है उससे रहस्यात्मक अनुभूतियां पनपती हैं। धर्म का लक्ष्य ईश्वर को सर्वव्यापक ऐक्य के रूप में अनुभव करना है।

मुहम्मद की रहस्यात्मक प्रकृति को उनके देशबन्धुओं के बहुदेवताध से बन्का लना। वे एकाग्र धात्मों में जाकर उपासना करते रहे तथा इस तरह उन्होंने अपने सुभाद्रधान धार्मिक विचारों का विकास किया।

८ इस्लाम तसम्बुध

इस्लाम का केन्द्रीय तत्त्व ईश्वर की उपासना तथा उसे एकमात्र परमेश्वर

† बनेकर : 'सोसमयी बॉक ऑ'रस नामक एक अन्तर्भूत ध्यकसेधर्म निर्मित संत के उत्तर। — अनुवादक।

रूप में मानना है। मुहम्मद को सपता था कि बर्म के शहीदों संतों एव देवदूतों में विदबास करके ईश्वर के एकरब को जिसका प्रमाण कुरान में मिलता है ईसाइयों में सिबिस कर दिया है। अंत (ट्रिनिटी)† के रहस्य एक अरबतार ईश्वरीय एकरब का सङ्गन कर देते हैं। अपनी स्पष्ट बुद्धि से प्राक्य ईसाइयों ने तीन समदेवों का प्राधिमान किया तथा ईसा को ईश्वर-पुत्र के रूप में परिवर्तित कर दिया। मुहम्मद ने मनुष्यों एवं पृथिवीय मसजों एवं पर्वों की उपासना को इस सिद्धान्त की दृष्टि से प्रामाण्य कर दिया कि जो उदित हुआ है उसका अस्त होगा जो पैदा हुआ है वह मरेगा। जो दूषणीय है उसका ह्लास एवं नाश भी निश्चित है। मुहम्मद के लिए ईश्वर एक असीम एवं सारबत मारमा है जिसका कोई भाकार नहीं कोई स्वान विशेष नहीं जो निबिषय है जिसकी समानता कही नहीं है। वह हमारे परम प्रेयनीय बिषयों में उपरिबत है पर वह अपनी प्रकृतिबध उपस्थित है। और अपने ही द्वारा सम्पूर्ण अर्थिक एवं बौद्धिक पूर्णताओं को प्राप्त करता है। जब मज्रात तत्त्व से हम नास एवं अरकाय गति एवं पदाय भेतना एवं बिचार की सम्पूर्ण पारणार्थों को अमय कर देते हैं तब जो बच जाता है वही ईश्वर है। मुहम्मद एवं उसके अनुयायी ऐशमबादी हैं। उनकी चिकायत है कि ईसाई धर्मदिसों की ऐशम भावना फिरजापनों के मध्य समारोहों म बिनीम हो जाती है। ईश्वर के प्रतिरिबत अपने धर्मपुरोहितों या पादरियों एव संघ्यासियों को भी अपनी स्वामी मानने के लिए मुहम्मद ईसाइयों की भयना करते हैं।

धर्मबिधा के जानकार जो भी कहें मुहम्मद पुरानी परम्परा के एक इत्या या ऋषि से। कुरान एक ऋषि का ग्रन्थ है। मूषी परम्परा मुहम्मद को ही अपनी स्तम्भापक या प्रादिप्रबर्तक मानती है और ईश्वर के बयतिक अनुभव पर बस देनी है। मूषी एकरबबानी से वे एकरान्त स्वार्थों म प्राभय सेते म और अपनी जीविका के लिए अपने भर्त्सों पर निर्भर करते थे। तत्काल का बिस्वास है कि ६५५ में केबल एक परम सत्ता है वह अजेय है। इसके नामरूपों द्वारा ही हम जगता हुए ज्ञान प्राप्त कर मरते हैं। बिगुदात्मा नामरूपरहित है जब वह अपनी निबिबल्य प्रकृतता को छोड़कर ब्याव होता है तभी उस नामरूप बिल जाते हैं।

जो परमात्मा या ब्रह्म सब पुणों एवं सम्बन्धों में रहित होता है उस मूषी जीवी धम् प्रमा' (तम) बट्ट है। तीम श्रगिनो म गुबान पर उगमें पतना का बिकाम होता है। प्रथम स्थिति एकरब की है कुनयी म अय पुरय बट्ट की भावना (बह-ना=ही-नेम) है तीगरी मे 'मम-न की बह-ना' (घाई-नेम) की प्रथम

† Trinité: बिग बुबल्य बरकतय (घार गन २० होना या) की बिन्दी म
 (मा) बिग ३।—अनरक।

पुरुष की भावना है। इस उपक्रम से परमात्मा सम्पूर्ण चिन्तन का विषय बन जाता है तथा सर्वास्तित्व को ध्रुव में समेटे हुए, अपने को विशेष पुरुषों से मुक्त ईश्वर-सत्ता के रूप में व्यक्त करता है। यह ब्रह्म जगत् उसी परम ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। इन्द्र जगत्-भरती कहते हैं 'हम ईश्वर की भावश्यकता अपने ही अस्तित्व के लिए है जबकि उसे हमारी भावश्यकता इसलिए है कि वह अपने लिए अपने को व्यक्त करे।'

मानव-आत्मा जो हम देह के पित्रे में बन्नी है उस परमेश्वर का ही घन है। जब वह मांस से देह से मुक्त हो जाती है तो अपने उद्गम को फिर से वा सेती है। यद्यपि सब हस्तिया परम सत्ता के ही किसी न किसी गुण को व्यक्त करती है मानव प्राणी वह सूक्ष्म ब्रह्माण्डतत्त्व है जिसमें सब गुण सब विरोधताएँ मिलकर एक हो गई हैं। परमेश्वर मानव में अपने प्रति अव्यक्त होता है। पूर्व मानव ईश्वर हूत या सत में ईश्वर घोर मनुष्य एक हो जाते हैं। यह पूर्ण मानव ही सृष्टि का अन्तिम कारण है।

सम्पूर्ण सिद्धान्त के बीच कुराम में मिलते हैं— 'यस्माद् क वेदुरे (सत्यता) के अतिरिक्त घोर सब बन्तुएँ हासिक (नाशमान) हैं।' 'पृथ्वी पर हरक 'प्यमी है पर भरे प्रभु का यस्तो मुख शारवत है।' 'विषय भी तुम भिगाह करो यस्माद् का वेदुरा है।' मनुष्य की पदच के पर घोर बहुय ङ्गा यस्माद् का अग्रतिम व्यक्तित्व सम्पूर्ण मन्त्रि प्राणियों में प्रतिपत्तित एक मत्पारमा में साकार हुआ। वह मनुष्य की सच्ची आत्मा है जिसे वह ध्यानयोग्यताके धारमविसर्जन में अपनी अयक्तिक चेतना को देने पर पाता है। 'ध्या एक अतीन्द्रिय स्थिति है घोर सम्पूर्ण वासनाओं एवं कामनाओं का निवारण करके ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। यह हमें बौद्धिक 'निर्वाण' एवं उसके मार्ग का स्मरण दिलाती है। सूधी ध्यानत्व होकर अपने अन्तर ही परम सत्ता की उपसर्गि करतें वे।

पुरुषान के सामजीव कहते हैं "मैं एक-एक ईश्वर के पास गया यहाँ तक कि वे मेरे अन्तर म मुझसे ही बोम पड़े— घरे। तू ही मैं हूँ? निवचन ही मैं ईश्वर हूँ भरे सिवा दूसरा ईश्वर नहीं है। इसलिए मेरी उपासना कर। मेरी जब हो! मेरी ध्यान कितनी महान।

सबसे बड़े मुक्तिवा से से एव—यम्-हस्तात्र—ने जो अपने विरसामों के कारण सूनी पर चढ़ा दिये बने धारमानुभव की पागबलता के विषय में सिखा है। इसे 'तपरीर' कहते हैं। जब हम प्रत्येक वस्तु से अपने को हटा सेते हैं तभी धारमोग्मुक्त होते हैं। वे उस स्थिति का वर्णन करते हैं जब बीज आत्मा के मुक्त से प्रलय कर दिया जाता है वे उन स्थिति का भी वर्णन करते हैं जिसमें ईश्वर

घात्मा को अपने में मिसा लेता है। उनके बिपार से वेदना ऐसी बस्तु नहीं जिससे भाग लड़े जाने की जरूरत हो। उमटे यह तो वह साधन है जिससे घात्मा देवी पर प्राप्त करती है।

घात्-हस्ताव का बन्धन्य कि मैं ही सत्य ही हूँ (मनसहज), उपनिषद् की उक्ति महं ब्रह्मास्मि की प्रतिध्वनि है। दार्शनिक चिंतन की अपेक्षा निजी अनुभवों के फलस्वरूप ही य सत्य सूक्ष्मों को प्राप्त हुए। तब-स्नेहोबाद तथा हिन्दू एवं बौद्ध बिचारधाराओं के प्रभाव के कारण य लोग इस्लाम की भी एक राहस्यवादी ध्यात्मा प्रस्तुत करने की घोर अपसर हुए होये।

रहस्यवादी बतरा रबिया के बिषय में एक कथा कही जाती है "एक दिन बंद नूफियों की रबिया मिसी। वह बौद्ध रही की घोर एक हाथ में घाग घोर दूसरे में पानी लिए हुए थी। उन सूक्ष्मों ने उससे कहा "ओ घागामी संसार की देवी! तुम कहाँ जा रही हो तथा जो एक हाथ में घाग घोर दूसरे में पानी लिए हो इसका क्या मतलब है? उसने उत्तर दिया मैं बहिरत(स्वर्ग) में घाग लगाने घोर दावान(नरक)को जलमयन करने जा रही हूँ जिससे ये बानों वदे घर्मसाधकों की घांसोंके सामने से हट जायँ और उन्हें उनका सत्य ज्ञात रह घौर तुबा व बन् उमे बिना किसी घासा या मय के देख सकें। जब स्वय की घागा या नरक का घय न रह जाएगा तब क्या होगा? हाय! तब कोई अपने ईश्वर की जगामना करना या उनकी घासा मानना न चाहेगा।" हूँ ईश्वर से सुद उसक लिए ही प्रम करना चाहिए। रबिया तो ईश्वर मुहम्मद तक के प्रति प्रेम नहीं रख पाती थी

१. तुचना जीवित, इबाईम धारम "ये प्रमु। तु काक्या है कि मेरी कर्ता में घ्यो मनी का कूक इमने घबिक नहीं है किना एक कुटकी का निरु के का व है। इमने वह सभाम वगुन बधिक है जो तुने मुने दिवा है। मेरा प्रेम या जो पबिठना तुने मुने कान नाम की मूर्तिके रूप में ही है या तेरे वर का बहिया पर केन्द्रित मेरा ध्यान कपवा सव कगुध से तेरे इला ही प्राप्त मुबिन यह सम्मान स्वम के सम्मान से कही महान है।

घात्मा इबाईम धारम की एक उक्ति जखन करके टिकती करता है: "घान्दर का घाट तुने के घुई साक के दाव पर घौर साबने बदे घीम वरी को दखना हो इला। बदला तो वह कि बंद उमे दोनो कानो का घाम सपकी कप से है दिवा याप ता भी बने मुली म की बरीक को कोई बिना सदिन वगुन के मितमे पर इगुन्य बला है तो ममजना चाहिए कि इमने वह भी प्रनोबन रोष है। घौर लोभी वगुन (ईश्वर बल से) बकिना है। दूसरा पदांघ है कि बंद दोनो साक उमही मुहुं मे हा घौर वार मे कनमे ल निव जाँ तो उमे कानो कर्कमजन क निव दुगुनसाक न ही बरीक वह लघु कप बा है घौर वा वार कप मे है वह बीक। होय। ईश्वर। वा वर है कि वह किसी प्रताया या वगुनला म वून न बदे बने क को कोई रग प्रसर कूक उदय है वह निम्य घावनाको बाना है। वना कानो कपवासाय मे वंनकर रह जाना है (नाय बरी दव पाट)। मुमुमु की ककन उपपाती होना का इव।

—घान्दर: मदरेदी दिगी कक बरीक। मय १ इद ११२।

क्योंकि उसका ईश्वर-प्रेम जैसे इस पूर्णता के साथ निमग्न किए हुए था कि उसके हृदय में किसी भी प्राणी के लिए न प्रेम था न बुना थी।

सूक्तियों में अनुभव किया कि उनकी धर्म-साधना ईश्वरीय विधि (धर्म) के अनुकूल है यहाँ तक कि अपनी साधना के एक पक्ष के रूप में इसे उन्होंने उसमें शामिल भी कर लिया। जो ईश्वरीय सत्ता का ध्यान करता है वह बीसा धर्ममुक्ती एवं बहिर्मुक्ती एक एवं अनेक दोनों रूपों में करता है। विधि सत्य की अभिव्यक्ति है। जब हम ईश्वर के साक्षर जीवन में प्रवेश करते हैं तब हम ईश्वर के कार्यों में भी सम्मिलित होते हैं। एक ओर हम ऐक्य की इस स्थिति में ईश्वर में एवं ईश्वर के साथ रहते हैं तो दूसरी ओर अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए इस बुद्ध-प्रपञ्च में भी उतर पाते हैं।

यहूरी ईसाई एवं इस्लामी रहस्यवाद ईश्वर की वास्तविक व्यवहारना को नियतिवादी एवं अपर्याप्त मानता है।

६ प्राथमिक प्रवृत्तियाँ

विभिन्न धर्मों में पैदा हुए ऐसे अनेक बड़े विचारक हैं जो धार्मिक धर्म की इस महान परम्परा की ओर उन्मुख हैं। एक० एच० बीडले ने 'अपियरेंस ऐन्ड रिबलिटी' (प्रतीति एवं सत्य) की भूमिका में लिखा है एक ओर हमारी कट्टर धर्म-भावना तथा दूसरी ओर हमारा साधारणस्तरीय भौतिकवाद 'दोनों मुक्त पर संभ्रमात् जिज्ञासा के सूर्य-प्रकाश में प्रेत-ज्ञाना की भाँति लपट हो जाते हैं। बीडले फिर कहते हैं धर्म में जो कुछ प्राता है उससे क्यावा यथार्थ और कुछ नहीं है। इस प्रकार के तथ्यों की बाह्य वास्तव्य की वस्तुओं से तुलना करना विषय का उपहास करना होना। जो धारमी धार्मिक जेतना से अधिक ठोस यथार्थता की मांग करता है वह नहीं जानता कि दरअसल वह चाहता क्या है।^१ उसकी दृष्टि से यथार्थता एक अनुभव है जो धारम-धनात्म के भेद से पहले प्राता है। वह ऐसे किसी भी अनुभव के पूर्व प्राती है जिसे हम अपने अनुभव के रूप में जानते हैं। बीडले कोई धर्मादी या भौतिक ज्ञान को सिध्दा माननेवाला (सात्तिपसिस्ट) नहीं है क्योंकि धारम एवं धनात्म का भेद केवल अनुभूत ऐक्य के धारम ही प्राता है। यथार्थता एक ऐसा अनुभव है जो सब सम्बन्धों के ऊपर उठ जाता है। यथार्थता हमारे सम्पूर्ण वास्तव्य को सन्तुष्ट कर देती है।^२

१ 'अपियरेंस ऐन्ड रिबलिटी' पृष्ठ ४४१।

२ प्रोफेसर सी ए डैम्पनेज अपने लेख 'दि मेथोडिस्टिक्स ऑफ़ बीडले (थिस कन्वर्शन: रिब्यू ऑन-बून १९३२ पृष्ठ ४१) में लिखते हैं 'मि समयला है कि बीडले का धार्मिक सत्य (कन्वर्शिय ऑफ़ अपियरेंस) किसी धर्म के कट्टर धर्मधारियों को ज्ञेया सत्य धर्मों के महान रहस्यवादियों के साथ ही अधिक मिलता है।

बर्षों ने ईश्वर या परम सत्ता के साथ आत्मा के मिलन की बात मिली है। आत्मा 'एक अपरिभ्रायेय सत्ता की उपस्थिति का अनुभव करती है। इसके बाद धर्मीय ध्यान, एक सर्वमन्त्रकारी हृद्योगाद्य एक सर्वस्व-विकल्पनकारी विह्वलता का प्रागमन होता है। ईश्वर का ध्यामन हो चुका है तथा आत्मा उसमें समाहित है। अब कोई रहस्य नहीं रहा। समस्याएं सृष्ट हो गई हैं। धक्कार दूर हा गया है, प्रत्येक वस्तु प्रकाश की धारा में लीर रही है। विचार अब विचार के लक्ष्य की दूरी मट्ट हो गई है क्योंकि जिस समस्याओं के कारण यह दूरी थी और छाई था गई थी उन सबका नाश हो गया है। प्रती एक प्रियतम क बीच तीव्र बिछोड़ सत्ता के लिए समाप्त हो गया है। ईश्वर सामने है और ध्यानम् धर्मीय हो गया है—आत्मा विचार एवं अनुभूति के अन्दर ईश्वर में मग्न हो गई है। 'अबस्मात् सत्ता की विस्थापन दूर हो गई है—बे मार एवं विस्थापन जो हमारे बसिक जीवन को निरन्तर इस प्रकार बचाती हैं कि हमें पता भी नहीं चलता। हम कट्टर विश्वास एवं धर्मिस्वाधी से बच गए हैं। यदि धर्म को अनुभूत एवं जड़ नहीं होता है तो उसे पौराणिकता एवं परम्परा से ऊपर उठना होगा और 'ईश्वर के लिए प्यासी आत्मा पर जोर देना होगा। यह मया स्वभाव यह भई भावना मानव-जाति के जीवित धर्मों में दिन-दिन बढ़ रही है।

सच्चा धर्म वह नहीं है जो हमें बाहर से प्राप्त होता है या जो पुस्तकों एवं उपदेशों से मिलता है। यह मानव-आत्मा की उन्नति है जो किसीके अन्दर उस वस्तु को अनापन्न मा प्रत्यक्ष कर देती है जो उसके जीवन के एक से निर्मित हुआ रहता है। जो लोग इस विचारधारा का अनुभव करते हैं, बड़ी शक्ति हैं, इच्छा हैं, वे एक ही बुद्धि के धर्म हैं मने वे एक-दूसरे से जितनी ही दूरी पर रहते हैं। वे समस्त परती पर बिगरे कंठे एक अनापन्न धर्मपरिचित जाति के आत्मा के अदृश्य सम्प्रदाय के सदस्य हैं। वे इस जगत में वह निधि पा सते हैं जो मानव के लिए है। उनके जीवन धर्मीय सत्यता प्रामाणिकता धर्मनिष्ठता एवं सर्वजीव-प्रेम से पूर्ण होते हैं। ✓

छठा अध्याय

धार्मिक सत्य और प्रतीकवाद

१ आत्मविद्या का सिद्धान्त

विभिन्न धर्मों के ऋषियों के वैयक्तिक अनुभव में हमें ऐसे राजन मिलते हैं जो जाति तथा भौतिक सीमाओं में घाबड़ नहीं और जो किंचित् परिवर्तन के होते हुए, प्राथमिक जीवन के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक साक्ष्य उपस्थित करते हैं। प्रत्यक्ष प्राथमिक अनुभव एक मानसिक स्थिति है तथा अनुभव से ही प्राप्त आत्मविद्या सिद्धान्त (मेटाफीजिकल डॉक्ट्रिन) से स्वतंत्र है। अनुभव की यथार्थता धार्मिक सिद्धान्त के सच या झूठ होने पर निर्भर नहीं करती। फिर भी अनुभव का एक संज्ञानी या बोधक मूल्य है। इसमें परम सत्ता मानवात्मा एवं जगत् की प्राथमिक प्रवृत्तियाँ तथा परमेश्वर से एकत्वसिद्धि या मिलन के धर्म एक मार्ग की भी बात पायी है। धर्मस्थिति में विविधताएँ होती हैं जो लोग एक ही धर्म को मानते हैं उनमें भी विविधताएँ मिलती हैं। किन्तु चाहे हम हिन्दू ऋषियों को लें बौद्ध उपदेशकों को लें मुसलमान अफ़सानातुल धरस्तू एवं प्लाटिनस जैसे यूनानी विचारकों को लें या फिर ईसाई रहस्यवाधियों और मुफ़ियों को लें इनमें पाई जानेवाली समानता आश्चर्यजनक है।

जब हम अनुभव पर विचार करते हैं तब हम तात्कालिकता के क्षेत्र को छोड़ देते हैं तथा अनुभव एवं जिसका अनुभव किया गया है उसके बीच भेद करने लगते हैं। किन्तु हम मूलमूल एकता को उस दार्शनिक चिन्तन के द्वारा फिर से प्राप्त नहीं कर सकते जो प्रत्यक्षानुभव की व्याख्या करता है। अनुभव को धर्मों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। फिर भी जैसे हम धर्मित्य और नित्य संघारों में रहते हैं वैसे ही हमें उनके परस्पर-सम्बन्ध को भी समझना और धर्मित्य की सम्भावना में नित्य का धर्म व्यक्त करना चाहिए।

व्याख्या या भाषाण अनुभव के लिए कभी पर्याप्त नहीं होता। जैसे धर्म प्रकार का सात धार्मिक एवं बस्तुनिष्ठ के ईश की पूर्वकल्पना करके समझा है वैसे ही हम मनुष्य की अन्तरात्मा अथवा अन्तिम सत्ता के स्वभाव को समझना या बोध (कॉग्निशन) का संभावित विषय नहीं बना सकते। धर्म की परावर्णन में

कल्पना करना यथार्थता के साथ बनासकार करना तथा बस्तुनिष्ठ एवं धात्मनिष्ठ के बीच एक दरार, एक खाई उत्पन्न करना है। जीवात्मा की परिभाषा नहीं की जा सकती न उसको रिसाया जा सकता है। उसका केवल आश्रय दिया जा सकता है संकेत दिया जा सकता है। फिर भी हम जीवात्मा को एक पदार्थरूप में सोचते हैं क्योंकि इतनी सरियों से धात्मविद्या जीवात्मा का ही निम्नान रखा है। प्राथमिक जीव (बेटम) का विद्यहीनकरण किया जा सकता है परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यही बताने के लिए कि यह ज्ञान का विषय नहीं है अनेक श्रुतियों में परमात्मा या ब्रह्म के स्वभाव के विषय में कुछ कहने से इन्कार कर दिया। वे घोषणा करते हैं कि ब्रह्म एक रहस्य एक गुप्त भेद है। जितना ही प्रतिर्भाव के रूप में उसका अनुभव किया जाता है उतना ही मामूख पकता है कि वह प्रसंगिक है। इस प्रकार का ज्ञान किसी विश्वास या तर्क के उपक्रम से नहीं उद्भूत होता। दोनों का पण्डन न करते हुए भी यह दोनों के परे जाता है। हम बिना सम्य या बाधों के भी संसर्ग स्थापित कर सकते हैं—एक ऐसी प्रतीक्षित्य चेतना प्राप्त कर सकते हैं जो सब प्रतिभूतियों एवं पारभाषों को पार कर जाती है—“एकाकी की एकाकी की ओर उड़ान।”

अनेक श्रुति मीन मन्त्रा में ही सन्तोष कर सते हैं और बाकी का प्राथम्य सेन से इन्कार करते हैं। वे उसका वर्णन पश्य ध्वनि के बिना ही करते हैं। बाह्य प्रपणे धिप्य बाधनि में बहते हैं कि ध्यात्मा धाम्त्, नीरव है “शाल्योऽयम् ध्यात्मा। सत पापटाहन कर्ते है ईश्वर की प्ररप्प भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसा करता उसके विषय में कोई निश्चय प्रकट करने के बराबर है। वह गुड नीरवता है सम्यप्यनिहीन शून्य।” “यदि तुम पूर्ण हो तो ईश्वर के विषय में बचवास न करो यह एकहाट का कथन है।”

१. अध्याय कोटोहर “विद्ययात्मा ईश्वर देव देव (१२३३) वृत् ७ में के म्बन अनुसूच की प्रकथनीयता का अर्थन करते हैं : वह म पूज मानवी ध्यन का प्रतिबन्धन कर जाता है और अन्त होता है बाधों की विनीधनमे म। विनीधनमेकर प्बे शम्बाप्यर से मदी करम् ज्ञान शरीर प्रकृत के मयोदेश में आर्जित मन स बा विनीधनरी बर्ष सीमा म्बय के कान बरी कर्ष कर्षिक एक शिखर कन्वरे की माति धरने उत्पार को जेत हैन है तथा बाध के कर्षन म्बय ध्या में ईश्वर मे म्बो प्रकृत बर-वहा धरने कर जय दे कि उर बरी मन धानी धाम्बन विधि में म्बन ध्या है एव इव बाधों का कर्ष म्बय ध्या। — कम्पतन १ २४ टोप कुपल कानर वृ १ देर्नेनध्याय म्बोऽरीयव शिनीय म्बंभरव (११०३) वृ ७१ में उत्पुन। सिन सुर्ग करन एव कर्ष म्बो में कर्ष म्बय है

मर्षम्ब धरं उ प्रमर्षवृत्ता कम्पतरो
 म्बुर्षव म्बुर्षवमर्षव कर्षमन्वत्तवर्षिनि।
 ध्यात्मा सः सर्वकर्षिण्यमाधि कुपुम्ब
 म्बोऽरीयव धर म्बुर्षव धर ॥—३ (६५१०)।

परम सत्ता पदार्थ के मिश्रण से रहित बिन्दुआत्मा है। उसमें परिवर्तन या रूपांतर भी नहीं सम्भावना नहीं। उसे नाशमान अतित्य वस्तुओं या प्रबहुमान वटनाशों में नहीं प्राप्त किया जा सकता। वह इस स्वान एवं इस काल से विस्तृत परे है, सदा के लिए उन सब चीजों से ऊपर है जिन्हें देखा जा सकता है। जिनकी कल्पना की जा सकती है जो ज्ञात या नामधारी है। हम परम सत्ता ब्रह्म या परमेश्वर के विषय में केवल नकारात्मक रूप में ही कुछ कह सकते हैं। परम सत्ता जिससे मिश्रण के लिए, एक हो जाने के लिए जीवात्मा सचेष्ट है उन सब चीजों से ऊपर एवं उनके परे है जो सीमित एवं ठोस हैं। उसे किन्हीं उपाधियों से सम्बद्ध करना उसे सीमित करता है। हमें सम्पूर्ण सीमित वस्तुओं का निराकरण करके ही असीम आत्मा के एकरस एवं परिपूर्णता को सुदृशित रख सकते हैं। हम केवल 'यह नहीं यह नहीं (नेति नैति) कह सकते हैं।

जैसा कि ठाप्रो टैह-रिच कहते हैं "जिस नाम का नामांकन किया जा सकता हो वह वास्तविक नाम नहीं है।" यद्यपि ईश्वर में जीवात्मा अन्निविष्ट है पर अपने अपार रूप में ईश्वर उसके परे है। वह धीरे धीरे प्रत्येक प्रकार के निबन्धन एवं पुष्टीकरण के परे है। सत क्सीमेष्ट कहते हैं "ईश्वर की खोज अंधकार में की जानी चाहिए।" पुनः सूडो डायोनीसियन कहते हैं "इस अंधकार से जो प्रकाश के परे है हम प्रार्थना करते हैं कि हम वहाँ पहुँचकर दृष्टिमान एवं ज्ञान का लोप करके न देखने और न जानने के तन्म्य द्वारा ही उसे देख एवं जान सकें जो दृष्टि एवं ज्ञान के परे है। वही असीम दृष्टि और ज्ञान है।"^१ "यह ईश्वर अंधकार वह अस्पष्ट प्रकाश है जिसमें ईश्वर का निवास बताया जाता है। जो न देखकर और न जानकर भी ईश्वर को देखने और जानने की क्षमता रखता है वही इस अंधा में प्रवेश करता है क्योंकि वह वस्तुतः उसीमें है जो दृष्टि एवं ज्ञान के ऊपर है।"

संत प्रेगरी पलामाज के अनुसार हम ईश्वर की परिभाषा सत् के रूप में भी नहीं कर सकते क्योंकि वह 'प्रत्येक नाम के जिसका नामांकन किया जा सकता है, परे है। सत टामस के मत से "ईश्वर-सम्बन्धी मानव-ज्ञान की अन्तिम उपस्थिति इतना ही ज्ञान देने में है कि हम उसे नहीं जानते या वह अनुभव कर देने में है कि उसके विषय में हम जो कुछ सोचते-समझते हैं उसे भी वह पार कर जाता है।"^२ 'अपनी ज्ञान की भाषा में हम इतना ही जानते हैं कि ईश्वर प्रकाश है।"^३ एकहाट

- १ 'ट्रोमेय' १ २३ २ १२।
- २ 'मिडिलेन विरोधोवी' २।
- ३ 'जे.टी' ५।
- ४ 'रिपोरेरिवा' ७ १ ५८ १४।
- ५ 'इन बोडिमस द मिनिटेड' १ २ पृष्ठ ९।

उपनिषद्-वाणी की पुनरक्ति करते पान पड़ते हैं ईश्वर किता भी वस्तु के समान है धीर किछी भी वस्तु के समान नहीं है। वह सत्ता व परे है। वह धूम्य है।" ईश्वर स्वयं मन् है धर्मतिम है धर्परबतनीम है उपाधि रहित है इस मा उस किमी भी रूप से रहित है।

नियेधारक बगनों से हमें यह संशय नहीं होना चाहिए कि वह परम सत्ता परमेश्वर, निपधवाची है। वह तो समस्त वास्तव्य बस्तुओं का आधार है। इसी लिए उस परस्पर बिरोधी उपाधियां वी जाती हैं। परम सत्ता को कभी-कभी धर्मनिजत्वमय परमेश्वर या साकार ईश्वर के रूप में देखा जाता है। इस रूप में वह सब साधकों पर अपना प्रेम एवं अनुग्रह उडलता है। परम ब्रह्म धर्तीन्वय एवं प्रथम सत्ता का धार्म्यात्मिक धारण, धार्मिक इरादा-प्रणालियों में ईश्वर का आदर्श हो जाता है। ध्यान का स्थान प्रार्थना से लेती है ज्ञान का स्थान प्रेम से लेता है मोक्ष का जगह स्वर्ग का धीवन सा जाता है। धार्मिक अनुभव में हम परम प्रकाश का ज्ञान तथा ईश्वर से वैयक्तिक मिलन का मो प्राप्त होते हैं। दोनों में एक दूसरे का त्याग नहीं है। भारत के प्रसिद्ध धर्मवादी विद्वान् एतरे ने धार्म्यात्मिक धर्म एवं वैयक्तिक समूचन की बात कही है। पुरातन एवं मनीन धर्मदिश (टेरटापेष्ट) भी वैयक्तिक धर्मवादी में धार्मिक समागम की बात कहते हैं। यद्यपि भारतीय धर्म में वैयक्तिक परा भी मिलता है परन्तु उसमें सर्वोच्च यथावता को परब्रह्म के रूप में ही मानने पर बल दिया गया है।

२. वह तुम हो।

सभी धर्मों के ऋविगण इस बात पर एकमत हैं कि मानवात्मा में कोई ऐसी चीज है जो उस परम, प्रकेबल (एबसोस्यूट) से सम्बन्धित है बल्कि वही परम है। यह धारणा की मौलिक धूम है यह धारणा धीर परमात्मा का मिलन-बिन्दु है यह सम्पूर्ण सौन्दर्य सम्पूर्ण पिबतक बल्कि सार्वदेगिक महत्त्व के सम्पूर्ण बिचारों का स्रोत एवं आधार है। धारणा धर्तीन्वय सत्य को इसीलिए कहना कर धरती है कि जब वह मनोरमम वेग पर उतरता है तो वह उस राज्य के साथ मिलकर एक हो जाती है। वह जगो जाननी है जगोसे प्रभर हो जाती है।

धूम्य की धर्मप्ररुति (धारणा) धीर बरस एतरे के साथ (ब्रह्म) के बीच पूरा साधन्यस्य है। मानव एक ऐसा मूत्र ब्रह्माण्ड (मादकारात्म) है जो जगत् व सम्पूर्ण जगो—धर्मिज उद्भिज प्राणिज मानवी एव धार्म्यात्मिक का मम्मि मम है। ममो धर्मियां प्ररुतन कर म उरमें बिद्यमान है तथा जगत् धाना गर्ज नात्मक जगम उमके द्वारा धानी रगे हुए है। यह जगे धर्म जगत् की धीर धपने को धानी सर्वनात्मक वास्तव के अनुसार का देना है।

जब तपनिषदें इस महासत्य की घोषणा करती हैं कि "यह तुम हो" जब कुछ उपदेश देते हैं कि प्रत्येक मानव-व्यक्ति अपने अन्दर कुछ या बोधिसत्व होने की क्षमिता रखता है जब यहूदी कहते हैं कि "मानवात्मा ही ईश्वर का शीपक है" जब ईसा अपने श्रोतार्थों से कहते हैं कि स्वयं का राज्य उन्हींके अन्दर है और जब मुहम्मद जोर देते हैं कि ईश्वर हमारे उससे भी ज्यादा गहरीक है जितना हमारे पने की बमनी है—तब इन सबका एक ही प्राण्य होता है कि जीवन की समस्त महत्वपूर्ण वस्तु मानव के बाहर की किसी चीज में नहीं बल्कि उसके चिन्तन एवं भावना के मूल स्तरों में ही पाई जा सकती है। हमें उसे यहाँ-वहाँ खनी नहीं देखना चाहिए क्योंकि 'देखो, ईश्वर का राज्य तुम्हारे ही अन्दर है'। 'क्या तुम नहीं जानते कि तुम्ही ईश्वरके अन्दर हो और ईश्वरत्व तुम्हीमें निवास करता है?'^१ पीटर त्रितीय के शब्दों में 'हम ईश्वरीय प्रकृति के भागीदार हैं।'^२ प्लाटि नस हमसे कहता है कि हम अपने को जान सकते हैं क्योंकि हम स्वयं अपने नमीरतम तम में अज्ञेय हैं। 'भारमा का अन्धा मन्म है उस अज्ञेय का स्वर्ण करना और उसे, किसी दूसरे प्रकाश के सहारे नहीं उसी अज्ञेय के साधन से देखना—जैसिकि हम सूर्य को स्वयं उसीके प्रकाश से न कि किसी दूसरे प्रकाश के सहारे देखते हैं।'^३ संत आबस्टाइन कहते हैं "तुम मेरे उससे भी बहुत अधिक अन्दर हो जितना मेरा अन्तर्दुःख मात्र है।"^४ संत टागस कहते हैं 'पवित्रात्मा अपने अन्तर्दुःख में हमारे मन में स्थित है।'^५ अगोसिनस अपनी पुस्तक 'बुन ऑफ स्पिरिट्युअल इन्स्ट्रक्शन' के अन्त में आत्मा के प्रकल्पन अन्त की बात कहते हैं।

'महतीनों अन्तर्दुःख समताओं (कैकस्टीब) से कहीं ज्यादा अन्तर्दुःख एवं अन्तर्दुःख (अन्तर्दुःख) है क्योंकि यह उनका उद्गम है स्रोत है। यह पूर्णतः अन्तर्दुःख एवं एकक्य है इसलिए इसमें बहुत्व नहीं है बल्कि एकत्व है और इसके भीतर विविध अन्तर्दुःख समताएं एक हो जाती हैं। यहां पूर्ण सान्ति है नमीरतम नीरवता है कोई प्रतिमा कोई परछाईं नहीं प्रवेश नहीं कर सकती। इस गहराई के कारण ही जिसमें ईश्वरीय मूर्ति क्षिपी पड़ी है हम देखक्य हैं। इसी गहराई को 'भारमा का स्वर्ण' कहा जाता है क्योंकि ईश्वर का राज्य इसीके अन्दर है। ईसा प्रभु ईसा ने कहा है 'ईश्वर का राज्य तुम्हारे अन्दर है तथा यह ईश्वर का राज्य, सम्पूर्ण

१ अपने अपने के प्रति मरत्यय की जेरी से तुम्हारा बीजिय : सुक्रोडसि सुक्रोडसि, मिरक्यमोडसि ।

२ १ 'अरिबिन्त' ३ १३ और नी डेविड, १ 'अरिबिन्त' ३ २३ 'रोमस २ : १ ।

३ १ ४ ।

४ 'विचरत' २ ३ १७ ।

५ 'अन्तर्दुःख' ३ : ११ ।

६ 'स्पिरिटुअल इन्स्ट्रक्शन' पर धरम अन्तर्दुःख में देन ३-११-११ ।"—सी डेव, ४ : १० ।

ब्रह्म-सहित स्वयं ईश्वर ही है। इसलिये यह धनामृत तथा भक्षणी गहराई सम्पूर्ण सञ्चित वस्तुओं के ऊपर समस्त इन्द्रियों एवं धारितियों के ऊपर है यह पास एवं स्थान का धारितामय कर जाती है तथा उस ईश्वर से निरम सांनिध्य रखती है जिसे उसका धारण्य हुआ है। इतने पर भी यह निश्चय ही हमारे अन्दर है क्योंकि यह मन का प्रणाम गर्त है तथा उसका अत्यन्त अन्तःस्थ है। ईश्वर धनुःमृत गर्त अपने को हमारी धारणा या उपभूत गत बहुर पुकारे तथा उसे अपने साथ जोड़ने प्रभव कर से जिसे ईश्वरत्व के गहरे सामर में डूबकर हमारी धारणा परमात्मा में अपने को निमग्न कर दे।^१ कास के संत जॉन कहते हैं "तू खुद अपने तर्क उस खोजने न जा क्योंकि उससे ध्यानाश्रय और बकावट पाएगी। और तू उसे न वा सकेगा क्योंकि उसकी कोई उपस्थिति या पश्ययकता उससे ज्यादा निश्चित स्थावा सन्तुष्ट प्रथावा अंतरण नहीं है जो अन्तःस्थ है।" एक हाट का वचन है "कोई धारणी जिसेने पहले अपने को नहीं जाना है ईश्वर को नहीं जान सकता। "बुद्धि हम ईश्वर को एतत्त्व में पाते हैं वह एतत्त्व उससे अन्तर होना चाहिए जो ईश्वर की योज करने पता है।" के पुन कहते हैं "अनेकसर्वोच्च रूप में ईश्वर के हृदय तन पहुंचने के लिए, पहले सामय को कम से कम अपने हृदयसत्त्व तन पहुंचना चाहिए क्योंकि कोई ऐसा धारणी ईश्वर को नहीं जान सकता जिसेने पहले स्वयं अपने को नहीं जान लिया है। धारणा की गहराई में उठते हुए तब जब तब पहुंचने के बाद ही तब जाओ क्योंकि जो भी ईश्वर कर सकता है वह सब बहा वैश्व है।^२ यदि मानवार्था एवं ईश्वर पुनः अन्तःस्थ होते तो धार्मिक प्रमाण या सम्प्रत्ययता की कोई भाषा हमें ईश्वर की यथार्थता तब नहीं पहुंचा सकती थी। येते के बजा है यदि धारण्य मूर्ध-अनुन न होती तो हम कभी भी प्रकरण की कल्पे देन पाते ? और यदि स्वतः ईश्वरीय धारण्य का निबाम हमारे अन्दर न होता तो हम ईश्वरी वस्तुओं में धारण्य कल्पे प्राप्त कर सकते ?" ईश्वरत्व या दिव्यता हमें धारण्य-विशुद्ध कर देती है क्योंकि वह (ईश्वरत्व) हमारे अन्दर भी है। जब वैयक्तिक धारणा सबके तरतरूप धारणा से मिलकर एक ही जाती है तब मुक्ति प्राप्त होती है धारण्य निश्चि हाती है। यह मुक्ति या धारण्यनिश्चि धारण्य मौख्य तथा अम्याह्न होती है।

३ धार्मिक प्रतीकवाद

हिन्दू विचारकों ने श्रुति या वेद, जो धनोरण्य या मानवीय विचार प्रणामी से स्वतन्त्र है तथा श्रुति या परम्परा में जो तर्क एवं व्याख्या पर धारित

१. वेदिक इत्यं बुधदे वत्पर एन वेदने दिव्यताम (११२२) इत्यं १०५-१ ३।

२. हि निश्चिपुन वशिष्ठ वर १ २।

३. कास धीवना इत्यं 'श्रीरत्न वरवार्तेः व वाचन हांकेतन' (११४२), के ग्लोस ३७।
हि वदि एते इत्यं २०, इत्यं ३५।

है भेद किन्ना है। पहला सिद्ध सत्य की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है जो पूर्णतः आत्मा से निःसृत होता है तथा जो असंश्लिष्ट एवं असंश्लिष्ट है। ये उद्गार या कथन अधिभयव्यक्तिक (सुप्रा-इन्डिविजुएस) सार्वभौमिक एवं वैश्वी हैं। ये प्रत्यक्ष हैं सीधे हैं विधावास्पर या असम्बद्ध नहीं हैं। अनुभाव वाली प्रत्यक्ष अनुभव प्रथमा सनातन सत्य में सक्रिय सहभाष विस्वासजन्य वर्मज्ञान में अप्रत्यक्ष भक्ति सहभाग लेने से मिल है। प्रमेरदृष्टि में व्यक्त व्यक्तिक रूप में ज्ञानोपलब्धि नहीं करता बल्कि अपने अन्तरगत सारतत्त्व से उसमें भाव मता है जो वैश्वी तत्त्व या सिद्धान्त से मिल नहीं है। साम्प्रतिक निश्चितता निरपेक्ष है क्योंकि नहीं जाता एवं जात दोनों एक हैं दोनों में प्रमेर है। यही ज्ञान ईश्वर एवं मानव का सबसे पूर्ण मिलन है।

इसकी अभिव्यक्ति में सत्य पर बहुत नहीं की जाती न कठिनाइयों का उत्तर दिया जाता है। जो स्वयंसिद्ध एवं निश्चित है उसे ही यह प्रतीकारमक साधनों से संसूचित करता है। इससे पाठक का धोता में यह प्रच्छन्न ज्ञान जानरित हो उठता है जो उसके अज्ञान में उसके पास है और जो सदा अपने अन्दर विद्यमान है। सहजप्ररित ज्ञान प्रतीकारमक एवं वर्णमात्मक होता है यह बुद्धिसंगत प्रमाणी का प्रयोग परिपूर्ण ज्ञान का अधिक निश्चितता के साथ वर्णन या अनुवाद करने में केवल प्रतीक रूप से करता है।

जब वेद को कामातीत कहा जाता है तब उसका आशय यही होता है कि एक परमसत्ता-असंश्लिष्ट अन्तर्दृष्टि अपने अज्ञान से कामातीत है तथा अभिव्यक्ति की निश्चितता के लिए मानवीय प्रावश्यकताओं से अज्ञानाभित है। जब यहूदी कहते हैं—यूसा की परम्परा का अन्त नहीं हो सकता तब उनका अर्थ यही कामातीत ज्ञान की ओर रहता है। मीमोनाइयों के अनुसार 'तोर' निरय है उसके साथ और कुछ बोझ या बटावा नहीं जा सकता। "मैं निश्चयपूर्वक तुम्हें कहता हूँ कि जब तक स्वर्ग एवं पृथ्वी का नाश नहीं हो जाता तब तक का सम्पूर्ण कार्य हो चुकने तक बिबि-निमम (सौ) से एक बिन्दु भी किसी तरह इतर-उत्तर नहीं हो सकता।" "यदि ईश्वर की इच्छा इसके विपरीत नहीं हुई तो वे तब तक नहीं रहेंगे जब तक कि स्वर्ग और पृथ्वी अपनी जगह विद्यमान हैं।" मुहम्मद कुरान के सम्पादक ने। इसका तत्त्व असंश्लिष्ट एवं निरय है ईश्वर के साररूप में निहित है और फरिश्ते बिबाईन द्वारा पैगम्बर मुहम्मद तक पहुँचाया गया है। यह कामातीत कोई साहित्यिक कागज-पत्र नहीं है बल्कि यह ज्ञान है जो सब सुगों के प्रवृत्त बनने को प्राप्त है।^१ इस ज्ञान की साम्प्रतिक उपलब्धि रबाब एवं

१ 'मैम्' २ : १८।

२ कुरान १ : १७७।

३ मारकस-निवादी टॉ. फिक जपनी कुरान 'दि मारकेड इतिक्वेन्ट्री ऐन्ड अदर केन्स' (संश्लेषी मारकस, १९१) में मारकस की पूर्णतः एवं अन्तिम सम्पाद होने का दावा करते हैं,

वास के घातगत हो सकती है जिसका बहुत बड़ा प्रभाव इन अन्तर्दृष्टियों के सार्वकर्मों पर पड़ता है। नित्य सम्बन्धी मानवीय बोध हमारे सामान्य ज्ञान में प्रबिष्ट हो जात है, सपाकार प्रथम कर सते हैं तथा उन लोगों के लिए स्पष्ट हो जाते हैं जिनके पास वे हैं उनके द्वारा वे दूसरों के पास भी पहुँचते हैं। यदि य बोध सामान्य ज्ञान के सत्य के बाहर ही रह जायँ तो वे दूसरों तक पहुँच ही न पाएँ। धार्मिक सत्य में कोई कृत्रिम नहीं हुई मद्यपि सत्य की अभिव्यक्ति में बुद्धि या विक्रम हुआ है। प्रत्येक धर्म में कुछ मूलाधारवाकियों के प्रस्तावा दूसरे बोध इन धर्मग्रन्थों को ईश्वरीय कृति या अद्वितीय मानने से इन्कार करते हैं।

धार्मिक प्रतीकवाद के द्वारा अनेक कर्मों में सत् की ईश्वर की कल्पना की गई है। हम एसी स्थापनाओं में ध्यान अनुभवों का व्यक्त करते हैं या प्रताकारमक एवं कर्मकारमक होती हैं। हम ध्यने धनुमय उन लोगों तक, जिनको उनका परिचय नहीं प्राप्त है एसी वस्तुओं के द्वारा ही पहुँचाते हैं जिनका ज्ञान उन्हें है। एत मन्त्रा प्रतीक स्वयं या छाया नहीं है प्रगाथ या जिनकी पहचान ही हमारी समझ में पड़े है उगती यह जीवन अभिव्यक्ति है। वेदिक धर्म तथा इरधर्म के धनुमायी धर्मि को परमात्मा का प्रतीक मानते हैं। धनस्यनाय (इष्टगता) की कर्मक में उन्हें उक्त धर्मि के रूप की कल्पना करा दी। उपनिषद् उक्त प्रथाओं का प्रकाश (ग्योनिता ग्यानि) कहती है। बाह्ये और जिनियम माँ ईश्वी प्रस्ता (विवाहन सादर) कहकर हमका बयन करते हैं।

ईश्वर के साथ धनुष्य के सम्बन्ध का बनाने में एक परिचित मानवी सम्बन्ध का प्रयोग प्रायः किया जाता है। ईश्वर पिता है। वेद-उपनिषद् इसका प्रयोग करते हैं। ईसा की विद्याओं एवं उपदेशों में तो यह बार-बार धाता है। गेससमैस में ध्यनी म्बा म वे नीरा पड़े थे "मम्बा पिता ! " उनकी एक उक्ति यह बनाई जाती है "पिता ! उन्हें समझ करो पिता ! सिरे हृदयों में मैं ध्यनी ध्याना का धर्म्य करता

विन्नु वेमा वे देवैः प्राकृतिक बलों के लिए नहीं कहते। इनमें ईश्वरकर्म भा सुनिर्मित है। ईश्वरकर्म में वे कर्म द्वारा बलों की धर्म्यता में भागीदार बनते हैं वे कर्म उन्हे विद्वान् प्रकार की विज्ञान एवं धर्मिकता का समझा करवा कर रहा है क्योंकि ध्यनी ही गण ही म इनमें ध्यने के उपदेश को धर्मिकता का बना दिया है।' पृष्ठ ४२।

१. उ. प्रस्ता १.२४. १० को, पड़े ने जिनकी की कर्म में धर्म्य का "मरे का म के सुनिर्मित धनुष्य को देगो दुष्ट, एक ही प्रथम को विचारधरा में लिए, धर्म्यता की है। एक कर्म के बनाने के कर्म में मैं देवता ही विन्नु धर्म्य के विचारों के कर्म में मैं सवेता करी है। और इन दोनों विस्तारों के धर्म्य मुझमें अब भी लागू है। यदि मुझ ध्यने निरी धर्मिकता का विष्ट, ध्यने धर्मिक कर्म के लिए एक ईश्वर को धर्मिकता का धर्म्य ही मैं बनाती थी मुझा प्रस्ता कहता। —परिचयधर्म्य वि. निता ३६ = धर्म्य (११०), २४ ४।

हूँ।^१ अपने सिध्यों से वे कहते हैं जब प्राणना करो कहो—'मिरे पिता !'^२

विभिन्न प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ परमेश्वर की विशालता के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं। दामस एक्विनास ने भरस्तू से मनुष्य एवं ईश्वर में मानवीय ज्ञान एवं ईश्वरीय सत्य में 'तुलना' का सिद्धान्त ग्रहण किया। वे तर्क करते हैं कि प्राकृतिक बर्मे में या मनुष्य को कुछ अपनी बुद्धि से प्राप्त करता है उसमें सत्य के कुछ तत्व तो होते हैं किन्तु वे धार्मिक होते हैं और उन्हें ईश्वरीय सान्निध्य के अनुभूत सत्यों से पूर्ण करने की आवश्यकता पड़ती है। हमारी धारणा जिस रूप में सत्य को हमारे मन में उठारती है वह ईश्वर की महार्पता के सामने व्यत्यस्त तुल्य होती है। हम बर्मे-सिद्धान्त या प्रतीक को निष्ठा के कारण स्वीकार करते हैं क्योंकि धर्मशास्त्र मोर्ने के लिए ईश्वरीय सत्य में भाग लेने का वही एक संभव रांग है। रूप और प्रतीक धान्तरिक साधना में हमारी सहायता के साधन-भर हैं। श्रदियों को सदैव यह शोच रहा है कि जब मानवीय ज्ञान अन्तिम सत्य या परमेश्वर के स्वभाव की व्याख्या करने असती है तो टूट जाती है असमं हो जाती है। ज्ञान प्रत्येक वस्तु की व्याख्या करने का दावा नहीं करता। इसकी सीमाएँ इतनी स्पष्ट हैं कि महार्पता की प्रकृति की पूर्ण एवं अन्तिम व्याख्या पूर्णता एवं अन्तिम निरवय का दावा करने पर स्वयं ही हास्यास्पद हो जाती है। ईश्वराभिव्यक्ति चाहे कितनी पूर्ण और अन्तिम हो जब वह मानवीय कल्पना के श्रेण में प्रवेश करती है तो मानवीय मस्तिष्क की सम्पूर्ण अपूर्णताओं के शरीर हो जाती है। सत्य वा ईश्वर के मानवीय चित्रों के विषय में अन्तिम या अप्रभूत होने का दावा करना मनुष्य के लिए उस चीज का दावा करना है जो ईश्वरीय है। यदि कोई हमसे कहता है कि ईश्वर-सम्बन्धी उसके विचार ही अन्तिम सत्य हैं तो उसे मानवीय निर्णय ही मानना चाहिए और उसे निर्भ्रान्त नहीं समझना चाहिए।

प्रतीकवाद में जो विविधता पाई जाती है वह अनुभव की प्रकृति पर नहीं बरन् उस काम एवं स्थान में प्रचलित धार्मिक एवं साम्प्रदायिक आरणाओं पर निर्भर है। श्रदि वा द्रष्टा की भाषाओं पर उनका रंग पड़ जाता है और उसी पार्श्वभूमि के सहारे वह अपने प्रकाश की व्याख्या करता है।

बहुरंगी शीशों के महाराज-सा जीवन

गित्यता के उज्ज्वल प्रकाश को अभिरञ्जित करता है।

—शेमी

एक दूसरा कवि कहता है 'पुरातन काल के प्रत्येक बीसीमें प्रवक्ता का तथा भारत को सम्पूर्ण परिवर्णगाव के लिए—कि जब ईश्वर ने उसके द्वारा संपीत

१ 'न्यू' २३ १४ ४२।

२ 'न्यू' २:१।

बछामो ! बकीसो ! तुम्हारा नाम हो क्योंकि तुमने ज्ञान की कुंजी खूब हटा ली है। तुम खुद धन धन्दर प्रवेश नहीं करते और जो प्रवेश कर रहे थे उनको तुमने बाधा ही पहुँचाई है।” जब बुद्ध ने वेद का ध्वस्त किया तो महान सत्य विकृत होकर जिस धनुष्याक कर्मनाण्ड के रूप में रह गए थे उनकी उगहाने आशाचना की। जब संत पास ने पृथ्वी विधि-विधान को आमाग्य किया तो उस मौक्तिक आचारवाद को आमाग्य किया या आ आध्यात्मिक जीवन से रहित हो गया था। निरतिघम या पूर्ण सत्य धरती सम्पूर्ण समक अभिव्यक्तियों से परे है। अभि व्यक्तियों सीमित हैं जैसाकि उनकी विशेषताएँ एक विविधताएँ प्रकट करती हैं। सत्य की प्रत्येक अभिव्यक्ति केवल आदेशिक है वह अस्य सब मूर्तियों को हटाकर एकमात्र मूर्त नहीं बन सकती। वह जिसे व्यक्त करती है उसकी एकमात्र अभिव्यक्ति नहीं है वह वाचा नहीं कर सकती। कोई विविष्ट रूप स्वभावतः सीमित होता है और बुद्ध न कुछ अपनी सीमा के बाहर झाड़ देता है।

अिन्होंने एक विविष्ट प्रथामो को ग्रहण कर लिया है और जो निरुकार धरूप सत्य तक नहीं पहुँच पाए हैं वे प्रायः अपने सापेक्ष सत्य को ही पूर सत्य समझ बैठे हैं और धारण सत्यों को ऐतिहासिक तथ्यों से भिन्नकर धम उत्पन्न कर देते हैं। विभिन्न धर्म विधि आयाधो के समान हैं जिनमें ईश्वर ने मनुष्य से बात की है। ✓

होगा है; जिसमें जितने मनुष्य होते हैं उन्हीं पर ज्ञान की शुद्ध रूप से धारण देना है।
- कोशा मन्त्र २ : २६।

श्री ११ अक्षरों का अर्थ है : “ईश्वर ने मानव की बुद्धि को किसी विशिष्ट प्रणाली से धारण करा दिया है। जो सम्बन्ध जीवन का वह प्रणाली है जो दे लनी प्रणालियों से है बुद्धि ईश्वर ने मनुष्य पर ही अनुमान किया है; अनुमान-नाम ए वि ११११ र अर मदी विद्य है। एष मन्त्रण दूमे मन्त्रण का विशेषता जना है।

१ मू ११ : २१।

सातवाँ अध्याय

ईश्वर सिद्धि और उसका मार्ग

१ आत्मिक पुनर्जन्म

प्राथम्य पर्यन्त इस बात में अपनी विशिष्टता प्रकट करते हैं कि वे वास्तव-श्रमाय फलने की अपेक्षा, अनुभव पर अधिक बल देते हैं। यह ही है कि उनमें भी अनुष्ठान या कर्मकाण्ड और पीराणिक कथाएँ हैं किन्तु उनके सम्पूर्ण इतिहास का नियंत्रण करनेवाली धाधारभूत आध्यात्मिकता का तभीकरण है। परम का उद्देश्य उपलब्ध सिद्धांत में बौद्धिक एकरूपता कायम करना नहीं, तत्कर्मकाण्डीय पवित्रता है, धर्म का धर्मिप्राय धार्मिक है, केवल तार्किक विचार-परिवर्तन-भाव नहीं है। वह विद्या द्वारा प्रविष्टा को स्वानुभूत करता है। जब विद्या या बोधि की वह उपलब्धि होती है तब धर्मिक एवं मिथ्या जाती है। इससे धर्मिक की प्रकृति पूर्वतः नूतन रूप से होती है और अन्तर्मुखी ध्यायन में लीन हो जाती है। तब हम इसी अर्थ में नूतन-ध्यायन का अनुभव करते हैं, कहीं कोई तनाव की विचार की भावना नहीं रह जाती बल्कि सामन्वय स्थापित हो जाने की अनुभूति होती है। सब चीजें एक ही वस्तु के अंश-सी लगती हैं। मोक्ष निर्वाण और ईश्वरीय राज्य मन की ध्यात्मिक स्थितियाँ हैं। जो भी धर्म का उद्देश्य प्राप्त करने में सफल हो गया है उसका मन प्रकाश से अपमय हो उठता है, हृदय सुख-दुःख ही हो जाता है तथा इच्छा-वशित परिच्छिन्न हो उठती है। जीवन का नूतन मार्ग मानव के सम्पूर्ण अस्तित्व को अक्षिप्तमान बनाता है और वेष्ट रूप दे देता है। यही 'द्वितीय जन्म' है। 'एक नूतन' लुपित हो गई है, इसी तब चीजें नई हो गई हैं। हिन्दू एवं बौद्ध विचारधारा में सामान्य रूप से कर्म ईश्वर के प्रति अर्पण है, उपहार है। यह उद्यम बल का प्रतीक है जो हमारी विद्वत्तास वास्तव्यों से अधिकाधिक यशस्वी जीवन की ओर लेता है।

इस अर्थ-वचन की अर्थ-रूप ही और है तथा वास्तव्य-जीने है—यह नववर्गीयता का कथन है। 'मैं अर्थ-सीक का हूँ तुम लोग इसी बुनियाद के हो।'

जो भी समस्त हृदय से सत्य के लिए प्रयत्न करते हैं उसका उन्होंने ईसाई बन्धुओं के रूप में स्वागत किया है। ध्यान-स्टाइन का कथन है 'यात्रा जिसे ईसाईधर्म कहा जाता है वह प्राचीन काल के सौर्यों में भी वर्तमान था और मानवजाति के धारम्भ से उस समय तक कभी उसके अस्तित्व का सोच नहीं हुआ जब तक कि स्वयं अइस्ट का आगमन नहीं हो गया और मनुष्यों में एकत्र होकर ईसाईधर्म की सच्चा धर्म कहना धारम्भ नहीं कर दिया वह धर्म जो पहले से ही वर्तमान था।' ईसाई धर्म प्राचीन धर्मों का (कुछ ऐसी चीज का जो नित्य है और जिस विधि-विधान को पूर्व करने के लिए न कि नष्ट करने के लिए अइस्ट का आगमन हुआ) ही प्रवर्तन एवं धनुवर्तन है। भक्ति का साधन भी उत्पन्न नहीं है यद्यपि उसके इन मूल एवं संस्थापि-सम्बन्धी उन परिस्थितियों के कारण विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं जिनमें वह अपने को प्रकाशित करता है। ईसाई होना एक बाह्य धर्ममत को स्वीकार करना नहीं है बल्कि एक अन्तर्मुखी जीवन जीना है।

जब 'फौर्य गार्सेस' (बाइबिल के अनुपम उपदेश) के अनुसार 'ईसा कहते हैं "मैं इसलिए आया कि वे जीवन प्राप्त करें प्रभु जीवन प्राप्त करें" तब उनका मतलब नहीं होता है कि वे धारमियों की धार्मिक खोज से हैं उनकी भावना को प्रहलसीमता को तीव्र कर देते हैं उन्हें उनकी नीच से उभा देते हैं और उनके अन्दर जिस नित्यतत्त्व जिस परमेश्वर का निवास है उसकी सच्चाईता उनके सामने प्रकट कर देते हैं। वह फिर से जन्म लेने वीसा ही है। संत पास ने जो पत्र इंग्लिसियन सौर्यों को लिखा 'उसमें धारमा के अन्त में पुनर्जन्म का विचार विद्यमान है 'अपनी पुरातन प्रकृति को जो तुम्हारी पूर्वजीवन-प्रकृति से सम्बन्धित है और प्रबन्धनापूर्व वासनाओं द्वारा विकृत हो चुकी है त्याग दो और अपनी मनोभावनाओं में नये धन आधो वह नवीन प्रकृति प्रहल करो जो शुद्धता एवं पवित्रता में ईश्वर से मिलती-जुलती है। इस पुनर्जन्म प्रबन्धना नवीन प्रकृति के निर्माण के लिए संघर्ष करना पड़ता है। बुद्ध को 'मार' पर, जदबुद्ध को 'अहरिमन' पर एवं ईसा को अँतान पर विजय प्राप्त करनी पड़ी थी।

यह पुनर्जन्म, यह पूर्व अज्ञानिनीता हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हम अपने विकृत स्वभाव अपनी स्वार्थसिद्ध महत्वाकांक्षाओं पर कैसे विजय प्राप्त कर सकते हैं? जो यह से पीड़ित है वही सेलिमा बजारता है कि "मे पुन हमारे हैं वह धन हमारा है। इस प्रकार के विचारों से मुक्त सदा व्याकुल रहता है पर जब लुभ

१ ११६ १ ११ १।

१ ४ : ११-१४। 'सोमराधी शौक को बदल' के संस्थापक जॉर्ज फ्लेम ने एक बार कहा था : "हम करते हो अदरुत ने यह कहा, बन्ने शिल्पो में यह कहा, पर मैं शूक्य हूँ—हम क्या करते हो ?" का इत्य करते हैं—"मैं हमने अदरुत हूँ उन के अपने अन्तर्मुख से ऐसा करते हैं।

उसपर उसका स्वामित्व नहीं है तब पुत्रों एवं पुत्र पर क्या होगा ?" ईसा करते हैं जो अपने जीवन को प्रेम करता है वह उस का नेता है और पा इस दुनिया में अपने जीवन से भुगा करता है वह नियंत्रित जीवन में उसे पर्यवहित कर देता है।" एक गुमनाम दीर्घा कहावत है घातमसंख्या कमिबा मरक (के संस्कार) में और कुछ नहीं असता। हम जीन के लिए मरना ही होगा। इस परिस्थिति के लिए प्राचीन (परम्परा) में सम्बन्ध नोचना होगा। घटकारा और ईश्याओं तथा बौद्धिक संस्कारों का छोड़ना कष्टप्रद होता है। पूजा का मार्ग इसका एक बलि एकल एक सममाध्य है वह छुरी की धार की तरह तीक्ष्ण है। कहा जाता है कि इस मार्ग में साक्षियों ह जा अगर न जानी है। इन सीढ़ियों का वर्णन कई प्रकार से मिलता है। उर्दू शीमक प्रकाशक एक एक कहा गया है। इनमें सावनात्मक सांकेतिक व्यवस्था ज्ञानात्मक में से किसी न किसी पहलू पर पर्याप्त जोर दिया गया है। सदैव तक हम भक्ति द्वारा गुड बम द्वारा या बौद्धिक ध्यान द्वारा पहुँच सकते हैं। पर य तीना वस्तुएँ कभी अपने तन ही सीमित नहीं रहतीं वे एक-दूसरे के घट्टर भी प्रवेश कर जाती हैं।

२ भवितमाग

जिन विविध मार्गों से हम अपने जीवन को परमस्वर में प्रतिष्ठित कर सकते हैं उनमें से भक्तिमार्ग नियंत्रण एवं निरदार, अंध तथा नीच मयक विग सुलभ है। यह ईश्वर के प्रति भक्ति रखने एवं उसी इच्छा के भाग अपने का समर्पण करने का वाय है। साहित्य जीवन का मुख्य वेगदृश्य है। सांकेतिक प्रार्थना द्वारा हम हृदय का ईश्वर के साथ मिलन के लिए समर्थ बनाते हैं। सुगममान ज्ञाना अपने का ईश्वरेच्छा के अधीन करना है जागतिक समिप्राय के द्वारा न कि स्वायंपूर्ण हितों के द्वारा संभावित होता है। भक्ति एव प्रार्थना से हम एक ऐसी मन-स्थिति प्राप्त करते हैं जिसमें हम इहलौकिक बस्तुओं में घनामस्त हो जाते हैं और ईश्वर न कुछ जान है। भक्ति में निष्ठा एवं प्रेम निहित है।

ममक भोजन की स्वादरहितता को दूर नहीं करता वह बिसकुल फीका रहता है। यदि मैं तेरी रचनाओं में ईश्वर का नाम पढ़ने का प्रयत्न नहीं पाता तो मुझे उनमें कोई रुचि नहीं है। यदि तेरे प्रवचन में उसका नाम प्रतिष्थित होता नहीं मुगता तो मुझे उसमें कोई बिसवस्ती नहीं है। मेरे मुंह के लिए बहो मधु है। मेरे कानों के लिए बहो संगीत है। मेरे हृदय के लिए बहो प्रानन्द है। वह मेरे लिए प्रीत्य भी है। क्या तुम लोगो ने से कोई शोकग्रस्त है? है ता उसे अपने मुंह एवं हृदय में ईशा का स्वाद देने दो और देखो कि कैसे उनके नाम की व्याति क प्रागे सब बाधन मुप्त हो जाते है और आकाश पुन स्वच्छ हो जाता है। क्या तुममें से किसीने कोई प्रपराय किया है और निराशा के प्रभोभन का अनुभव कर रहा है? उसे (ईश्वरीय) जीवन के नाम का उच्चार करने दो और जीवन उसे सामान्य स्थिति म ला देगा। " यात्री की रामभुत की निष्ठा यह है कि जो ईश्वर का नाम सम्पूर्ण विस्वास एवं सच्चाई से सेते हैं ईश्वर उनपर अवश्य अनुग्रह करते हैं।"

ईश्वर भक्ति के कारण मनुष्य प्रानन्द की स्थिति को प्राप्त करता है।^१

ईसाई-मार्ग प्रधानतः भक्ति-मार्ग है। यह महापान बौद्ध तथा हिन्दू भक्ति धार्योक्तियों के समान ही है।

मुहम्मद प्रार्थना उपवास दान तीर्थयात्रा एवं जम द्वारा प्रसादन का विधान करते हैं। प्रार्थना साधक को ईश्वर के मार्ग पर आधी दुरी तक पहुंचाएगी उपवास उसे महम के द्वार तक ले जाएगा और दान महम म प्रबंध कराएगा। प्रत्येक मुसलमान पुजारी है और उसे मध्यस्थ की कोई आवश्यकता नहीं है। यद्यपि प्रत्येक रवान उत्तमा ही पवित्र है किन्तु प्रार्थना में मुसलमान को अपने मन और बिचार-धितित्र के एक बिसनेवासे बिसु मे मन्ना के पवित्र जात्रे पर केन्द्रित करने का विधान है। यद्यपि सभी विन समान रूप से मुम हैं परन्तु दुबवार सार्वजनिक उपासना के लिए निश्चित किया गया। हमने मुसलमानों को धारम विस्मृत होकर गफाठ पहाड़ियों वा बाजार के बीच गढ़े देखा है।

धार्मिक धर्मों मे हम परमेश्वर को अपने पिता एवं सप्टा के रूप में देखत हैं और उसकी कृपा के लिए प्रार्थना करते हैं। यदि परमेश्वर को परम सत्ता (ब्रह्म) के रूप में देखा जाए तो प्रवज्ञा कोई पाप नहीं बनू अपने सत धर्मिण्य से हट जाना

१ 'साग धार्मिक नास्त में उपदेश १५।

२ डी डी लुन्की अपने ग्रंथ 'प्रेसन एन जेन बुकिंग्स' (१९३१) में कहते हैं : अतीना की एक प्रतीका है कि जो कोई पूर्ण विस्वास के साथ अमरा एग लगभिकता पर अपने प्रानन्द प्रवेश में लगत करेगा। उन को सुखो है जो कसका नाम जगत है। एक मन्त्र में लिखा हो सकती है किन्तु यदि वह कसका नाम नहीं सेत तो मित्रा का ऊपर के श्रे उपासेन नहीं है।

३ योगसूत्र १ : ४५।

ही पाप है। पर मध्यस्थता के द्वारा ही हम पुनः प्राप्त पाते हैं। प्रायना द्वारा हम ईश्वर की दया पान का चेष्टा करते हैं। बिभिन्नम लीं अपनी पुस्तक 'दि स्विटि प्राफ़ प्रेयर' (प्रायना की भावना) में लिखते हैं 'तुम का अपना धोर भुकी घाटी कमिना म मिसना उक्तता निरिचित गही है जितना समस्त मनाई के उद्गम मनपान का बिरह-म्यानुस धारमा के प्रति अपना को समुचित करना निरिचित है।

३ कमना

मनुष्य जिस रूप में है बिभिन्न तत्वों का एक प्रकार है। इन तत्वों का सामञ्जस्य करने की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य मध्य मनाई तथा धोर बुराई उधारता एवं पुना कष्ट-सहन के प्रति समवेतता-श्रद्धा तथा वेदनाकारी निष्कुरता दोनों में समर्प है। वह जिस रूप में है एक स्वाधिस्त प्राणी है। बुराई मानव हृदय की कठोरता तथा स्वीरि प्रकृता से हो पैग होती है। 'महामारत में कहा गया है "मैं जानता हू कि पम क्या है पर उक्तको धोर मरा मम मही जाता मैं जानता हू कि पममें क्या है पर मैं उससे दूर रहना मही चाहता।" बही मान बीय धनुभव सत पाल ने भी व्यक्त किया है जो उचित बाध मुझे करना चाहिए मैं नहीं करता किन्तु बुराई जो मुझे मही करनी चाहिए करना जाता हूँ।" यह धनुभवजित तप्य है कि आत्म-अकृति विभाजित है। उसकी प्रकृति पुनः बिभूत गही है। यदि ऐसा होता तो उन्नति की कोई धाया या मुनाइय ही न रह जाती। भगवद्गीता का धारम एक पम-संकट से जाता है जहा धनुन धाने धन्दर प्रधन ईश्वरीय बाणी से प्रीय करता है—उसी बाणी से रप में उपस्थित ईश्वर में धर्पां उमी बाणी से जो गार्ने धोक एदन की क्या म मुनाई पड़ी थी। जब प्रमोमन से पाप तथा पाप में मग्ना का उद्भव हुआ तो प्राण को यह बाणी मुनाई पड़ी 'तुने यह क्या कर टाया ?

समृण अज्ञत प्रमोमत एवं बुराई के साथ एक निरन्तर युद्ध है। हम जितना ही मोन को जीना है उतना ही हमें उपरधि का सपरता का धान्य मिलना है। मोन का हम धनुगामतपूर्व प्रयत्न द्वारा ही पराजित कर सकते हैं। देह एवं देही के पाप की गीबतान ही सु देहयोष्ट (मूनन परमणि) का प्रपान धंन है। मंन पार निगते है 'धाय्या में सीत होकर बमो ना तुम मॉम की बामनाओं का पूग म कर पायाग। मॉम का बागना प्रमरारमा के बिन्द है 'मो प्रवार धमरारमा धाम की बालनाओं के बिन्द है। 'मम का धप केवल भीतिक देह-मान नहीं है क्यकि वह ता धरती में मनुष्य क जीने रूने की धनिपाय पा है। ८७ एक निरिचन धमिप्राप का गुनि क लिए है। जब म्नाई

धर्म-सिद्धान्त और लेकर कहता है ' (ईश्वरीय) एब्द मांस बन गया तब स्पष्ट है कि मांस (देह) तत्पश्चात् बुरी चीज नहीं है। मांस (देह) एवं धारमा (देही) मानव-स्वभाव के भौतिक एवं धार्मिक पक्षों के धर्म में नहीं है। देह एक तटस्थ (निरपेक्ष) भूमि है। धारमा में प्रवेश करके हम देह की सीमाओं के परे चम खाते हैं। देह वह अच्छा मांस है जो धारमार्थी धार्मिक विकास के लिए प्रयोग में आता है। वास्तविक व्यक्ति अपनी देह का मुख्ययोग कर सकता है। मानव एक ईत है। जितना ही वह मांस के, शरीर के प्रसोमनों पर बिजय पाता है उतना ही अपने मजस के निकट आता जाता है।

इष्टार्थ अपना शरीर भोगों के त्याग पर जोर दिया जाता है। अक्षयकड़ी धारतों की बाढ़ों को ठाढ़ने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। फिर इसके लिए सतत जागरूक रहना भी आवश्यक है क्योंकि ये धारतें फिर फिर पतपने लगती हैं—सजीव ही जाती हैं।

मनुष्य का जीवन उसके स्वामित्व की वस्तुओं के बाहुस्य में नहीं है।" हम भौतिक स्तर पर सुखसुविधापूर्ण जीवन विधाने के लिए जितना ही धार्मिक उपकरणों पर निर्भर करते जाते हैं उतना ही धार्मिक सत्य के प्रति धीम प्राप्त करने से दूर हटने जाते हैं। हमसे प्रतापस्त रहने को कहा जाता है। उत्सव की भावना अपनाकर हम अपने को झुड़ कर सकते हैं। 'न कर्म से न सतति द्वारा न धर्म-नपति से बरन उत्सव एव त्याग से ही शारवत जीवन की उपलब्धि होती है।' कूटदंतसुत के अनुसार कुछ कहते हैं "पशुओं के बलिदान स बड़ा बलिदान अपना बलिदान है। जो देवों को अपनी पापपूर्ण बाधनाएँ चड़ा देता है वह देवी पर पशुओं का बध करने की निस्सयोगिता को देख लेगा। रक्त में निर्मल करने की शक्ति नहीं है किन्तु वास्तविकता के निर्मूलन द्वारा हृदय पवित्र हो सकता है। वैश्याधा की पूजा करने की अपेक्षा सडर्म के नियमों का पालन करना स्यादा धण्डा है। रोमस में संत पास कहते हैं यदि तुम मांस की पुकार पर चमोने तो मर जाओगे किन्तु यदि धारमा द्वारा अपने शरीर के कर्मों का नाश करोगे तो जीते रहोगे।" हम यदि अइस्ट के साथ ही उनकी भांति सचस्वी होने के लिए, कष्ट सहन करते हैं तो हम ईस्वर के उत्तराधिकारी तथा अइस्ट के सहयायक बन जाते हैं।" एपास्टिस (ईसा के शिष्य धर्मप्रचारक) का कथन है "इसलिए बन्धुगण ! मैं ईश्वर की पुजा के लिए तुमसे धरीम करता हूँ कि अपने शरीरों की पवित्र ईश्वर द्वारा स्वीकृत किए जान योग्य सजीव बलिदान के रूप

१ न कर्मसा न प्रयत्न बनेन त्यगेनेने समुत्तनायसु ।—गदनापकव इतिवत्, ८ : १४।

२ : १३।

३ ८ : १७।

में उपस्थित करा। यही लुम्हारी धार्मिक उपासना है।^१

धार्मिकग्रह का अधिक घबराव पाने के लिए कमी-कमी लोग इस दुनिया से निकल हो जाते हैं। बहुत पुराने जमाने में हिन्दू एवं बौद्ध धर्मों में संन्यासियों की संस्था रही है। ईसाई संन्यासी प्रायशः का धारम्भ महामुनि के धर्मपिताओं ईसा एवं उनका प्रथम शिष्यों से हुआ। मिस्टिसिजन नामक एक संन्यासी सम्प्रदाय का जन्म १०६० ई० में बगवदी म हुमा जिसका एकमात्र स्वामी में धार्मिकों की स्थापना की। ये धार्मिकवादी माना एवं कठोर जीवन बिताते थे। इनमें सबसे उल्लेखनीय बनेरपावस मन् के संस्थापक मन् बन रहे। संत बेनेडिक्ट के धारैदानुसार संन्यासी जीवन 'धार्मिक जीवन का धारम्भ है और जो संन्यासी जीवन की पूर्णता की धार लेती म बन्धन रचना हुआ ब्रह्मा है उसके लिए पवित्र पिताओं की शिलाएं पानमान है जिनके पानन से मनुष्य धर्म के अन्तिम मध्य को प्राप्त कर सकता है। म-धर्म जीवन स्वयं धार्मिक परिपूर्णता का धार महीं है। मुहम्मद तीस दिनों के उपवास का बिधान करते हैं जिसमें शरीर को बसीभूत एव धारमा को पवित्र दिया जा सकता है।

ध्यानपानना के जीवन का मध्य इस जगत में पूनत मसग हो जाता नहीं है। वह भीतर पाननों का धार्मिक उद्देश्यों के साधन-रूप म उपयोग करता है। वह देह के धारिणों को मस्वीकार नहीं करता परन्तु देह का उपयोग धारमा के सहायक म करता है। यह सभी संभव है जब धारमा स्वयं धारने को बाह्य मध्ये हटाकर निमत बना लेती है और धारनी धम-प्रवृत्ति से धारने को मुक्त कर लेती है।^२

जिसी धारित का ध्यान या पद समाज में जो कुछ भी हो प्रत्येक धारित ईश्वर की दृष्टि में धार्यन्त मूम्यवान धीर महारूपूर्ण है। ध्यानयोग द्वारा हम धारम के प्रति एव गहरी पवित्र भावना का बिकाम करते हैं। जब हम सबसे प्रति धार्य और गमत्य के लिए मधूम हृदय से बेचटा करेंगे धीर इस मध्य का प्राप्त करने का धारिणगत उतरदायित्व धारण करेंगे सभी हम गमात्र-म्यवस्था का बिकाम कर सकते हैं। ईश्वर के धारने को धारणनेवाक पैगम्बर की बात मुनि धार्य धार्य का निमत धीर मापुना को मानदण बनाईगा।^३ उनके मदेश का उत्तराध यह

है "बुराई को छोड़ो भलाई करना सीखो। स्याम का अभ्यास करो। उल्कीक पर निग्रह रखो। पितृहीन को अधिकार बितामो। बिबवा के लिए बोलो—उसकी वकालत करो।

बुद्ध हमसे सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति प्रेम विकसित करने को कहते हैं। उनका कथन है "हमारा मन विकसित नहीं होगा कोई दुर्बलन हमसे नहीं निकसेगा हम स्विनर कीमस ब्याजु, प्रेममहाबय और नुप्त ईर्ष्या से रहित होंगे। हम अपने प्रेमस विचारों की किरणों से सदा एक न एक को प्रकाशित करते रहेंगे। घाये बड़ कर हम बुराही महान एवं असीम कटुता तथा दुर्भावनारहित प्रेम से घारे अपत् को आत्मावित कर देंगे।" १ "जैसे एक माँ अपने जीवन को अठरे में डालकर भी अपने बच्चे—एकमात्र बच्चे—की रसा करती है वैसे ही हमसे प्रत्येक मानव को अपने अन्तर सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति सद्भावना विकसित करने दो।" २ जितने भी बुद्ध हुए हैं उनमें अमिताभ (जापान में अमीदा) एक अत्यन्त लोकप्रिय बुद्ध हैं। वे कभी भिक्षु व जिन्होंने युगों पूर्व साची प्राणियों के प्रति अपने प्रेम के कारण धिक्कारीस घट लिए थे। उन्होंने संकल्प किया था कि दूसरों की रक्षा में अपनी सम्पूर्ण बुद्धि और योग्यता अनाएने। अमिताभ विवेक एवं बला के मूर्तक्य हैं। जो कोई भी भक्तिपूर्वक उनका ध्यान करता है वह इस उद्धारकर्ता के अमित पुण्यकोप से कुछ न कुछ अघ पाकर स्वर्ग में प्रवेश पाने का अधिकारी हो जाता है। परिवर्त वा पुसों के लाभ के लिए अपने पुसों का उपयोग करने का सिद्धान्त सम्पूर्ण जीवों की अन्तर्निर्भरता की घोर संकेत करता है।

इसा कहते हैं "तुमने ऐसा कहा जाते सुना होना कि 'तुम अपने पड़ोसी को प्यार करोये और अपने अन्तु से पूजा करोये' परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ अपने अन्तुओं को प्यार करो। 'यदि कोई आरामी कहता तो है कि मैं ईश्वर को प्यार करता हूँ किन्तु अपने भाई को भूषा करता है तो वह भूय है क्योंकि जो अपने भाई को जितनी उसने देखा है प्रेम नहीं कर सकता तब वह ईश्वर को जिसे उसने देखा ही नहीं है वैसे प्यार कर सकता है? और यह अमविष्ट प्रभु की ओर से है कि जो ईश्वर से प्रेम करता है वह अपने भाई को भी प्रेम करे।" ३

ईश्वर के नगर के प्रतिभापी रूप में मानवों का भी नगर है। यह मानव-नगर सर्व-अस्वाग की एक ही मौलिक बुद्धि और आत्मिक पुसों के लाभ संपर्क के आधार पर उचित आर्बदेधिक मानव-समाज ही हो सकता है।

१ 'ईसाया' १ : १७।

२ अकिम्बलिकल।

३ मेलनल।

४ 'मैन्स' ५ : ४१।

५, १ 'बोव' ४ : २०-२१।

हटा लेते हैं उसे चित्त में बहुरा कृबने देते हैं और जीवन तथा काम के बोझ से घांशिकामी मुक्ति की मायना तक से जाने हैं और उसका स्वाद लेते हैं। केवल प्रबल प्रयत्न से ही घाम्य की यह स्थिति प्राप्त होती है।

योग का उद्देश्य धारमा की सुलब्धता को फिर से प्राप्त करना है। धारमा की शक्तिशक्ति का अनुभव होने पर यह एक प्रकार का अन्तराकसन पुनःस्मृतिनाम तथा धारमा का धारमा से अनिच्छ संयोग है। योग शब्द ऐसी विविधो एवं मम नियमों को बताता है जो सभी बर्णों में विविध मायाधो में प्राप्त हैं। योग 'चित्त शक्ति-निरोध' धरणा सम्पूर्ण मानसिक क्रियाओं का साक्ष हो जाता है। क्रियाओं की यह घान्ति हमें स्वयं उस चित्त तक ले जाती है जो अपनी मूल स्थिति में सम्पूर्ण कर्मों और क्रियाओं का उद्गम और शान्त है। मनुष्य में इस साधारण मन से बहुत अधिक महान एक और मन है। 'मनु के ऊर्ध्वतल के साक्ष ह्य विचारों को घन्वित कर देते हैं परन्तु नीचे बहुत गहराई में यह प्रवेश है जहाँ हम ध्यानस्थ होते हैं। हम कल्पना करते हैं कि प्रेरणा नहीं धारमा के ऊपर से धारती है पर नहीं वह धारमा के अन्तर ही से धारती है। गहराईयों में उतरने के लिए हमें मीन ध्यान का उपयोग करना ही चाहिए। इस उपक्रम में हम एकमे होकर भी प्रकल्पे गयी है। उस एकाल में हम ऐसी शक्ति का ध्यान करते हैं जो अस्तित्व के नियमों के होते हुए भी हममें धारमविद्यवाच उत्पन्न करती है।' बहुत देर तक ध्यान का अभ्यास करना कठिन है। संत योगी महान 'एपोकैलिप्ट' में प्राण पर्वों की ओर ध्यान

२ 'येहो (०४) में क्यो लिखते हैं 'अथ ज्ञान देह को अनुभव के बोधरतन (बस्त्रेस्त्र) के तापन-कर्म में प्रकृत करती है अर्थात् ज्ञान का काम या किसी दूसरी शक्ति का प्रयोग करते हुए वह देह द्वारा कर्तव्यकर परिवर्तनों के प्रवेश में प्रवृत्त हो जाती है तो वहाँ अक्षयनी रहती है, अमित हो जाती है किन्तु जब स्वयं में अमिते हुए वह चित्तन करती है उस एक क्षण में प्रवृत्त हो जाती है—परिष्कार एवं अक्षय्य अमरत्व एवं अक्षय्यनीकता के—जिनका अन्तः काय सुख-साधर्म्य है—देह में प्रवृत्त हो जाती है। ज्ञान स्वयं में मिश्र होती है और कोई भाषा अन्तः काये नहीं होती तो वह अभी उपयुक्त गुणों के साथ रहती है। उस समय वह अपनी प्रणामक प्रवृत्तियों से मत्त हो जाती है तथा अपरिवर्तनीय के सम्पर्क में होने के कारण स्वयं की अपरिवर्तनीयता हो जाती है। ज्ञान ही वही हिन्दु धर्म का मन्त्रिका कही जाती है।

३ संत योगी कहते हैं "आत्मिक ज्ञान एक मात्र नहीं है ज्ञान एक मात्र अन्तः का घन नहीं हो जाता—हमारा मन अन्तः ही अन्त की धारा में एक एक नहीं चलता जब एक वह घनले सार्वत्रिक अमनाश्रय की सम्पूर्ण अक्षय्यताओं से दूर हटाकर विभिन्न, अक्षय्यपूर्ण मुला नहीं दिख जाता। ('मैरिन्स इन कोल १ २४)। पुनः—'जब सब शान्त हो गया है और ज्ञान इस अक्षय की हककता से दूर निजाम की स्थिति में प्रवृत्त हो जाते हैं और मन की उस गहरी पीरकला में ईश्वरीय शिवायों पर ध्यान देते हैं तभी ईश्वर की वादी अन्तर्गत नहीं है। —(वही, अक्षय्य २१ : २०)।

दिखाने हैं स्वर्ग में लगभग घाघ घंटा नीरपता रही। इसके बाद वे ध्यात्वा करत हैं स्वर्ग साधुमां की धारणा है। इसलिए जब मन में ध्यान की सांखि छा जाती है ता स्वर्ग भी नीरब हो जाता है। भिन्नु चूकि मन की यह धारणा इस जीवन में पूर्ण नहीं हो सक्ती इसलिए यह नहीं कहा गया कि पूरे चले तक स्वर्ग में नीरबता रही। घाघ हो बंटे तक रहने की बात कही गई क्योंकि ज्योही यह धरने को उठाना आरम्भ करता है और ध्यात्वरिक धारणा की ज्योति में प्राप्तायिन हुआ बाहना है बिचारों की हसचम पुन सौट घाठी है और स्वर्ग धरने ही द्वारा वह धरणाति में प्रब्यबस्थितता में केंक दिया जाता है और प्रब्यवस्थित होने के कारण यह धंधा हो जाता है।^१

ब्रह्म का एकान्त ध्यान विद्यतित करने में योगगुरु हमें सहायता देता है। यह हमसे कहता है कि ध्यान्त और निद्रुगु होमा फिर प्रतीक्षा करो और धरन्त म ज्योति जसने दो। यह मानता है कि जैसे यह जीवात्मा का बाहन है वैसे ही जीवात्मा परत्मा का बाहन है।

घाक के परे जा धरन्तर्ग्योति है उसपर या वामनाधों से मुक्त रिमी प्रबुद्ध धात्मा के हृदय पर प्रवना तुमको घुम मगनेवाने रिमी देवी रूप या प्रतीक पर मन को कन्त्रित करने से ध्यानस्थ हुआ जा सकता है।^२ ध्यानावस्था कोई मूर्छा या बाह्यापरति नहीं है। यह धनिष्ठ मनोयोग का कार्य है। प्साटिनय हमसे धरन्तर्ग्योति होने और उम सब धीरों का त्याग करने को कहता है जो ईश्वर बाह्य हैं। फिर यह कहता है कि धारणा के एकान्त में "उस एकमात्र अधिबाम सत्ता को देखो उस ध्यतिरिक्त उस धमिम उस विबुद्ध को देखो—उसे जिस पर सब बस्तुएं निर्भर हैं, जिसके लिए सब देखते हैं, धीबिठ रहते हैं, काम करते हैं और जानते हैं—धीबन, प्रज्ञा एवं जीवात्मा के स्रोत को देखो।"^३

हम कोई परिचित पद या मत्र से मिते हैं और उसपर ध्यान करत समय धारणा नीरब प्रतीक्षा करती है और धरने को एक एमे मन्त्रिक के रूप में यदत देती है जिसमें ईश्वर निधाय करता है। यह ईश्वर धरने की समस्त जीवन के आधार रूप में हमारे धरन्त प्रकट करता है और धरनी सापी दुर्बलताधों के गाय मनुष्य धरने को उसके परसों में समपित कर देता है। जब हम सधस्त पाबिभ्य के निधान ईश्वर के समुग होते हैं तब उमकी पूजा में सो जाने हैं क्योंकि हम जानत हैं कि यह समस्त स्तुतियां के परे हैं।

जागतिक धंधम का बोध होने पर ध्यान उससे हमारी मुक्ति है। समस्त धंध

१. कोक पुस्तक १२५१ इउ 'देवर्तने सिद्धिगात्र' (११२२), इउ १४-१२।

२. कोक १ : २९-३१।

३. ईश्वरस १ : ६, ७।

धारा के ऊपर जो भासा है यह उच्चता साधन है प्रमाण है। बाह्य स्थितियाँ चाहे कितनी ही बण्टमर हों मुक्ति धारता के भीतर ही मिलती है। सुमाधि की प्रवृत्ता में हम अपनी समस्त चेतना से मिरपाधि या निर्विकल्प ब्रह्म के साथ टकराते हैं। यदि हम आनन्दपूर्ण प्रजासक्ति के साथ परम सत्य का अनुसरण करते हैं तो प्रप्रत्यादित कृप्य धारिक सक्ति एवं स्वातन्त्र्य के नवीन अनुभव हममें उदय होते हैं। इनसे हमारे समस्त कर्म उद्योतित एवं प्रेरणायुक्त ही उठते हैं। तर्क हम आत्मासन वेता है किन्तु अनुभव से हमारे अन्दर निर्विचलता घाटी है। जब योग के यम-नियम के परिणामस्वरूप देह मन अनुभूतियों एवं लहज प्रेरणामों में सामन्वय स्थापित हो जाता है, जब व्यक्ति में पूर्णता और सतुल्यता पा जाता है तब वह ऐसा बाह्य बन जाता है जिसके द्वारा हमारे अन्दर स्थित विचारमा अपने को अबाधित रूप में व्यक्त करता है।

सोताइटी प्राफि वेण्ड्स' (मिच-अध्वली) ने पश्चिम में जो काम किया है उसका हमें अग्रगण्य करना चाहिए कि पश्चिम के निरजाधरों के धर्मम्यास में श्री मौन उपासना ने प्रवेश पा लिया है। न्युयार्क में समुक्त राष्ट्रसच का जो भवन है उसमें एक कमरा ध्यान के लिए अलग कर दिया गया है यद्यपि मैं निश्चित रूप से यह नहीं जानता कि उसका उपयोग कितना होता है। पैन्कन की उक्ति कि 'अनुप्य का सम्पूर्ण संताप उसके अनुपाय एक कमरे में बैठ सकने की उसकी सम्मर्था के द्वारा है' बहुत प्रसिद्ध है। सभी धर्म हमसे मौन ध्यान में ईस्वर वाली मुनने की बात कहते हैं।

ध्यान की पीढ़ी के लिए, जो अनेक चिन्ताओं से विकण्ठित और अनेक प्रकार के सुमुक्त से विगुण्डन है मौनवृत्ति का विकास करना एक बड़ी चुड़िकाठी बात होगी। इसमें एक ऐसी मनोवृत्ति के पालन का पर्याप्त हो जाना जिसमें सम्पत्ति के अधिकार की बृह मात्रता नैतिक अनुशासनहीनता सुखोपभोग के प्रलोभन और भोगात्मक निराशा का प्राधान्य है।

५ सत्य एवं प्रेम

बीज एक आत्मबोध को एक-दूसरे से पुनः नहीं किया जा सकता। ध्यान बोध में निम्न बीजों अपने को प्रेम में व्यक्त करता है क्योंकि तभी हम उस सत्ता के अन्दर एक-दूसरे की जानते हैं और प्रेम करते हैं जो शाश्वत है। हम उदसम्भ सत्य की व्याख्या एवं अकिम्पक्ति को कुछ हन हैं उसके ही अन्तर्गत करते हैं हम वर्तमान अवस्था में ही खोजते हैं और कर्म करते हैं। यद्यपि यह पाश्चि बीजों ही सब कुछ नहीं है और इसमें कोई बीज सदा रहती नहीं फिर भी हम ऐसे सम्बन्धी का मुख नूट सकते हैं और उन्हें बढ़ा भी सकते हैं जिनपर मृत्यु का हासन

नहीं है।^१ हमारे घन्टर् में जा गयाति है वह साबंदिग है वह हर प्रादमी में है। ईश्वर का प्रतिबिम्ब घुपला और दुर्बल हो सकता है परन्तु वह सबका मूल नहीं किया जा सकता क्योंकि वह मनुष्य के निर्माण में ही निहित है। धोर से धोर पापी नीच से नीच अपराधी के लिए भी प्राणा है। नरक जैसी कोई चीज नहीं। हम यह विदवास नहीं कर सकते कि ईश्वर ने अगमित मानवों को मदा के लिए मृत्यु के बीच द्वास दिया है। घन्टर्घोति सबका घवित मध्यता एव घान्तर् के लिए घावाहन कर रही है।

इस विचार से इस विदवास का सघटन हो जाता है कि ईश्वर ने कुछ विशेष प्रियजन है। जो लोग भी अत्युत्पूर्वक उग गयाति की घाता मानते हैं, बध जाने हैं व दूबत नहीं। अब हम प्रत्येक मानव में सत्य की साबंदिगक भावना का देखते तो सृष्टि के छोटे से छोटे प्राणी को भी घान्तर्घोति मानकर प्रेम करेगे। सभी घमों द्वारा इस स्वर्ण-नियम की गिटा दी गई है।

हिन्दू महाराष्य 'महामारत' कहता है 'घान्तर्घोति लोक में मृत्यु घोर घ्यवा सं मनुष्य को दूसरा के प्रति वैसा ही घाचरघ करला चाहिये उस वह स्वयं बगी घबस्था में दूसरा द्वारा घघने प्रति बिबा जाना पता द करता। ' वृषा दूसरा के मात के लिए पद देते हैं नदिया दूसरा व मात के लिए बहनी है। गाण दूसरा के मात के लिए दूध दनी है घोर सत्पूरय दूसरों के बस्थाप के लिए जीत है।'^१

अनघसूतियम में पूछा गया क्या कोई एमा मूख है जिगको घावमा जीवन घरण्ट नियम मानकर पालन करता रहे? अमघसूतियम में उत्तर दिया क्या यह 'घा घाघ सं नहीं गिगना जिगका घघ है कि दूसरों के प्रति वही ब्यबहार करना चाहिये जैसा घान्तर्घोति स्वयं घघने प्रति करताता गाहता है।' अमघसूतियम के गिघ्य एंग-जे ने मूख के उत्तर का घनबां या गिवा है 'उमी ह्यम म हमरे का प्यार करो जिगमू कने को प्यार करत हा।

सिद्धिजस की घुलत के उनीमघें घघ्याय म घादेग गिगता है घघने पघोमी को उनी ठरट प्यार करा जैसा स्वयं घघन का करत हा। बटा जाता है कि यह घमनिघ बादबित क मधुष १११ घमनिघ के अघर जाता है। पगम्बर हागी ने प्रेम दया घोर दामा का बात कही। उताम घघमी घपराधी पानी को हमनिघ दामा कर गिदा कि वे उम प्यार करत प। नीमे उहनेमि यह गिगर्ष निघाना कि ईश्वर भी मानव जाति को दामा कर देगा क्यकि वह उमे प्यार

१ 'अन्तिम' के मधुष घदनी को १ का दम प्रकर घनघने को कि वे तु हा एबाघो को देगलके। — ११२ ११।

२ १११ १११ १।

३ बरोरकात बर्षा : वृषाः कनेरकात बर्षा अघ ।

४ अघरकात घुलत म १ बरोरकात म १११ दि अघरकात।

करता है। मूसा के कानन में भोषणा है कि यजमनी और स्वयेची के लिए एक ही कानून रहेगा क्योंकि 'याद रखा तुम भी तो मिस्र देश में यजमनी ही थे। 'मोल्ड टेस्टामेण्ट' में हम पढ़ते हैं 'क्या हमारे एक ही पिता नहीं है? क्या एक ही ईश्वर ने हम सबको उत्पन्न नहीं किया है? हिस्लेन के अनुसार 'जा तुम्हारे लिए बुजायमफ हो उसे अपने सभी प्राणियों के प्रति न करो।'

पहिंसा घमसा दूसरे शब्दों में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम जैनधर्म का केन्द्रीय तत्त्व है। बुद्ध भी 'बोधि प्राप्त करने के बाद जीवन भर मित्रों को निर्वाण के धानन्दमय अनुभव की शिक्षा का रास्ता बताते रहे। मातृचेता बुद्ध के विषय में कहते हैं 'बुराई करने के लिए सम्मत्त शत्रु के लिए तुम प्रसाई करने पर सम्मत्त मित्र हो निरन्तर बोधान्বেपन करनेवाले के धारण भी तुम गुणों की खोज करने में उत्तर हो।' शान्तिदेव बोधिसत्त्व धारण का वर्णन करते हुए कहते हैं

मैंने अपने कमों में जो भी पुण्य प्राप्त किए हैं उनके पुरस्कारस्वरूप मैं सब प्राणियों के समस्त शोक में उनका सम्बन्धनाशता बनना पसन्द करूँगा।

रोमियों के लिए मैं शौच्य उनके रोग को दूर करनेवाला एक ऐसा सेवक बनूँ कि पुनः बीमारी उनके पाम न पड़े।

मैं बुभुक्षा एक पिपासा की बेहता को भोजन एवं जल-वर्षा से तृप्त करूँ। काल के घट तक मैं अकाल में उनके लिए पैय एवं साय बन जाऊँ।

बीमों के लिए मैं अक्षय अण्डार बन जाऊँ और उनकी प्रायश्चिता की विविध वस्तुओं से उनकी सेवा करता रहूँ।

मेरा समस्त अस्तित्व मेरे सुख भोग मेरे द्वारा नूत वर्तमान भविष्यत् में किए हुए या किए जानेवाले सम्पूर्ण पुण्य का मैं सेवा के लिए उत्सर्ग करता हूँ जिससे सब प्राणी अपने समय तक पहुँच सकें।

सब वस्तुओं के उत्सर्ग में ही शान्ति है और मेरी आत्मा शान्ति के लिए तड़पती है। जब मुझे सब कुछ छोड़ना ही है तो सबसे अन्ध्या यही होना कि मैं उसे अपने सभी प्राणियों को दे दूँ।

मैं सब प्राणियों को स्वतंत्रता देता हूँ कि वे मेरे साथ जैता जाहूँ व्यवहार करें। वे आघात कर सकते हैं मेरा तिरस्कार कर सकते हैं मुझ पर कीचड़ उछाल सकते हैं, मेरी देह से बिलखाड़ कर सकते हैं मेरा उपहास कर सकते हैं। मैंने उन्हें अपना शरीर सौम दिया है। तब मैं उसकी

१ अन्व ३१ प ।

२ अश्वमेधवित्तियेऽपि प्रबन्धेऽप्युत्तरः ।

दोषध्वंसवित्तियेऽपि प्रबन्धेऽप्युत्तरः ॥

बिन्ता क्यों कर्क ?

बसुब भाग जो मरा धरमान करता है, मुझे चाह पहुँचाते हैं, मेरा उपहास करते हैं मरे 'बापि' में धागना भाग प्राप्त करे ।

जो धरलित है मैं उनकी रक्षा करूँगा जो पबिक है मैं उनका पप नपन करूँगा जो उम पार जाना पाहते हैं उनकें लिए मैं पुस बनूँगा जिहे दीपन की धायक्यकता है उनका दीपन बनूँगा जो शय्या चाहते हैं उनकें लिए शय्या बनूँगा जो मकक चाहत है उम मकक लिए सेकक बनूँगा ।^१

मैन्सू के धर्मोपदेश में कहा गया है तुम दूसरा से चाह जैसा धपन लिए कराना चाहत हो वैसा तुम उनकें प्रति करत । इतना ही धर्मोपन नहीं है कि जो तुम्हें प्यार करें उन्हें प्यार करो इससे उपादा महत्त्वपूर्ण यह है कि धपने धनुषों से प्यार करो 'जा तुम्हें धूना करत है उनकें साथ भलाई करा और जा तुमसे इप करत है और तुम्हें कष्ट पहुँचाते हैं उनकें लिए प्राधना करा ।^२

गानी सिपन है 'धमू की उदारता और कृपा ता देखो । दास न पाप किया है किन्तु उगकी मग्ना का मार के डा रहूँ हैं ।^३

करीम यदि तुम्हें कोई मारता है

तो बदल में उग न मार करतु उमरे धरण धुम ।

करीम यदि तू मकेंदर को धागता है

ता पबिको क परो क नीम धूरी बनकर विछ जा ।

फरीद यदि कोई तुम्हें टनड़ म्मट कर देता है

और दूसरा धपने पाका में कृपण धागता है

तभी तू धमू के दरवार में धवेग पा गक्या । ✓

६ पबिधता एव इहसौदिक जीवन

एक गहरी अन्तर्दृष्टि बंधनामों के भीतर प्रवेश करने की शक्ति तथा ईश्वर एवं मनुष्य के प्रति अतस्यर्था प्रेम होता है।

कर्मों से सत की मुक्ति इस पृथ्वी पर नहीं होती। वह अपने पीछे सीमित मूर्खों और घबों का स्पृश जपत् नहीं छोड़ता। उसका जीवन परमात्मा के जीवन से विभिन नहीं होता। पर वह जपत् का न केवल एक दाग हो जाता है। बल्कि सम्पूर्ण के लिए एक शोक भी बन जाता है। बूकि उसके पास धीर भी है इसलिए वह सद्बिबेक से संबंधा मुक्त नहीं होता। परमात्मा अव्यक्त आत्माओं की ललित के द्वारा ही काय करता है। वह उन्हें निमग्न नहीं कर लेता। जो विमुक्त हो गए हैं उनका भी नैतिक कर्तव्य करना उनकी प्राध्यात्मिकता की प्रारम्भिकता की निशानी है। सत सदा अपने अस्वस्थ बन्धुओं के पास जलपात्र लाने को उमड़ी सेवा करने को उस्तुष रहता है। जब हम बिबेक के साथ एकका हां जाते हैं धीर जब बाहर्ण के शब्दों से सागर हमारी धिराओं में प्रवाहित हो उठता है। धीर साधारण हमारे धाधुपण बन जाते हैं। तब प्रत्येक अवसर मनुष्य की मूर्ख करने धीर अपनी उदारता को प्राकृतिक करने का साधन बन जाता है। जब हम सभी बस्तुओं को पवित्र मानते हैं तब भाव या स्वायत्त एवं पवित्र या मुक्तों के पीछे भी इन की प्राकृतिकता ही नहीं रह जाती।

जब कोई प्रात्मबन्धु से सब ब तुषा वा त्याग कर बैठता है तब सभी बस्तुएं एक नम आशाम में उमड़ी हो जाती हैं। उसे जगत् की बस्तुओं का बजन करने की प्राकृतिकता नहीं पड़ती। उनको वह एक प्राकृतिक आत्मिक के साथ रखता है। धीर इसके कारण एक नूतन धान्य में पुन हो जाता है। इस प्रकार जिनका द्वितीय जन्म हो चुका है वे महात्मागण स्वयं शान्ति एवं पूर्ण आत्मनियंत्रण में रहते हुए संसार के उदार एवं पुनर्जन्म के ईश्वरीय कार्य में भी भाग लेते हैं। वे संसार का बोध अपने ऊपर सभी प्रकार से लेते हैं जैसे 'मधुमक्षिका मधु बरानी है धीर मकड़िया जाते कुली है।' उनकी अपने परिवार, संवसार जाति वा राष्ट्र से कोई आशक्ति नहीं होती। वे सपान आत्माओं को प्यार करते हैं। उनके जीवन उनके भीतर की बुद्ध ऐसी शीत के बाह्य एवं दूर धिक्क-भाव होते हैं जो हमारी बजमान समझ के बाहर है धीर जो पवित्र नहीं साधक है। सतार के कल्याण का कार्य उनपर आरोपित होता है। महापान बंधन के दोषितरव को बलिग यद्यपि वे कर्म-नियम के अधीन नहीं हैं। फिर भी बुद्धियों के उदार के लिए काम करते हुए जपत् में रहते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि एक-दूसरे से बंधी हुई है। नन पाल कहते हैं। प्राकृतिकता मुझपर आरोपित कर दो गई है। सूपर धीर देकर कहते हैं "मैं यहाँ गया हूँ मैं धीर कुछ नहीं कर सकता।" एक ऐसी शक्ति जो उनके परे है। उन्हें सध्या बधीन बन कर रखती है।

आत्मसीमी धीर कर्मयोगी के जीवन के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है। जो

कोमल आत्माएँ होगी है वे इत भागदौड़ और संसार की हिंसा से दूर भागती हैं। यह धारदयक नहीं कि इस प्रकार की निवृत्ति पलायन ही हो क्योंकि अपनी ध्यान-शक्ति से वे समाज की प्रभावित करती हैं। यदि अन्तरात्मा की वसो हो प्रेरणा हो तो हम संसार में निवृत्त हो सकते हैं परन्तु हम संसार के मायाजाल में फँस जाने के भय से एका करते हैं तो वह ठीक नहीं है।

प्रतिदिन घण्टी बंद करके एकमात्र में आकर ध्यान करने से आत्मिक विकास में सहायता मिलती है। सप्ताह में एक दिन विद्यालय की और प्रतिदिन कुछ देर योग ध्यान की जो व्यवस्था की गई है उसमें बड़ा विकास है। किन्तु इसके लिए मायावी हमारा धारदयक नहीं है। गृहस्थ रहते हुए भी हम ठीक दृष्टिकोण रख सकते हैं। जब ध्यान योग के एक अत्यन्त घनी शक्ति अनादिनिश्चित से कुछ से संसारविरत होना की आज्ञा माँगी तब कुछ न कहा मैं तुम्हें बहता हूँ कि जीवन में अपने स्वान पर एक घोर अध्यवसायपूर्वक अपना काम कर। जीवन पर और शक्ति से पीछे नहीं है या मनुष्य को गुलाम बना लेता है बल्कि जीवन पर तथा शक्ति के प्रति आशक्ति ही उम्ह गुलाम बनाती है। हम जानते हैं कि संसार का नहीं बल्कि अज्ञान का निपट करके तिरा घाएँ है। मनुष्य की सत्य आत्मा के साथ हम आत्मान जगत् का सम्बन्ध 'पञ्चतमिवात्मना (पानी में स्थित कमलपत्र जैसा) होगा चाहिए।' हम उस स्वप्न करते हैं पर विद्यालय नहीं। जब मनुष्य सातवा एक अज्ञान में डूबता हो जाता है तब यह ध्यान एक कल्याण में भर जाता है। आत्ममहिम्ना कल्याण हृदय का आभुग है और उम्हारा परिणाम मरकत है। योग कमलु बीजानम् योग कमल मध्यक बीजानम् है।

घापी और सैरापिकारी (कमिष्ठार—एक से सातगेवा-विभाग का अध्यय) एक-दूसरे के विरोधी शक्त नहीं है। घापी संसार में शक्ति की भाँति रहकर काम करता है। घापी उच्छ्वर निष्ठाओं की उच्छ्वासा बरतते हुए वह संसार में अपना बलव्य करता है। जब दुनियाँदार घापी शक्ति और शक्ति संसार के धर्मिता हो जाएँ तभी मध्यता का घोषित गिद्ध होगा। मन धरेगा के शक्तों में एक महामत्स्य प्रकाशित हुआ है 'आत्मिक धित्तन का अन्तिम ध्येय शक्ति है त उम्हरी शिवागीनता से कम पीडा हो।

७ ईश्वरीय मानव

ईश्वरीय मानव में हमारा अधिग्रह शीघ्र कुछ एवं ईशासनीय ज्ञान शक्तों से है। उनके शक्तों में ही ईश्वर की अधिष्ठाता शक्ति है और ज्ञान शक्ति है कि वे मानव में परमात्मा की अधिष्ठाता है। उनका मानवो रूप हम अधिष्ठाता

का प्रथमत्व-भाव है। अरबुत्त का प्रथमी नाम 'स्वितमा' या अरबुत्त तो उनकी उपाधि है। अइस्ट की तरह बुद्ध भी मानवरूप में जागतिक सत्य को प्रकट करते हैं। उनके स्वभाव के मानवीय एवं ईश्वरीय पक्षों के बीच बड़ा सम्बन्ध है यह प्रबल उल्लास है। निरपेक्ष सत्ता सापेक्ष में ही प्रतिबिम्बित होती है। यदि परस्पर प्रतिबुद्ध चक्रावली में कहा जा सके तो प्रत्येक अस्मिन्मय प्रतिम तथा भाषिक या सापेक्ष-रूप से निरपेक्ष होती है। फिर भी यह सत्य है। मनुष्य पूर्ण होने पर बौद्धी पक्ष प्राप्त करता है वह स्वतन्त्रता मुक्ति प्राप्त करता है। यह मुक्ति भ्रान्त्य है यही नित्यता है यही सत्य है यही वह निरपेक्ष स्थिति है जिसमें व्यक्तिगत और सामाजिक उपक्रमों का अंत हो जाता है।

ईश्वरीय मानव सम्झे मानव के पूर्वगामी है। जो बुद्ध एक गौतम या ईसा के लिए संभव है वह प्रत्येक मानव-प्राणी के लिए संभव है। उनके रूप में मानव स्वभाव प्रथमी पूज्यता को पाता है। वे हमारे अग्रेष्ठ बन्धु हैं। वे हमें बताते हैं कि मानवता क्या कर सकती है। गौतम या ईसा ईश्वरीय चेतना के स्वामी बन गए, इससे वे दूसरे मानवों से दूर नहीं हो गए। यदि हम यह मान लें कि ईसा निष्पाप हैं तो इसमें उनका मानवता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पाप मानव प्रकृति का सार-रत्न नहीं है। यह उसकी एक विडम्बना एक विकृत है। हम साधारण मानवों में ईश्वरीय चेतना भूमि से दूर है तथा अपूर्णरूप से विकसित होती है। ईसा में यह बड़ी प्रबल है यहाँ ईश्वर-भूति पूर्णरूप से जागृतमान है।

जो भी आदमी इस दुनिया में पैदा होता है उस सबके अन्दर ज्योति भी बई है। इस ईश्वर का धर्म या जीवन है जिसमें पूरे व्यक्ति को पुनर्जीवन देने की शक्ति होती है। अन्त-स्य आत्मा में पूर्ण निष्ठा रखकर हममें से प्रत्येक जगत् के बपन से मुक्त हो सकता है। कोई अंधता या बुद्धता ईश्वर का उपयोग करने में बाधक नहीं है।

जो सत ईश्वरत्व का प्राण कर लेता है वह इस तरह भावने करता है मानो वह ईश्वर का धर्म हो। जो लोग ईश्वर के साथ पूर्णरूप प्राप्त कर लेते हैं वे उसके अनुग्रह से उसके साथ इतने ही एकत्र हो जाते हैं जितने ईसा स्वभावतः उसके साथ एक थे। सोहा भाव के रूप में बरस जाता है।

पर कोई व्यक्ति चाहे कितना ही महान हो ईश्वर की परिपूर्ण अस्मिन्मय नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की अस्मिन्मय है और परमात्मसत्ता के एक विशेष गुण का प्रकट करता है। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य अनुग्रह है और ईश्वर के अन्दर एक विशेष भावस्यकता की पूर्ति करता है। अस्तित्व एक असीम अपरिमित यथार्थता है जो जीवन के अनेकविध

१ स्वीकारात कहते हैं 'कह कहना कि ईसा में एक प्रबल ईश्वरीय चेतना भी निष्कृत कर देने के ही समान है कि उनमें ईश्वर का अस्तित्व था।

मृत्यों में घपने को प्रकट करती रहती है। प्रत्येक व्यक्ति घपना ही प्रामाणिक
 ज्ञान है। आत्मा है। वह घपन पड़ोसी की गफल नहीं है। वह एक बग का
 उदाहरण-मात्र नहीं है। प्रत्येक को घपना मार्ग तय करना है। व्यक्ति जितने ऊँचे
 होते हैं उनके द्वारा प्रकट होनेवाले तत्त्व भी उतने ही विधायकपूर्ण होते हैं। हम यह
 नहीं कह सकते कि ईश्वर में जो है वह सब का सब इस या उस व्यक्ति में प्रकाशित
 हुआ है—फिर चाहे वह व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो।

सब मानव-प्राणी ईश्वर से ही उद्भूत होते हैं और फिर उसीम लौट आते हैं।^१
 हम सभी ईश्वर-पुत्र हैं। ईसा कहते हैं—जो भी मेरे स्वयम्भ पिता की इच्छा का
 पालन करता है वही मेरा जगत् बहिन और माता है। ईसा के जीवन एवं
 शिक्षण का मुख्य तत्त्व यही है कि हममें से प्रत्येक ईश्वर का पुत्र बन सकता है।
 वे हमें स्पष्ट निर्देश देने हैं—तुम्हारे स्वर्गीय पिता पूर्ण हैं इसलिए तुम्हें भी पूर्ण
 होना चाहिए। 'बहुतेरे इश्वर-विष्णु का जन्म है। जिन सबने उसको प्रथम क्रिया
 विग्रहनी उसके नाम में विश्वास रखा उस सबका उसमें तब ईश्वर-पुत्र बनने की
 पालिका प्रदान की जाती है। रक्त से नहीं माँ की दूध की इच्छा से नहीं बल्कि
 ईश्वर की इच्छा से ही उत्पन्न हुए हैं। देना पिता न हमें शिखा प्रथम दिया
 कि हम ईश्वर के पुत्र कह जायँ'—य जोन के उत्समिन्त उद्गार हैं। जब तक
 जामिन्त उपजम पमता रहता है वे प्राग्भाए ईश्वर के मानिन्धय में रहकर मुक्ति
 के लिए प्रयत्नशील रहनी दे।

ईसाईयम एवं इस्लाम धर्मों का धारम्भ एक प्राग्मिन्त दृष्टिकोण में होता है
 विष्णु ईसाईयम घपने प्रकटण पर ध्येय जा रहता है। ईश्वर धरतार मता है
 और जगत् का उदार करता है। जब संतुमन विह्वल हो जाता है तब उसे पुनः
 स्थापित करने के लिए ईश्वरीय तत्त्व धरतारित होकर घपने को प्रकट करता है।
 पूरा एवं पश्चिम दोनों में ईश्वरीय मानकों को ईश्वर-धरतार मानम की प्रकृति पाई
 जाता है। राम पुत्र एवं ईसा सबको परमात्मा के धरतारकन म माना जाता है।^२
 उदाहरण के लिए राम की कथा में। जब वास्मीकि उनक मुन स ही कहलाय है

१ मनुष्य ईश्वर-पुत्र के लिए के मने कह्य जाता है : "वे पिता के बरों में जाया। मे
 मन्तर में जाया है। मा में पुनः राम मन्तर को दाइकर पिता के बरों का रहा है।

२ मैत्र ३२ : १०।

३ मैत्र १ : १८।

४ जन १ : १२-१३।

५ १ जन ३ : १।

६ ईसा के मृत्यु के वरु "तुम उदाहरण की मन्तरा में जाकर वा कहता कि तम्हारे
 पिता के धरतार मन्तर ईश्वर और जाइ के ईश्वर ने इमें तुम्हारे पम भेजा है। —
 मन्तरा २ : १२।

कि वे एक मानव ब्रह्मरथ के पुत्र, हैं^१—एक मानव जिसने कष्ट एवं बेचना सहन करके ईश्वरीय मर्यादा प्राप्त की। किन्तु परम्परा से उन्हें बिष्णु का भवतार माना जाता है। रावण का नाता मास्यबात उससे कहता है कि मेरी समझ से राम बिष्णु है।^२ उठी काष्ठ के बहुतरंगे अध्याय में रावण स्वयं राम को परमेश्वर-रूप में देखता है।^३ राम परमात्मसत्ता के प्रतीक बन जाते हैं जिनको पाकर ऋषिगण धामोचित हैं। यदि भवतार अस्य मानवों की तरह ही न रहे, उन्हीं की तरह कष्ट-दुःख से सिद्धा न ग्रहण करे तो उसका मानव-व्यक्ति के लिए कोई उपयोग ही न रहे पाए। यदि वह परमात्मा ही हो तो उसका अनुकरण करना हमारे लिए असम्भव हो जाएगा। उसे तो हमारे ही बँसा एक मानव होना चाहिए जिसने संघर्ष किया हा असफल हुआ हो और फिर संघर्ष किया हो।

हिन्दू-परम्परा मानती है कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधम बढ़ता है तब-तब एक महान शिक्षक के रूप में ईश्वरीय दया अपने को व्यक्त करती है।^४ बरपुत्रीय मायाएं बताती हैं कि बरपुत्र पृथ्वी माता द्वारा बहुरमन्त्रा से विनय करने पर उत्पन्न हुए थे। एधिभोगाद^५ और नेडरीना^६ सोम ईसा को सबसे बड़ा पैयम्बर मानकर यज्ञ करते थे किन्तु वे उनके पूर्वजीवन और ईश्वरीय परिपूर्णता को नहीं मानते थे। उनके लिए ईसा उसी मस्त के थे जिसके थे वे। बचपन से मौन तक और उसके बाद प्रीड़ पीस्य तक उनकी उन्नति उनकी महता एवं ज्ञान निरन्तर विकास से पूर्ण है। वेह एव मन के बेचनापूर्ण संताप के बाद अन्त पर उनकी मृत्यु हुई। प्राचीन काल में दूसरे धर्मों के पैगम्बरों ने बीमारों को घण्टा किया मुर्दों को जिंदाया समुद्र को जिंदावित किया मूर्ख को रोक बिना तथा अग्निरथ में बैठकर स्वर्ग में प्रवेष्ट किया। ऐसे सोमों को यहुदी ईश्वर-पुत्र कहते थे। ईसा भी इनकी तरह ही ईश्वर-पुत्र हैं।

(ईसाई) धर्म के बीच यूनान और रोम की बरती पर भी फँसे। वहाँ के

१ अध्यायनं मातुपं कन्वे एम बरुवत्तमम् ।

२ बिष्णु सम्पत्तये एमं मातुपं देहयत्किञ्च ।—बुद्धकांड, १५ ।

३ तं कन्वे एतत्वं वीरं वाज्जम्बज्जयम् ।

४ रत्तये वोमिलोऽमिलम् ।

५ कदा कदा दि कर्मन्व यानिर्भवति यात ।

अनुत्तानमकर्मन्व एतद्वयानं सुमान्बरम् ॥—मत्तर्वाख ४ • ।

मत्तर्वा १ १ १७-१८ भी देखिये ।

* एधिभोगादः : द्वितीय लरी का नृपवीम ईस्टनों का एक सम्प्रदाय, जो अस्तिक रूप से यहुदी कर्मों को भी मानता था। वह संत रात्र को अध्याय करता था और मैन् के गैंगेन को मानता था ।—अनुत्तरक ।

† नेडरीयः : नडरथ का निजर्नी। ईसा का अनुकरी। वेत्तमक (ट्रिबुटेरियम) ईसाओं का एक सम्प्रदाय जिसकी स्थापना ईसाई में हुई थी ।—अनुत्तरक ।

निवासी करिदों, देवताओं अनन्तकाल तथा ज्योतिष सिद्धान्त से निस्सृत बस्तुओं के सम्पन्न और उनके प्रति निरवासी थे। इसलिये उन्हें यह प्रतिश्रुति भीय नहीं पान बड़ा कि 'मोगोस' वा ईश्वरवाणी जो ईश्वर-तत्त्व ही थी इस पृथ्वी पर धरतीमें होकर मानव-जाति को पापों एवं श्रुतिमें से मुक्ति प्रदान करे। रहस्यवादी ईसाई स्वीकार करते थे कि ईश्वर से उद्भूत प्रकाशवान कलाएँ एक प्राणी वा धाकार एवं रूप ग्रहण कर सकती हैं।

किन्तु धार्मिक धर्म-सम्प्रदायों में से कितने ही ऐसे थे जिनको इस बात में कोई विश्वास न था कि परमात्मा धरती पर प्रथम तत्त्व का एक अंश अपवित्र मांस-पूज में मिस्र होकर (मानव-शरीर में) धरतीभू हो सकता है। इसलिये ईश्वरत्व के बोध में उन्होंने ईसा की मानवता से इन्कार किया। उदाहरणस्वरूप बोसेताइयों (Docetae)† ने ईसा के जन्म से ही और उनके धार्मिक तीस साल के जीवन-सम्बन्धी धर्मग्रन्थों के अर्थों की सत्यता को मानने से इन्कार कर दिया। कुछ के लिये तो यह विश्वास करना बल्गनातीत था कि उनका ईश्वर मानव भ्रूण की स्थिति में भी महीनों तक किसी स्त्री के गर्भ में रहने के बाद पैदा हो। उनके लिये तो यह शुरू से ही प्रौढ़ मानवरूप में जोर्जन के तट पर धरतीरित हुआ था। यह धरतीरण भी केवल एक धाकार वा तत्त्व नहीं। ईश्वर ने एक रूप दे दिया कि वह मानवों के कार्यों एवं शक्तियों का अनुकरण करे। यह सब एक धामास एक ध्याया थी। भावोद्गम एवं मृत्यु, पुनर्जीवन एवं स्वर्गारोहण के द्वारा केवल मानव जाति के कल्याण के लिये धर्मिणीत किया गए। जब ईसा के साथ मुक्तान की तुलना करते हुए कहा जाता है कि मरते हुए तत्त्वजानी (मुक्तान) के होंठों से निराशा एवं अर्थात् वा एक भी धर्म नहीं निकला तब उनके उत्तर में कहा जाता है कि ईसा का धार्मिक 'मेरे ईश्वर ! मेरे ईश्वर ! तुमने मुझे क्यों विचार रखा है ?' धर्मास्तविक वा धार्मिक था।

ऐसे भी थे जिनका विश्वास था कि ईसा हमारे जैसे ही एक मानव है और आर्यक तथा मेरी के पुत्र है। अपने ही सम्भवताम से वे मानव जाति में सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे बुद्धिमान हो गए। इसीलिये धरती पर ईश्वर की सच्ची उपासना को पुनः प्रबलित करने के लिये वे ईश्वर द्वारा चुने गए। जब जादन में वाइल्ड क कर में उमना वागित्वा किया गया तो ईश्वर की एक कमा करण के रूप में उन पर धरतीरित हुई और उनके मन पर धर्मिणार करके ईश्वर द्वारा क गए जीवन काल में उनके कार्यों का संवामन करती रही। जब ईसा की मृतियों के हाथों में नीय दिया गया तब वह धर्म बना धाने धार्मिक धार्मिक को छोड़ पुनः परमेश्वर

† यह धर्म नर देगने मन्त्रालय के अनुकूल दिना दिखाने का कि ईसा का शरीर धर्मास्तविक नहीं था—अनुकूल ।

में झूट नहीं, और ईसा को कष्ट उठाने सिद्धांत करने और मरने के लिए छोड़ गई। कारिपस का यही विचार था। पर यह विचार ईश्वर एक नगुप्प लोगों के लिए सर्वथा अनुचित है।

आत्मा एक शरीर के सम्बन्ध के पदार्थरूप की व्याख्या करता कठिन है। मानव-शरीर में किसी कला या करिस्ते के जना जाने की कल्पना उससे स्पष्टा कठिन नहीं है। यवोनियैरिख का विचार था कि ईश्वर एक मानव-शरीर के शरीर से लक्ष्य है और मानव-आत्मा का कार्य 'सोचोस' करता है।

एरिबर्गो का तर्क था कि कट्टर धर्मवादियों ने नत-सिद्धांत केसेधियनों तथा पातिवनाबर्गों से लिया। उनका कहना था कि सोसोस परम पिता की इच्छा द्वारा सुम्प से उत्पन्न एक स्वयस्फूर्त उपज है। बिल (ईश्वर) पुत्र से सब वस्तुएँ निर्मित होती हैं वह सम्पूर्ण विषयों के पुत्र उत्पन्न हुआ। कास और सोसोस के धर्मवादीत उपज के भी पहल। पिता परमेश्वर ने इस एकमात्र पुत्र में अपनी प्रकृत सचित का प्रविष्टान किया और अपनी यशोभोति की छाप उसपर लगायी। यद्यपि पुत्रता की दृश्य प्रतिच्छवि होने के कारण पिता को इच्छा का पालन करने के हेतु, पुत्र ने संसार का नियन्त्रण-शासन किया। एतिमाक के विद्यप विद्योकाइसस ने बहुसी बार 'सैत या टिमिटी' शब्द का प्रयोग किया। यह शब्द दूसरी सदी के यक्षशाक के पश्चात् की शार्सेनिक विचारधारा एक ईगाईयर्म सिद्धान्त के लिए सुपरिचित हो गया।

दूसरी सदी के अन्त के लगभग प्रैक्लस एवं सोसोमियस ने पुत्र-सहित (परम)पिता एक दूसरों को चकित कर दिया और दोनों के बीच के सादृश्य की बगल उनके अन्तर पर ही प्रकृत बस दिया। पांचवीं सदी के अन्त में दोनों स्वभावों की एकता को ऐसे एहसस के रूप में स्वीकार कर लिया गया जिसे हम अपने विचारों द्वारा या अपनी भाषा में व्यक्त नहीं कर सकते। इसपर एम्पेड का प्रश्न उठाना ईश्वर-बोह जाना गया।¹ निष्काइया की कॉसिस के पहले कोई ऐसा धर्म-सिद्धान्त निश्चित नहीं किया गया था जिसे धार्मिक अनिनिष्ठता की कटीटी माना जा सके।

जैसे ईसाईधर्म की सिद्धांतों में ऐतिहासिक काइस्ट को 'सैवी' शक्ति-सम्पन्न

¹ वेलेविटगन के अनुसार, किन्हीने सिद्ध-दरिच और रोम में सन् १४ एवं १६० में अनेक किया। वे कहते हैं कि ईश्वरीय शक्ति की अन्त कला है। उनके परिचित २२ अक्षरों अन्त है। वे एक परमेश्वर की प्रकृति एवं प्रियासोसता के विभिन्न पक्षमात्र हैं।

* दूसरी सदी में अरिस्तोलेन द्वारा कलाक मया ब्रह्म-सिद्धी सम्पन्न। — अनुवादक।

१ "को अन्तर को अन्त करे उनके अन्तर से अन्त कर दिया गया उनकी बोधो-बोधी अन्त ही अन्त, ऊर्ध्व किन्हा अन्त दिया अन्त। — एक ईश्वर शरीर (बर्गो का उत्पन्न-सिद्धांत) का अन्त।

बाइबल में बरल दिया गया जैसे गौतम बुद्ध मानव प्राणी से कुछ अलग बना दिए गए और प्रभु एवं उद्धारक के रूप में पूजे जाने लगे। जैसे ईसाईधर्मबाप शैत (ट्रिनिटी) सिद्धांत में विकसित हुआ जैसे ही बौद्धधर्म में विकसित सिद्धांत का विकास किया। असंख्य निरपेक्ष आध्यात्मिक परापूर्वता धर्मका ज्ञान और कल्याण का साधनत्व है। यह वह परम सत्य है जिसकी सिद्धि प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए करनी होगी। 'समोपकाम' ध्यान की काया है इसमें ज्ञान स्वयं साकार होता है परम सत्ता का सत्त्वित्व बुद्ध में व्यक्तीकरण होता है। निर्मणि काय रूपान्तर की काया है। यही शरीरी बुद्ध या ऐतिहासिक गौतम-बुद्ध है जिसमें नाममान शरीर के सब गुण मिलते हैं। बुद्ध तीन नहीं एक हैं। ये तीन एक ही अर्थार्थ के तीन पक्ष हैं।

मयवद्गीता की भांति ही महायान बौद्धधर्म की भी भावना है कि मानव जाति के उद्धार के लिए ब्रह्म ब्रह्मी पर अवतीर्ण होता है। अनेक जनों के उद्धार के लिए, बहुता को आत्मन्वित करने संसार—पर वर्णा करने आशीर्वाकरूप में मुक्तिरूप में मानव एवं देवों के आत्मन्व के रूप में संसार में आते हैं।^१

ईसाइयों का कथन है कि ईसा मसीह में ईश्वर की अधिष्ठाति प्रकृति इतिहास व्यक्तित्वगत मानवार्थाओं के रूप में हुई—मतमब धन्य सब ईश्वरीय अधिष्ठातियों में उत्कृष्ट भिन्न है। उनहीं दृष्टि से यही एकमात्र ऐसा उदाहरण है जिसमें ईश्वर स्वयं रूप ग्रहण कर इस संसार में अवतीर्ण हुए। जीसस में अवतरण की घटभूत घटना और धर्म अन्वेषकों में अन्तर के अन्तर्गत है ईश्वरनिष्ठा की कोई श्रृंखला या सातत्य नहीं है।^२ यह तो बिल्कुल एक अकस्मी घटना है जिसमें ईश्वर ने मानवीय इतिहास के मंच पर एक बार, सारा के लिए केवल एक बार कार्य किया है एवं उपदेश दिया है।

कोई भी अवधार ईश्वरीय हस्तक्षेप से पूर्वक या एकाकी काय के रूप में नहीं मानना या मनना। काय काय का विश्वास है कि ईश्वर एक मनुष्य के बीच कोई प्रपञ्च सम्बन्ध या सातत्य (कांटिस्म्यूटी) नहीं है किन्तु यह ईश्वर की उम गिरावटो बिरुद करके जातिगत करना है जिसमें कहा गया है कि ईश्वर हम सबका पिता है और हम सबके बीच एक संबंधित तत्व है। लोगोम का सिद्धांत हा ईसाई धर्म को आधाररजिता है और उमरा ध्यान यह है कि ईश्वर ने अनेक अवसरों एवं अनेक जनों में आने को व्यक्त किया है। ईसाई ईश्वरनिष्ठा दुगरी ईश्वर निष्ठातियों में बुद्ध भिन्न नहीं है। मन अन्वेषणधर्म की मूर्ति है ईश्वर ने मानवधर्म इगलिए धारण किया कि हम निष्ठा बन नहें। हम भी ईश्वर और मानव के बीच धार्मिक की प्रति विकसनी है। अवधार एक ऐसा काय है

१ अर्थ बुद्धत्वात् १२ ।

२ पंथ में ईश्वर, अनेकी अनुकर (१९१४) पृष्ठ १२ ।

जो सतत जारी है। भवानेसियस कहते हैं "जिन सोचों में पवित्रात्मा (होसी बोस्ट) का निवास है वे केवल इतने से ही बेबता-स्वल्प हो जाते हैं।" ईश्वर ससार के इतिहास में बड़ी उदारता के साथ शामिल होता है। भगवद्गीता ईश्वर की सतत सक्रियता की बात कहती है "जब-जब धर्म की स्थापि एवं धर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने को सूचित करता हूँ।" ईश्वर का वह कार्य तब तक चलता रहेगा जब तक सम्पूर्ण ससार ही एक ईश्वरीय धरतार नहीं बन जाता। सत्य-के-बुद्ध-में-प्रायतः-आयी-प्रेस है।

एक दृष्टि से प्रत्येक धरतार ही अनुपम है। वह अपने संघर्ष में बेजोड़ ही होता है। प्रत्येक अभिव्यक्ति परमात्मा की प्रकृति को प्रतिबिम्बित करती है।

माध्यम या मध्यस्थ को जैसा महत्त्व ईसाईधर्म में प्राप्त है वैसा इस्लाम में नहीं है। एक मुसलमान के लिए सब कुछ अल्लाह में ही केन्द्रित है। ईश्वरीयता मानव का विचार ईसाईधर्म का केन्द्रीय तथ्य है। (ईश्वर)पुत्र रीत का द्वितीय व्यक्ति सम्पूर्ण जनत् पर आरोपित व्यक्ति है जबकि ईसामसीह व्यक्तिरूप ईश्वर है। इस्लाम में प्रत्येक मनुष्य केवल मुसलमान होने के कारण कुछ धरता पुरोहित है। वह अल्लाह की तस्वीर है और इस बरती पर ज़ीका समीप्य है। ईश्वरीय मानवों को अन्तस्व एवं ईश्वरीय यथार्थता एक-ही जाती है। एकहाटें कहते हैं "हमारे पवित्र धर्मग्रन्थ अद्वैत के बारे में जो कुछ कहते हैं वह सब समाप्त रूप से प्रत्येक भस्मे एवं ईश्वरीय मानव के बारे में ठीक है। ✓

१ पृष्ठ १६५ २४।

२ मासखण्ड ४ ७।

३ ईश्वर-देहात्त लिखते हैं "वह सिद्ध करना अशक्य है कि परमेश्वर ईसामसीह में पूर्णतः अवतरित हुए और किसी दूसरे में अस्वीकृत ही नहीं हुआ।" — "बॉब पैरर मेन" (१९११), पृष्ठ ७२। अर्द्धविराट मिलिबम टेल्ल ने लिखा है: "ईश्वर के नाम पर घृष्टे राश्यों में जीमस अद्वैत के नाम पर कहा है—ईसाय जेयो कुरुत्त, कुछ और अस्वीकृत है भी जैसे ही सत्य के लेख एवं वाची में प्रकाशित किया। संसार में ईश्वरीय ज्योति को एक ही है और प्रत्येक मनुष्य अपनी जगता के अनुसार अपने प्रकार प्रकाश करता है। — रीजिंग इन मेड आस बालेन (१९३६) भाग १ पृष्ठ २। ईसाईधर्म ने कभी इसे स्वीकार नहीं किया कि अस्वीकृत-मिलिबम बीसम अपने वैदिक जीवन में मानवीय इतिहास के अन्तर्गत ईश्वर के अन्तिम रूप है। — किरप पंड अर वैरीज्या 'दि रेलिजियस ऑफ़ दि अरब्स' (१९३३), पृष्ठ ७०। जपना के भाकविराट जोरभोम कहते हैं 'वह मान लेता कि ईश्वरमिलिबम अद्वैत के अन्त समाप्त हो गईं बखिबत बात है।' — 'दि मिलिबम ऑफ़' (१९३१) पृष्ठ ३२१। ३ पृष्ठ १६५ की दृष्टि से ईसाईधर्म में सम्पूर्ण सत्य नहीं किन्तु अन्तिम सत्य निहित है। वैदिक, 'दि मिलिबम ऑफ़ अरब्स' (१९३३), पृष्ठ ११२।

घाठवां अध्याय

अन्तर्धीर्मीय मैत्री

१ धर्मों में निहित व्यापक ऐक्य

धर्मों का धर्मता धर्म जो भी हो वे सब हमसे यही कहते हैं कि बहुदेवो के ऊपर एक तेरे परमेश्वर की धारणा तक उठो जो सब प्रतिमाओं घोर धारणाओं से बरे है जिसे अनुभव किया जा सकता है पर जाना नहीं जा सकता जो मानवात्मा की जीवन शक्ति है और जो ब्रह्म अस्तित्व में है उसका अन्तिम मध्य है। इस लक्ष्य के प्रति मनुष्य धर्मों में सम्प्रदायातीत ऐक्य है और वह उनकी धारणयन विविधता के परे है।

धर्मों में अन्तर्धान महत्त्वपूर्ण इसलिए दियाई पड़ती है कि हमें अपने ही धर्मों के प्राधारभूत मध्य का ज्ञान नहीं है। समस्त धार्मिक अनुभवों में एक सर्वनिष्ठ तत्व है एक सामान्य आधार है जिसपर उसकी निष्ठा एवं उपासना रखी है। किन्तु इस आधार पर इस नींव पर जो भवन निर्मित किए गए हैं उनमें एक-एक मनुष्य को मेजर भिन्नता है। ईश्वर का स्थापत्य किसी एक ही साधे का एक ही समूह का नहीं है। धार्मिक जनों के जीवन में दमका पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है। जैसे मनुष्यों में विविधता है वैसे ही ईश्वर द्वारा उन्हें दिए गए वरदान में भी विविधता है। ईश्वर की कर्मा करते हुए मंत्र पास कहते हैं कि 'उत्तरे हरेक मनुष्य का धर्म-धर्म धरती इच्छानुसार अपने दान का बितरण किया है। एक दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव बेजोड़ होता है। प्रत्येक को अपने लिए ईश्वर का अनुसंधान करना है और हरेक को सामान्य लोग में अपने विशेष अनुभव का ज्ञान करना है। धर्मों की विविधता के विरर के धार्मिक संसार में बृद्धि होती है।

विभिन्न धर्मों के बीच एकता की निष्ठि बाह्य स्तर पर संभव नहीं है। किसी सम्प्रदाय-विशेष के प्रति विशेष रूप से बिना इसे अन्तर्मुखी एवं धार्मिक विधि में ही निष्ठि किया जा सकता है। किन्तु धर्म में दूसरे धर्मों के प्रति कोई निरन्धरता का भाव नहीं है। वह उनकी घोर ईश्वर-अग्रणी हमारे ज्ञान के महावचन तारों के रूप में ईश्वरीय प्रकाश की विविध धारणा के रूप में देखा है। वह यह विवरण

नहीं करता कि किसी विशेष बर्म के धवलम्बन से ही मुक्ति मिल सकती है। कोई चाहे कही का निवासी हो और चाहे जिस धम का माननेवासा हो यदि वह निष्ठापूर्वक सच्चाई के साथ ईश्वर को पाना चाहता है तो प्रभु अपने सत्य अपने प्रेम अपने अनुग्रह-दान से उसे इन्कार नहीं कर सकते।

अपने ग्रन्थ 'दि स्पिरिट ऑफ प्रियर' (प्रार्थना की भावना) में बिमियम सॉ कहते हैं कि बर्मों की बिभिन्नता केवल सतह पर है। यह मुक्ति धात्मा में ईश्वरत्व का जीवन पाने का मनुष्य के लिए एक ही रास्ता है। वह यहुनों के लिए एक ईसाई के लिए दूसरा तथा नास्तिक के लिए तीसरा नहीं है। नहीं ईश्वर एक है मानव-प्रकृति एक है मुक्ति एक है उसके पाने का रास्ता भी एक है और वह है धात्मा की कामना को परमेश्वर की ओर मोड़ दो। ऐसा करने पर यह कामना ही सब कुछ कर देती है। यह धात्मा को ईश्वर तक ले जाती है। ईश्वर के साथ एकजीव हो जाती है। कल्पना करो कि यह कामना किसी यहुवी या ईसाई में प्राणवान नहीं है सक्रिय नहीं है तो फिर उसका समस्त बलिदान सेवा-युवा केवल मृत कर्ममात्र है और उसके धात्मा में कोई जीवन नहीं घा सकता न उनसे धात्मा एवं ईश्वर का मिलन ही सम्भव है। प्रब कल्पना करो कि यह कामना ऐसे प्राणियों में जागरित है जिन्होंने कभी ईश्वरीय कानून या बाइबिल के उपदेश को नहीं सुना है तो ईश्वरीय जीवन ईश्वरत्व या ईश्वरीय क्रिया उनमें प्रवेश करती है और बच्चपि उन्होंने कभी उसका नाम नहीं सुना परन्तु वे क्राइस्ट में एक नवीन जन्म पाते हैं।^१

जिन्होंने सत्य को ग्रहण किया है वे ईश्वर-सम्बन्धी सिद्धांतों या उसके पास पहुंचने के मार्गों की सापेक्षता के प्रति बिम्बस्त है। हिन्दूशास्त्र पुष्टि करते हैं कि हम बापी का प्रयोग बापी के परे जाने के लिए, कुछ निःसम्भ सारतत्त्व तक पहुंचने के लिए करते हैं। हिन्दू-परम्परा बार्मिक धनुमन को एकक्यता के मृतस्वर तक साने से इन्कार करती है। हिन्दुधर्म में सत्य एक धनुभूत पदार्थ है वह एक ऐसी ब्योति है जो मनुष्य में स्थित पतीक्रिय तत्त्व द्वारा उस ऊच्च जगत् में प्रकट होती है या इन्द्रिय एवं बुद्धि में प्रतिबिम्बित है—एक पदाव-अवत् जिसमें घाकर वह ब्योति क्षुमिस पड़ जाती है। बर्म-विचारों में परस्पर-बिच्छेता तो तब उत्पन्न होती है जब हम धारमिक जीवन पर उन बारपाधों का धारोण करते हैं जो इहलौकिक जीवन से भी गई हैं और उन्हींके लिए उपयुक्त है। सौत्रिक विचारपा और सत्य को एक मात्र सना बुद्धिबाध का पाप है। यह बुद्धिबाध सुजनात्मक राज्य का धर्म तथा उन प्राथमिक धारमानुभव को ग्रहण करने में घसमर्थ है जिसमें मनुष्य एवं ईश्वर-बिम्बित बानों एक हैं। जिसको यह धनुमन हुआ है वे

मिकाह कहता है "हर प्राणमी को अपने ईश्वर के नाम पर चलने हो हम अपने ईश्वर के नाम पर चलने।" दूसरों के ईश्वर-सम्बन्धी विचारों के प्रति धारण प्रामाणिक धर्म-जीवन का सदान है।

ईसाईधर्म में भी उधार बुद्धिकोष है। कसीमेण तक करता है कि बुनानी ईसा एक उत्कृष्टतम और हिब्रू बिबि-बियाण द्वारा पहुँच के।^१ दूसरी धार्मिक विचारधाराएँ सन्तानों से पुनः हैं जिनकी प्रति ईसाईधर्म द्वारा भी जा सकती है। उनका कथन है कि प्लेटो एवं उसके अनुयायी ईश्वर-पुत्र ययया धारणा (स्पिरिट) का प्रथमत्व न मते हुए भी पितारूप ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हुए थे।^२

ब्रिटिश मार्टिनर एवं सिकन्दरिया के दूसरी-तीसरी सदी के ईसाई दर्शन धारणी मानते थे कि ईश्वर की धारणत बाणी ईसा के नाम के बहुत पहल सचमुच मुकरात एवं प्लेटो प्रबाहम और जीवन जैसे महात्माओं के दृश्य में बोधती थी। 'नाइस्ट बह ज्ञान है जिसमें मनुष्यों की प्रत्येक जाति भाग लेती है और जो उस ज्ञान के अनुकूल जीवन बिताते हैं वे ही सच्चे ईसाई हैं—किर चाहे उन्हें नास्तिक ही क्यों न कहा जाता हो। मुनासियों में मुकरात एवं हेराक्लिटस तथा उनके जैसे दूसरे लोग और बर्बरों (वीर-मुनासियों) में प्रबाहम एतिया इत्यादि ऐसे ही थे।'^३ पुनः— विराटी कवि गद्यकार ईश्वरीय ज्ञान के सूत्रन बीजारोपण में प्रत्येक के धरणा क्रिस्ता प्रका किया है। इसलिफिकती मनुष्य द्वारा जो भी धरणी बाध कही गई हो वह सब हम ईसाइयों की भी बीज है।^४

इस्लाम को 'बीजुलहक' (छरय का धर्म) कहा जाता है। वह यह दावा नहीं करता कि छरय का एकाधिकार उसके पास है। कुरान में कहा गया है "हम ईश्वर और उसके द्वारा हमें तथा प्रबाहम इस्माइल ईसाक बीटन मुसा एवं ईसा और दूसरे देवदूतों पर—कट की गई देवधानी में निरवास रखते हैं। हम इनमें कोई श्रेष्ठ नहीं करते।" कुरान इसकी भी पुष्टि करता है कि ऐसी कोई जाति नहीं है जिसमें एक नेतावनी देनेवाला न भेजा गया हो। इस्लाम अपने अनुयायियों से दूसरे धर्मों के धर्मग्रन्थों को मानन के लिए कहता है। ईश्वर के प्रेम और यया के प्रति यह शोचना भी प्रत्याप हीया कि उसन माकों धारमियों को हजारों साल तक बिना किसी धारणा के धरणा के प्रककार से भटकने के लिए छोड़ दिया था।

१. देखिए 'दिवि सिद्धांत', १ २ २ २२ ७।

२. 'सुमेया' १:४ १२।

३. 'एनकोबी' ४४।

४. 'एनकोबी' ११।

५. 'एनकोबी', १२५।

स्वाम होता है बल्कि चर्माप्यता नहीं होती। यह जिस पधार्मता का अनुभव
 रता है उसको मानता है और यह भी समझता है कि उसकी विशेष दृष्टि
 पर्याप्त हो सकती है। प्रसन्न में प्रवर्धिता का यह शोध नहीं होता। प्रसन्न
सुबर्नीयों का प्रायम है, चर्माप्यता एक गुण बने हुए अस्मिता का परिणाम है।
 जो चावमी यह तो कह सकता है कि उसको किसी ईश्वरीय मन्त्र पूर्णतः
 अनुपमनक है किन्तु यह यह नहीं कह सकता कि मृतकाल में ऐसी कोई
 ईश्वरामिष्यिन हुई ही नहीं या धागे डूमरी कोई होगी नहीं। यह निष्ठा नहीं
 चर्माप्यता है जो बसपूर्वक कहती है कि उसके यहाँ की ईश्वरामिष्यिन में
 ईश्वर-सम्बन्धी यह सम्पूर्ण सत्य निहित है जो प्राय तब मनुष्य ने जाना है और
 अविष्य में और कोई सत्य न जाना जा सकता है न जाना जाएगा।' ✓

२ ईसाई पुनर्निर्माण

प्रत्येक जीवित वर्म में उसे सम्प्रदाय पनप चुके हैं जिन्होंने इस धर्म की वृद्धि
 की है कि धर्म की जो ध्यास्या वे करते हैं वही निर्भन्ति साथ है। इन सम्प्रदायों के
 पुनर्निर्माण की चेष्टा की जा रही है।

नवम्बर १९४८ के मध्य में पाकबिद्यप कंटरबरी द्वारा नियुक्त कमीशन की
 रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस कमीशन की आरम्भिक धारणाओं एवं उपासना न
 करनेवाले आतिथ्य-पुषों के प्रचलित बौद्धिक-दृष्टिकोण के प्रकाश में धार्मिक इजीप
 बाद की समस्त समस्याओं का सर्वेक्षण करना था। उसे मुख्य भी देना था कि किस

सेवकों को उनकी शैक्षिक एवं नैतिक प्रत्यक्षता को क्षति पहुंचाए बिना अपनी धोरण प्रकृति करने में समर्थ होना जो मात्र किसी धर्म-विशेष को ग्रहण करने में प्रसमर्थ है।

सत्य का द्विद्वि विचार-स्वातंत्र्य पर निर्भर है। दूसरे विचारों को समझकर ही हम सत्य का अधिक प्रख्या दर्शन पा सकते हैं। यदि हमारे विचार गमल भी हैं तो सत्य के लिए मिथ्या से पलटी से संबंध करना प्रकृति ही रहेगा। यदि हम विचार-स्वातंत्र्य को बचा देते हैं और दूसरों के ईमानदारी के साथ बहुरूप किए हुए विचारों को धार्मिक उत्पीड़न एकान्ती साधन-कार्यों तथा प्रत्यासुपूर्व धार्मिक एवं सामाजिक बचावों द्वारा समित कर देते हैं तो हम धार्मिक सत्य एवं प्रजातांत्रिक शासन का स्थापन कर सकते हैं। धर्म या राजनीति में 'उन्हे धमकर जाने को विवश करा' जैसी कोई नीति नहीं है। धर्म एक कृति है एक रस है जो हमारे अस्तित्व को एक धर्म देता है एक ऐक्य प्रदान करता है। यह मतवाला का कोई ऐसा पूज नहीं है जिसे सारी दुनिया स्वीकार करे। अठबाए एवं प्रमुप्यन यहाँ तक कि स्वयं धर्म भी अपने में कोई साध्य नहीं है। य केवल मानव-जाति में ईश्वर के तात्पर्य की पूर्ति के लिए है। इन्हे किसी एक धर्म या संस्कृति जाति या राष्ट्र का श्रेष्ठ वनकर नहीं रह जाना चाहिए। जो परम्पराएँ हजारों वर्षों से चल रही हैं, जिन्होंने अमजित पीढ़ियों को धार्मिक सहायता दी है तथा जानी एवं पवित्र संतो को जन्म दिया है। लोगों ने उन्हें छोड़ने के लिए कहना कोई मुश्किल नहीं है। जैसे पंड-बीधो का घपना जीवन तब तक बना रहना है जब तक उनकी जड़ घटती के प्रत्यक्ष कभी नहीं रहती है जैसे ही विचारों का भी घपना एक जीवन होता है।

धार्मिकता में धर्मों ने एक-दूसरे से मिलना सीखा था उनका अनेकता अधिक सीमा सटते हैं। यद्यपि दूसरों के समक्ष में परिष्कृत होने पर भी उनमें से कोई एक मानव जाति के धार्मिक एकीकरण के लिए सच्चे लिए स्वीकार्य आधार नहीं उपलब्ध कर सकता। किन्तु यदि हम महान धर्मों के आधारभूत धार्मिक तथ्यों तथा उनके द्वारा ही बानेवाणी सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांतों की धोरण प्रदान देते हैं तो वे सब महान धर्म एक ही केन्द्र की धोरण जाते हुए दिखाई देते हैं। हम मात्र के एकधिक धर्मों से स्फूर्ति प्राप्त कर सकते हैं। हम कोई नया धर्म नहीं चाहते किन्तु पुरातन धर्मों के प्रति एक नई एवं विकसित समझदारी चाहते हैं। धर्मों का अविष्य सबके द्वारा एक ही धर्म स्वीकार करने या धर्मों में प्रतिद्वन्द्विता होने में नहीं बरन् उनकी विशेषताओं को समझने हुए भी उनमें अन्विष्ट आधारभूत एकता के स्वीकार किए जाने में निर्भर है।

हमारी एकता हृदय एक भावना की एकता है। हम ईश्वर-स्मरण जीवन के बाह्य रूपों में विभाजित हैं किन्तु हमारा विश्वास है कि विभिन्न धर्मों के महाने

उसे प्रतीतकाम की महान धार्मिक चेष्टाओं के बिरोधी एवं प्रतिद्वन्द्वी के रूप में सामने नहीं आना चाहिए। उसे एक सहायक एक परिपूरक धार्मिकस्थापक धीर मित्र के रूप में धामे आना चाहिए। हिन्दूधर्म से धर्म-परिवर्तन द्वारा ईसाई बना देने की इच्छा त्याग देनी चाहिए किन्तु विपत्ति के प्राचक्ष्णकता के समय उसकी मदद करने के लिए तथा उन कर्तव्यों की पूर्ति में उसकी सहायता करने के लिए सामने आना चाहिए जिसकी उसने इतने दिनों से उपेक्षा की है।^१

बर्मों को एक-दूसरे के बारे में काम करते हुए, सबके द्वारा मानवीय भावना के महान स्वप्न की पूर्ति के लिए सहायक हाता चाहिए। डा. अर्स्वैट् स्वीटजर कहते हैं "प्राच्य एवं भारतीय दर्शनों को इस भावना से एक-दूसरे की स्पर्धा नहीं करनी चाहिए कि एक सही धीर दूसरा नमत्त है। दोनों को बितन के एक ऐसे मार्ग पर प्रगति करनी चाहिए" जिसमें अन्त में सारी मानव-जाति भाग ले सके।^२ धार्मिक जीवन के अनुसरण में दोनों मित्र एवं भावीदार हैं। धार्मिक न्याय एवं स्वतन्त्रता के हितवर्धन-कार्य में सभी बर्म एक पवित्र साझेदारी के सुख में भाग्य हैं। हमारा बन्धु प्रेम हमारे पड़ोसी के प्रेम में बस जाना चाहिए।^३ धारमा के बर्म द्वारा धार्मिक बन्धुता की भावना को सदा जीवित रखा जाय।

सभी बड़े बर्मों में स्मूलाधिक एक-ही धार्मिक आस्थाएं मिलती हैं यद्यपि मूलतः वे दूसरे बर्मों से भी नहीं गई हैं।

जब भारत को एक बर्मनिरपेक्ष राज्य कहा जाता है तब इसका अर्थ यह नहीं होता कि हम एक चक्षुष्ट धारमा की सत्यता अथवा जीवन में बर्म की प्राचक्ष्णकता को अस्वीकार करते हैं या यह कि हम धार्मिकता की प्रशंसा करते हैं। इसका यह भी अर्थ नहीं कि बर्म-निरपेक्षता ही एक निश्चयात्मक बर्म बन जाती है या यह कि राज्य ईष्यारीय प्राधिकारों (प्रीरोपेटिस्)को बर्णन कर देता है। यद्यपि परमेश्वर में निष्ठा भारतीय परम्परा का आधारभूत सिद्धान्त है किन्तु भारतीय राज्य स्वयं किसी बर्म के साथ अपने को संयुक्त नहीं करेगा न वह किसी एक बर्म द्वारा नियंत्रित होगा। हमारा विचार है कि किसी भी एक बर्म को विशेष पद नहीं प्रदान किया जाना चाहिए। धीर किसी भी एक धर्म को राष्ट्रीय जीवन या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विशेष सुविधाएं नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि ऐसा करना प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों का उल्लंघन तथा बर्म एवं धारमा दोनों के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध होगा। धार्मिक निष्पक्षता को समर्थनी एवं

१ 'इतिहास इन डीनरस (१९११)।

२ 'अर्थी एडिंस : 'अर्स्वैट् स्वीटजर' (१९१७) पृष्ठ १७७।

३ 'ईस्टर्न जर्नल' को अमेरिकन-बर्म डेकर अक्षर करता है 'इसलिए तुम को प्रेम की सत्यता में अर्स्वैट् स्वीटजर को अतिरिक्त का पार करो। — 'इन्स्टीट्यूट' १ : १८१।

सहित्युता के इस दृष्टिकोम को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन में एक बेबी कर्तव्य की पूर्ति करना है। कोई नागरिक दस उन अधिकारों एवं सुविधाओं को स्वयं नहीं प्राप्त कर सकता जिन्हें दूसरों को देने से वह इन्कार करता है। किसी की भी बेज्म अपने धर्म के कारण किसी प्रकार की अयोग्यता या भयभाव का विकार नहीं होना पड़ेगा बल्कि सामान्य जीवन में पूरी मात्रा में भाग लेने के लिए हुके समान रूप में स्वतंत्र रहेगा। धर्म एवं राज्य को अलग करने के भीतर मही आधारभूत सिद्धान्त निहित है। भारतीय राज्य की धार्मिक निष्पक्षता को धर्म निरपेक्षता या नास्तिकता के साथ नहीं मिलाता जाहिए। इसमें धर्म-निरपेक्षता की आ परिभाषा ही गई है वह भारत की प्राचीन धार्मिक परम्परा के अनुसार ही है। यह निष्पक्षता के एक अानुत्व का प्रतिष्ठा करने का अर्थ है—वैयक्तिक विषयवार्थों को वर्गीकृतता के अधीन करने मही बल्कि उन्हें एक-दूसरे के सामंजस्य में आकर। यह जीवनमय अानुत्व अनेकता में एकता के सिद्धान्त पर आधारित है और यही एक सिद्धान्त है जिसमें मुख्य की क्षमता है।

विभिन्न धर्मों के अन्वयन से पता लगता है कि उनमें दार्शनिक गहराई धार्मिक गहनता विचार-सृष्टि मानवीय महानुभूति बतमान है। पुण्य-गीमता पवित्रता निरसुयता और उदारता विषय के किसी एक धर्म की विशिष्टता नहीं है।

आज हम प्रत्येक धर्म में ऐसा अलमल पाते हैं जो अपने धर्म के धार्मिक के परे भी देखता है। जिसका विरवाण है कि धार्मिक अानुत्व संभव है—किसी एक धर्म की अमन्य अगत् पर अबररती अोचकर मही बल्कि हम सबकाही साम्यता के अरत कि हम सब अानुत्विकी हैं, धर्म में अल रहे तीर्थपात्री हैं तथा हम अबरक अरय समान अशापरण अय धार्मिक अानुत्वों तक पहुंचता है। जो अानुत्व के अाने हैं वे धार्मिक के अेवहुन हैं अानुत्व का यह अोच सब धर्म-संस्थाओं से अगत है। वे उन अानुत्वों के भी अैवम्बर हैं जो मानवीय अान में अलमल होती है—उस अान में आ धर्म द्वारा धार्मिक एक-दार्मिक अानि के निर्माण का अिल अगत है। इस अल अानि का अानुत्व अानि अही अविष्य की अाना है।

उपसंहार

यद्यपि हमारे युग ने बर्म का घाघव समझना प्राप्त छोड़ दिया है फिर भी ध्यान उसे ऐसी चीज की प्रबल भावश्यकता है जो बर्म ही दे सकता है। एक अतीन्द्रिय परम सत्ता की स्वीकृति उसकी अभिप्रेक्षित के रूप में मानव-व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा इतिहास के सकलरूप में मानव-जाति की एकता, यही प्रमुख बर्मों के आधार हैं। आत्मा का बर्म इन मूलमूल सत्तों की फिर से प्रुष्टि करता है। यह मतवालों और अनुष्ठानों को अपर्याप्त प्रतीकवादिता के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं समझता। यह बर्म के नेताओं से कहता है कि वे उत्तापन एवं धोषन की ऐसी जिवा का धारण करें जिससे बार्मिक या सामाजिक कट्टरता के साथ में बर्मों को ठण्डे एवं कठोर हो जाने से बचाना जा सके। इन पुष्टों में जिस बर्म की रूपरेखा ही बर्हि है उसे सनातन या शास्त्रत बर्म कहा जा सकता है। इसे किसी बर्म-विशेष से मिलाया ठीक न होना क्योंकि यह ऐसा बर्म है जो जाति सम्प्रदाय सबको पार कर जाता है किन्तु इतने पर भी सब जातियों और सम्प्रदायों को अनुप्राणित करता है। जिस बर्म को हम मानते हों उसे ऐसा श्रेष्ठ रूप दे सकते हैं कि वह आत्मा के बर्म की पंक्ति में जा सके। मैं मानता हूँ कि हरेक बर्म में ऐसे ऊर्ध्व स्थांतरण की संभावनाएँ वर्तमान हैं।' हमें हिन्दूबर्म या ईसाईबर्म को एक ऐसे विकसतमान

१. प्रोफेसर हर्न रेनो लिखते हैं "आधुनिक युग के संकटों ने विश्वव्यवहार यज्ञत या उन्नी परचालन भौतिकवाद को कताना बनाया है कि-बर्म के शौर्य में वृद्धि ही की है। कुछ लोग इसे एक कर्मर के सामाजिक अनुर्वजन के रूप में देखते हैं और अपने जीवनदर्शन के आधार-रूप में ग्रहण करते हैं। दूसरे इसे एक विश्वव्यापी बार्मिक संरक्षित में सम्मिश्रित करना चाहते हैं। वे प्रकृत सत्य होने या नहीं इसका निर्णय तो धर्मिक पर ही छोड़ देना चाहिए। किन्तु सत्यतः तब तो यह ही जाता है कि बर्मों के इतिहासकार के लिए हिन्दूबर्म सम्भवन का एक अग्रिम क्षेत्र प्रकृत करता है। इसमें बुद्धिवां जनक हैं किन्तु इसमें रहस्यपूर्व रहस्य की एक म्हाब करण है। यह बर्म की लक्ष्य बर-बाधों को न्यस्त करता है तथा उसको सम्भला उन्हें निरु-लक्ष्य बर्मों में अग्रगण्य कर्ता रहती है। सरस्वी मूलमूल परलक्ष्य को हृदयित करने हुए भी बर्मों का-कार-मनेन ज्ञान की शक्ति है। मक्ति और इससे भी अधिक बर्म में इसने अस्तमयक मरकत का अर्धिर्णय शक्ति को बुद्ध्या तक पहुंचा दिया है जो प्रकृत रूप से

ईरवीय रहस्योद्घाटन (इसहाम रिबमसन) के प्रथक्य म देखना चाहिए जो समय वाकर एग बृहत्तर प्रारमधर्म में परिवर्तित हो जाए।

हम एक उत्तेजना, संकट और सुयोग के युग में रह रहे हैं। हमें अपनी अप्रुणताका का ज्ञान है और यदि हमम समय को देख सकने की दृष्टि और उसके लिए काम करने का साहस ही था हम अपनी अप्रुणताका—अपर्याप्तताका को दूर कर सक्ये हैं। ✓

